एच.एल. हाईकूप

मसीह के साथ आरम्भ

GBV
Der Gute Botschaft Verlag

मसीह के साथ आरम्भ

एच.एल. हाईकूप

मसीह के साथ आरम्भ

नए मसीही नवयुवकों के लिए
पत्रों की एक श्रृंखला

एच. एल. हाईकूप के साथ जर्मन भाषा से अंग्रेज़ी में किया हुआ अनुवाद और अंग्रेजी भाषा से हिन्दी भाषा में किया हुआ अनुवाद

ISBN 978-3-96162-688-5

© 2021 by GBV Dillenburg GmbH

www.gbv-dillenburg.de

Printed in Germany

GBV

GBV Dillenburg GmbH
Eiershäuser Straße 54
35713 Eschenburg
GERMANY
www.gbv-dillenburg.de
www.gbv-online.org

1	क्या मनुष्य का मन-परिवर्तन होना आवश्यक है?	7
2	मनुष्य का मन परिवर्तन होना क्यों आवश्यक?	13
3	परमेश्वर से मेरा मेल कैसे हो?	21
4	पाप की सामर्थ्य से छुटकारा	29
5	क्या परमेश्वर ने मनुष्य का विनाश पहले से ही सुनिश्चित कर रखा है?	41
6	चुना जाना (क्रमशः पिछले पत्र से)	49
7	मसीह : हमारा महान महायाजक	57
8	नया जन्म	67
9	पिता और पुत्र के साथ संगति	75
10	मसीह हमारा अधिवक्ता (सहायक, तरफदार, हिमायती, संरक्षक)	81
11	पवित्रीकरण	91
12	परमेश्वर के वचन के पढ़ने का महत्त्व	97
13	प्रार्थना	107
14	क्या आप का बपतिस्ता हो चुका है?	117
15	प्रभु-भोज	125
16	प्रभु की मेज	133
17	आराधना	145
18	सेवा-कार्य	157
19	पृथ्वी पर हमारा स्थान	167

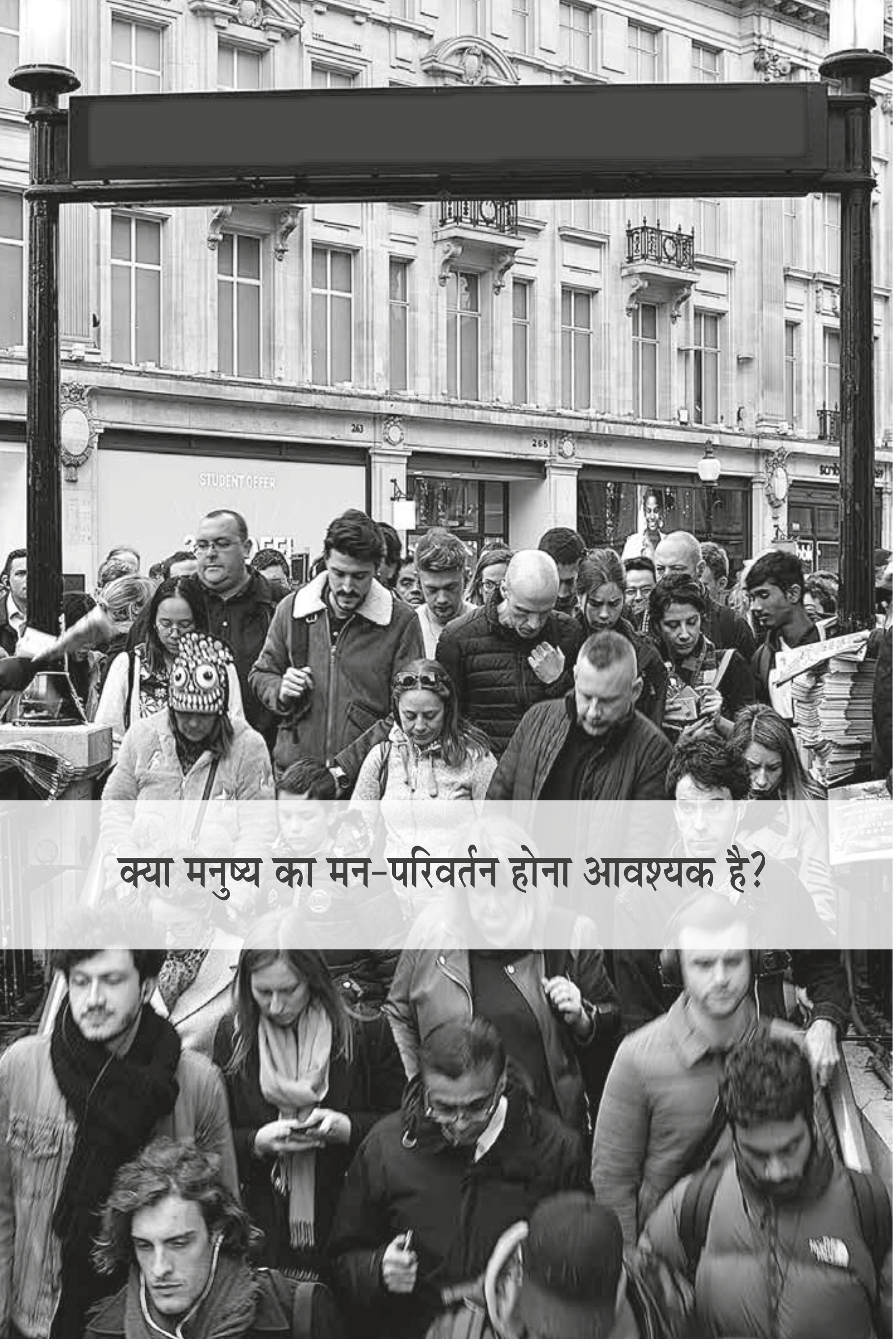

1 क्या मनुष्य का मन-परिवर्तन होना आवश्यक है?

प्रिय मित्र,

यह विषय जिसकी चर्चा आपने छेड़ी है, एक ऐसा विषय है जो कि बड़ा ही सार्थक है, अत: मुझे इस विषय को लेने में प्रसन्नता होगी।

आप लिखते हैं कि व्यक्तिगत वार्तालाप तथा आम-सभाओं में आप से प्राय: कहा जाता है कि आप का मन परिवर्तन होना आवश्यक है किन्तु उसकी आप तनिक भी आवश्यकता महसूस नहीं करते। आप अपने अध्ययन तथा कार्य में अत्यधिक व्यस्त हैं। आप के पास एक अच्छा परिवार तथा अच्छे मित्र हैं। शीघ्र ही आपको एक अच्छे पद की आशा है जिससे कि आप संसार में कुछ देख सकें। आप अपनी परिस्थिति से बिल्कुल सन्तुष्ट हैं, और सच कहा जाए तो उस पर भी लगातार थका देने वाली यह बात सुनने को मिलती है कि आप को मन-परिवर्तित करना आवश्यक है-आप इससे ऊब चुके हैं।

मैं इसको अच्छी तरह समझ सकता हूँ। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दूसरों को दिन भर अच्छी सलाह देने, अथवा गलतियाँ दिखाने के द्वारा उनके मामले में हस्तक्षेप करते हैं। एक ही बात बार-बार सुनते-सुनते विशेषकर उस समय जबकि आप समझते हैं कि उनका कहना ठीक हो सकता है-उत्तेजना एवं रोष उत्पन्न होता है।

और निश्चित रूप से, यह जानना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है: कि क्या वे सही हैं अथवा गलत हैं? यदि यह केवल एक हल्की सी बात होती, तब तो आप गलत सिद्ध हो जाने पर संभवत: उसे प्राप्त कर सकते थे। परन्तु मन का सम्बन्ध इस प्रश्न से जुड़ा हुआ है कि आपका अनंत कहाँ बीतेगा। निश्चित रूप से यह इतना महत्त्वपूर्ण है कि आप इस पर एक निर्णय लेना चाहेंगे।

क्या कभी आपने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है कि अनन्तकाल है क्या? मैं पूर्णत: सहमत हूँ कि हम कभी भी, वास्तव में, इसे नहीं समझ पायेंगे जब तक कि हम वहाँ पर न हों। फिर भी उसकी थोड़ी सी झलक पाने के लिए उस पर केवल एक बार विचार करना लाभदायक ही होगा।

एक बार मैंने एक अत्यन्त मेधावी लड़के से विषय में एक प्राचीन दन्त-कथा पढ़ी। उस देश के राजा ने उसकी परीक्षा लेने के लिए उससे पूछा, अनन्तकाल का कितना समय अभी और शेष हैं?

''हे राजन्,'' लड़के ने उत्तर दिया, ''सुदूर देश में पीतल का एक बहुत ऊँचा पर्वत है जिसकी चोटी बादलों से भी बहुत ऊपर तक जाती है। हर सौ वर्ष बाद एक छोटी चिड़िया

आती है, और उस पर्वत पर एक बार अपनी चोंच रगड़ती है। जैसे ही वह पर्वत इससे घिस कर समाप्त हो जाएगा, अनन्तकाल का एक सेकण्ड समय समाप्त हो जाएगा''।

यह प्रत्युत्तर आपको अनन्तकाल की अनन्तता का आभास करता है, है न? परन्तु यह भी सही नहीं है, क्योंकि अनन्नकाल में सेकण्ड नहीं होते। वहाँ तो एक दिन हजार वर्ष के बराबर का न तो कोई हजार वर्ष एक दिन के बराबर हैं (2 पतरस 3:8)। अनन्तकाल का न तो कोई अन्त है और न उप-भाग कि उसे नापा जा सके।

फिर भी यह कहानी पृथ्वी पर हमारे व्यतीत किये गए काल तथा आने वाले अनन्तकाल के मध्य सम्बन्ध को दर्शाती है। अनन्तकाल की तुलना में ये दस वर्ष, पचास वर्ष, अस्सी वर्ष अथवा सौ वर्ष क्या हैं? तब, क्या यह जानना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि कैसे और कहाँ हम अनन्तकाल व्यतीत करेंगे?

मुझे एक दूसरी कहानी भी स्मरण आ रही है। आप को ज्ञात होगा कि मध्यकालीन युग में अधिकांश राजाओं के दरबार में विदूषक हुआ करते थे। प्राय: वे लोग विकृत होते थे जो बेढ़ंगे कपड़े पहन कर हँसी-मजाक तथा मूर्खतापूर्ण बातें करके अपने स्वामियों को प्रसन्न किया करते थे। वे अपने दिनों के विदूषक थे।

एक बार राजकुमार ने अपने एक विदूषक को मसखरे (जोकर) की टोपी दी जो शंक्वाकार थी और वह छोटी-छोटी घंटियों से सजायी गई थी। उसने उसे अपने राज्य का सम्मान सूचक राजदण्ड भी प्रदान किया। राजकुमार ने उसके साथ, किसी प्रकार, यह अनुबन्ध किया कि यदि उस विदूषक को कोई ऐसा व्यक्ति मिले जो उससे भी बढ़ कर अधिक मुर्खतापूर्ण कार्य करे तो वह अपनी टोपी और अपना राजदण्ड उसे दे देगा।

कुछ ही दिनों पश्चात वह राजकुमार गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। वह विदूशक भी उसको देखने के लिए उसके पास गया, और उससे पूछा कि कब तक ठीक हो जाने की आशा है। राजकुमार ने उसको उत्तर दिया कि डॉक्टर के अनुसार तो उसके स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हो रहा है, अत: अब उसकी मृत्यु सन्निकट है।

''तब तो ठीक है,'' विदूषक ने कहा, ''निस्सन्देह आपने इस महत्त्वपूर्ण यात्रा की तैयारी बड़ी सावधानी के साथ कर ली होगी, और देख लिया होगा कि आपके स्वागत के लिए सब कुछ तैयार है''।

''नहीं,'' राजकुमार ने उत्तर दिया, ''यही तो खेद की बात है। मैं नहीं जानता कि किस प्रकार से मेरा स्वागत होगा''।

''परन्तु, क्या आपको यह नहीं मालूम था कि एक दिन आपको यह यात्रा करनी पड़ेगी''?

''अच्छी तरह से मालूम था, किन्तु बहुत अधिक कार्य होने के कारण मैंने इसकी कभी चिन्ता ही नहीं की''।

''परन्तु'', विदूषक ने कहा, ''जब कभी आप यात्रा पर जाया करते थे, तो आपका एक अग्रदूत घोड़ा कस कर आपसे पहले निकल जाता था कि वहाँ पर वह जाकर भोजन, पानी तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की ठीक व्यवस्था है अथवा नहीं। यदि आप कुछ सप्ताह और महीनों के लिए कहीं बाहर जाते तो प्रत्येक चीज की योजना बहुत पहले से बन कर तैयार हो जाती थी और बहुत से नौकर कई दिन पहले वहाँ पहुँच कर देखते थे कि आपके वहाँ पहुँचने पर सब ठीक-ठाक रहे। परन्तु, इस बड़ी और महत्त्पवूर्ण यात्रा के लिए, जहाँ सदाकाल के लिए आपको रहना है, आपने कोई भी तैयारी नहीं की है। अच्छा, तो यह टोपी और अपना राजदण्ड पुन: आप ले लें-क्योंकि ऐसा मूर्ख तो मैं कभी भी नहीं रहा हूँ''।

क्या वह विदूषक ठीक नहीं कह रहा था? आप दस वर्षों से भी अधिक वर्ष विद्यालय जाते रहे, और अब आप दिन में कार्य करते तथा रात के समय अध्ययन करते हैं और शीघ्र ही एक अच्छा सा पद प्राप्त करने की आशा लगाए हुए हैं। इस प्रकार बीस वर्षों से आप इसी बात के लिए चिंतित हैं कि आगामी चालीस वर्षों तक आप आशापूर्वक अच्छा पैसा कमा सकते हैं, ताकि आप अपने निवृत्ति-वेतन (पेन्शन) तथा की गयी बचत से सम्भवत: दस वर्ष और भी आराम के साथ बिता सकें, और यदि बूढ़ा होकर जीना पड़े तो बीस वर्ष और कट जाय। ऐसे माता-पिता के विषय आप क्या सोचेंगे जो इस विचार से अपने बच्चों को कभी स्कूल न भेजें और न कोई शिल्प सिखाए कि ''अरे, अभी उनको खेलने दो। बच्चे भविष्य की चिन्ता कभी नहीं करते। जब वे इस योग्य हो जाएंगे कि वे अपनी देख-रेख स्वयं कर सके तो अपने आप ही वे प्रबंध कर लेंगे''?

यदि पचास या साठ वर्षों तक अच्छे और आराम का जीवन बिताने के लिए आप इतना कष्ट उठाते हुए अपने कई वर्ष बलिदान कर देते हैं तो अनन्तकाल की अनदेखी करना और इस प्रश्न पर ध्यान न देना कि-''मैं अपना अनन्त कहाँ व्यतीत करूँगा'', क्या अनुचित नहीं है? इसके बावजूद भी आप यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि आपको अच्छा पद प्राप्त होगा ही और आगे कौन जाने कि आप बीमार नहीं होंगे, और संभवत: वहाँ तक पहुँचने के पूर्व आप मरेंगे नहीं। किन्तु एक बात तो आप अवश्य जानते हैं कि अनन्त आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। मनुष्यों के लिए एक बार मरना नियुक्त है (इब्रा 9:27)। कोई भी नहीं, यहाँ तक कि संसार का बड़े से बड़ा निन्दक अथवा सब से कठोर नास्तिक भी अभी तक पवित्र शास्त्र के इस पद का खण्डन नहीं कर सका है। वे इसका इनकार नहीं कर सकते। प्रत्येक व्यक्ति उन पर हँसेगा, क्योंकि ऐसा कौन व्यक्ति है जो कभी मृत्यु के समक्ष नहीं आया?

और इस पद का शेष भाग- **''और उसके बाद न्याय का होना नियुक्त है'' - उतना ही सत्य है !**

तो किसी बात पर ध्यान न देकर केवल प्रतीक्षा करना कि जो होगा देखा जाएगा, क्या

अन्यायपूर्ण मूर्खता नहीं? निश्चित रूप से यह आपको ही ढूँढना होगा कि आप अपना अनन्त कहाँ व्यतीती करेंगे। किन्तु तब यह सदैव के लिए दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाएगा ! **''जिस स्थान पर वृक्ष गिरेगा, वहीं पड़ा रहेगा''** (सभो 11:3)।

अब सम्भवत: आप यह कहेंगे, ''हाँ, किन्तु जल्दी क्या है? मैं अत्यन्त व्यस्त हूँ। मृत्यु और मरने जैसी निराशपूर्ण चीज़ों पर क्या बाद में समय मिलने पर विचार नहीं कर सकता हूँ? थोड़ा सयाना होने पर भी तो इस कार्य को कर सकता हूँ। तब तक मैं थोड़ा जीवन का आनन्द ले लूँ, क्योंकि उसके बाद तो मृत्यु के विषय में सोचने का पर्याप्त समय मिलेगा''।

क्या आपको निश्चय है कि आप आगामी पचास वर्ष और जीवित रहेंगे? या बीस वर्ष दस वर्ष? या बारह महीने? या केवल बारह घण्टे? मुझे फ्रीजलैण्ड में एक दुकानदार स्मरण आ रहा है जो अपनी दुकान के दरवाजे के पीछे खड़े हो कर उस सुसमाचार को सुन रहा था जो बाहर सड़क पर प्रचार किया जा रहा था। जब सन्देश समाप्त हो गया, वह अपने शयन-कक्ष में जाकर एक कुर्सी पर बैठ गया- और मर गया!

जो जितने स्वस्थ्य और मज़बूत आप अभी हैं, क्या अपनी इच्छानुसार उसी प्रकार बहुत दिनों तक जीवित रह सकेंगे और तब अपना शेष जीवन आप परमेश्वर को देंगे? और यदि आप यह करना भी चाहें (यह मानते हुए कि ऐसा कर सकने के लिए आप काफी दिन जीवित रहेंगे) तो क्या परमेश्वर आपको उस समय भी स्वीकार करेगा?

निश्चय ही, परमेश्वर ''यह चाहता है कि सब मनुष्यों का उद्धार हो'' (1तीमु 2:4)। वह सभी मनुष्यों को बोलता है: ''कि परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप कर लो'' (2 कुरि 5:20)। उसने एक खूनी मनुष्य को क्रूस के ऊपर स्वीकार कर लिया, और इसी प्रकार हजारों दूसरे लोगों को भी जो अपनी मृत्यु-शय्या पर उस की ओर फिरे। मैं व्यक्तिगत रूप से एक महिला को जानता हूँ जो उस समय परिवर्तित हुई (अथवा जिसका मन-परिवर्तन उस समय हुआ) जब वह पचासी वर्ष की थी।

किन्तु अय्यूब 33 अध्याय में यह बताता है कि परमेश्वर किसी मनुष्य से एक बार अथवा दो बार बोलता है, और यदि वह मनुष्य उस पर ध्यान नहीं देता है, तब वह **''उनकी शिक्षा पर मुहर लगाता है।''**

जब फिरौन ने आज्ञा मानने से कई बार इंकार किया, तो परमेश्वर ने उसके हृदय को इतना कठोर कर दिया कि उसके बाद वह कभी न पिघल सका। **और कलीसिया के ऊपर उठाये जाने के उपरान्त परमेश्वर उन सब में एक भटका देने वाली सामर्थ्य को भेजेगा जिन्होंने सुसमाचार को सुना, परन्तु उसे ग्रहण नहीं किया, ''कि जितने लोग सत्य की प्रतीति नहीं करते, सब दण्ड पाएंगे''** (2 थिस्स 2:11,12)। परमेश्वर आप के साथ भी यही कर सकता है. यदि आप उसकी ओर फिरने के उस निमंत्रण को ठकरा दें।

''इसलिए परमेश्वर अज्ञानता के समयों से आनाकारी करके, अब हर जगह सब मनुष्यों को मन फिराने की आज्ञा देता है। क्योंकि उसने एक दिन ठहराया है, जिसमें वह उस मनुष्य के द्वारा धर्म से जगत का न्याय करेगा, जिसे उसने ठहराया है और उसे मरे हुओं में से जिलाकर, यह बात को सब मनुष्यों पर प्रमाणित कर दी है'' (प्रेरितों 17:30, 31)।

क्या इस सम्बन्ध में आप को पूर्ण सच्चाई के साथ सीधे परमेश्वर के पास जाकर तथा अपने पापों को मानकर अपने को स्वीकार करने के लिए उससे विनती नहीं करनी चाहिए?

''सौ हम मसीह के राजदूत हैं, मानो परमेश्वर हमारे द्वारा समझाता है: हम मसीह की ओर से निवेदन करते हैं, कि परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप कर लो। जो पाप से अज्ञात था, उसी को उसने हमारे लिए पाप ठहराया कि हम उसमें होकर परमेश्वर की धार्मिकता बन जाएं'' (2 कुरि 5:20, 21)। ''यदि आज तुम उसका शब्द सुनो, तो अपने मनों को कठोर न करो'' (इब्रा 4:7)।

हार्दिक अभिवादन के साथ, आपका

--एच. एल. एच.

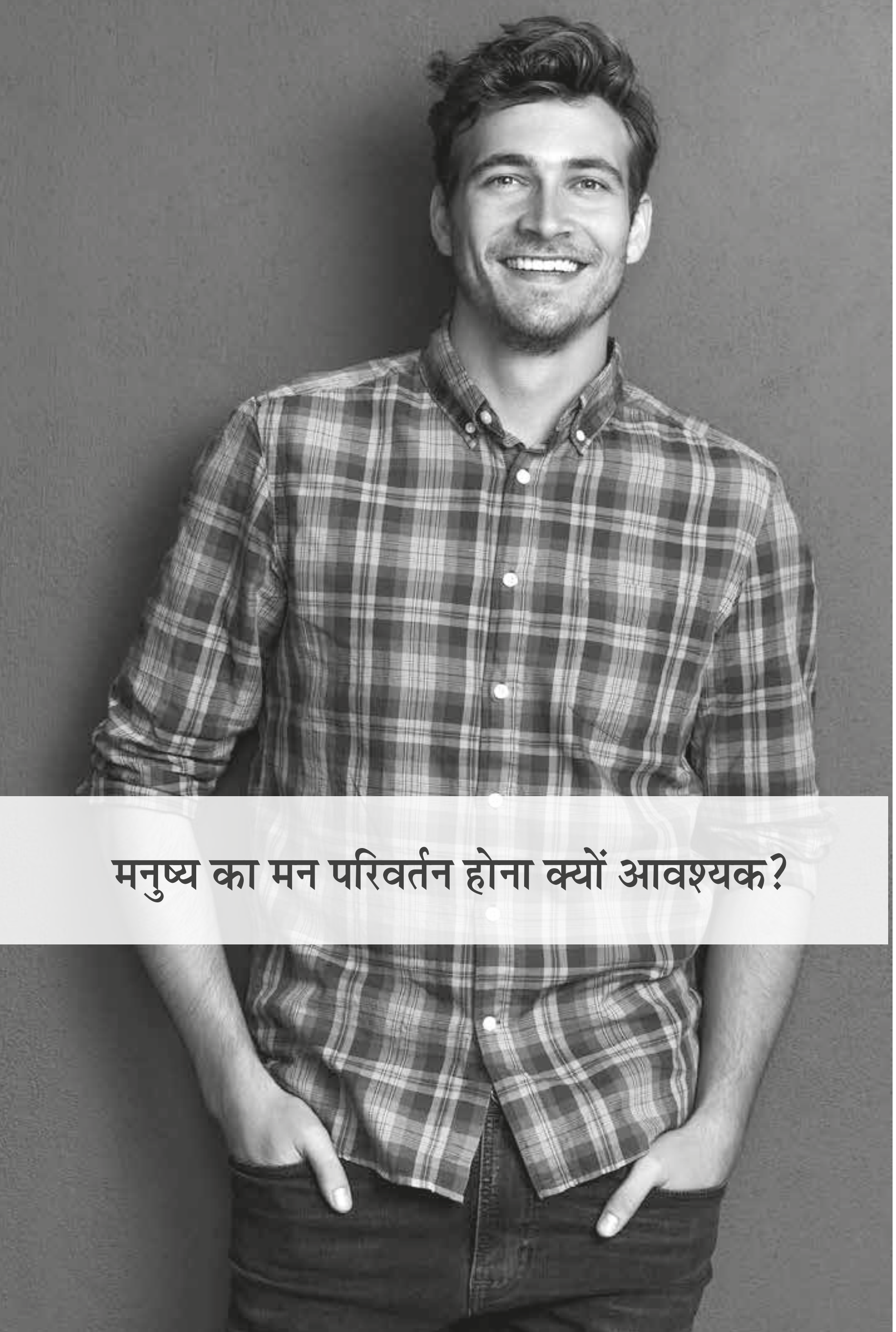

2 मनुष्य का मन परिवर्तन होना क्यों आवश्यक?

प्रिय मित्र,

अभी-अभी आप पूछ रहे थे कि मनुष्य के मन परिवर्तन करने की क्या आवश्यकता है, और यह मन परिवर्तन वास्तव में क्या है।

आप के प्रथम प्रश्न का सबसे सरल उत्तर यह है: क्योंकि परमेश्वर ऐसा करने के लिए कहता है। **जब परमेश्वर कुछ कहता है, तो सभी प्रकार के विवादों का अंत वहीं हो जाता है। तब, हम जो उसकी सृष्टि हैं, हमें अवश्य उसके आगे झुकना और उसकी आज्ञा का पालन करना है।** ''हे मनुष्य, भला तू कौन है जो परमेश्वर का सामना करता है? क्या गढ़ी हुई वस्तु अपने गढ़ने वाले से कह सकती है कि तूने मुझे ऐसा क्यों बनाया--'' (रोमि 9:20) और हमने प्रेरितों 17:30 में देखा है कि परमेश्वर ''अज्ञानता के समयों से आनाकारी करके, अब हर जगह सब मनुष्यों को मन फिराने की आज्ञा देता है।'' हाँ, 'पुराना नियम' में लगभग अस्सी, और 'नया नियम' में लगभग सत्तर उदाहरण ऐसे हैं जो हृदय-परिवर्तन के विषय में कहते हैं।

क्योंकि परमेश्वर अपने वचन में स्पष्ट रूप से बतलाता है कि वह क्यों मनुष्य को मन-परिवर्तन करने की आज्ञा देता है। ''वह तुम्हारे विषय में धीरज धरता है, और नहीं चाहता है कि कोई नाश हो, वरन यह कि सबको मन फिराव का अवसर मिले'' (2 पतरस 3:9)। और प्रेरितों 17 अध्याय में वह सब मनुष्यों को मन-परिवर्तन करने की आज्ञा का कारण बताता है कि, ''उसने एक दिन ठहराया है, जिसमें वह उस मनुष्य के द्वारा धर्म से जगत का न्याय करेगा।''

वह दिन आएगा जब प्रत्येक मनुष्य अपने सृष्टिकर्त्ता को अपने जीवन का लेखा देगा। और परमेश्वर, जो मनुष्य को भलीभांति समझाता है, जानता है कि न्यायकर्त्ता का दण्ड क्या होगा: ''इसलिए कि सबने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं'' (रोमि 3:23)। अत: परमेश्वर चाहता है कि मनुष्य का मन परिवर्तन हो क्योंकि ''यह हमारे उद्धारकर्त्ता परमेश्वर को अच्छा लगता है और भाता भी है''। वह यह चाहता है कि, ''सब मनुष्यों का उद्धार हो, और वे सत्य को भलीभाँति पहचान लें'' (1तीमु 2:3, 4)।

मन-परिवर्तन के लिए परमेश्वर मनुष्य को क्यों आज्ञा देता है? क्योंकि मनुष्य ने अपने सृजनहार की उपासना नहीं कि, बल्कि वह पापी है जो परमेश्वर के ठीक-ठीक दण्ड का भागी है।

मनुष्य पापी है:

यह एक भयानक सत्य है। यह सत्य है बहुत से लोग इस पर विचार भी नहीं करते, और कुछ ऐसे भी हैं जो उसको मानने से इन्कार करते हैं। परन्तु क्या ये उपरोक्त (बाद वाले लोग) वास्तव में इस बात के कायल हैं कि जो कुछ वे कहते हैं, वह सत्य है? क्या कोई सच्चाई के साथ यह कह सकता है कि उससे प्राय: गलतियाँ नहीं होती?

एक से अधिक बार मैं किसी मनुष्य से–जो जोर–जोर से घोषणा करता था कि वह सदैव अच्छा जीवन जीता था तथा दूसरों के साथ यथोचित व्यवहार करता है– पूछ चुका हूँ कि क्या उसके विचार, वचन और कार्य के बाद उसका विवेक उसे दोष नहीं देता। सिर्फ कभी–कभी ऐसा हो सकता है कि कोई ऐसा कहने का साहस कर सके कि उसके साथ ऐसा कभी नहीं हुआ।

एक पापी वह है जिसने पाप किया है। कोई व्यक्ति मात्र केवल कुछ थोड़े से गलत कार्य कर लेने से पापी नहीं ठहरता। मनुष्य का किया गया एक पाप भी उसे पापी बना देता है। हम सब दैनिक जीवन में इसे अच्छी तरह पहचानते जाते हैं। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि, ''फलाँ–फलाँ मनुष्य खूनी नहीं है, क्योंकि उसने तो केवल एक या दो बार ही खून किया है''। **बहरहाल, जहाँ कहीं मनुष्य का सम्बन्ध परमेश्वर के साथ आ जाता है, वहीं मनुष्य किसी दूसरे माप-दण्ड को लागू करना चाहता है।** अन्यथा उसे स्वयं को दोषी ठहराना पड़ेगा।

विवेक

परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को विवेक दिया है (रोमि. 2:15), जो उसे कुछ गलत बातों का दोषी ठहराता है, किन्तु विवेक सभी गलत बातों को नहीं दर्शाता। किसी व्यक्ति का विवेक उस व्यक्ति के वातावरण से प्रभावित होता है अथवा बनता है। **क्योंकि वह सदैव चेतावनी देता रहता है,** यदि कोई वह कार्य करता है जो वातावरण में जिसमें वह विकसित हुआ है, गलत करार दे दी गई हो। परमेश्वर ने इसे देखा है कि सभी मनुष्य–यहाँ तक कि लोग भी जिन्होंने कभी परमेश्वर के विषय में नहीं सुना और उसका वचन नहीं जानते–यदि वे जानबूझ कर गलत कार्य करते हैं तो चेतावनी पाते हैं ताकि वे सचेत होकर इस बात को अनुभव करें कि वे अधम और अपराधी हैं।

यदि आप अपने पिछले जीवन में झांक कर देखें, तो देखिए कि आपने कितने पाप पहले से कर रखे हैं। अभी आप अठारह वर्ष के हैं। आइए, हम मान लेते हैं कि आपने अपने जीवन के प्रथम आठ वर्ष तक जानबूझकर कभी भी कोई गलत कार्य नहीं किया। निस्सन्देह, ऐसी बात नहीं, क्योंकि आप को ज्ञात है कि इस के पूर्व आप का विवेक आप को दोषी ठहरा चुका है।

किन्तु इस समय के बाद आपके विवेक ने आपको कितनी बार दोषी ठहराया? आइए, यदि हम औसतन–लगभग प्रतिदिन एक बार ही मान ले, तो वह प्रति वर्ष 365 बार होगा और आप के लिए 3650 बार। यदि कोई अटठाइस वर्ष का है तो उसके लिए यह 7300 बार, और 68 वर्ष की आयु वालों के लिए 21, 900 बार होगा।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभी तक आपका विवेक आपको 3650 बार कह चुका है कि आपने पाप किया है– परन्तु वास्तव में क्या इससे अधिक बार नहीं? क्या कोई भी व्यक्ति जिसने अनेक पाप किये हों, यह दावा कर सकता है कि वह पापी नहीं? क्या एक धर्मी ऐसे मनुष्य को निर्दोष ठहरा सकता है?

क्या इससे स्पष्ट नहीं होता कि प्रत्येक मनुष्य का न्याय किया जाना आवश्यक है, और इसे परमेश्वर के समक्ष स्वीकार कर लेना चाहिए कि उसने उसके विरूद्ध पाप किया है, और वह अनन्तकाल के लिए अपने को गँवा बैठने का हकदार है?

गुप्त पाप

किन्तु अब एक दूसरा प्रश्न उठ खड़ा होता है: कि क्या मनुष्य उसी समय पापी ठहरता है, जब वह जान बूझकर पाप करता है? क्या वह तब दोषी नहीं ठहर सकता जबकि उसे ज्ञात हो गया हो कि जो कुछ वह कर रहा है, वह गलत है? क्या एक न्यायधीश किसी को कानून तोड़ने पर उसको 'दोषी' होने का फैसला नहीं सुनाता, चाहे भले ही वह व्यक्ति क्यों न कहे कि उसको कानून का ज्ञान नहीं था? संभव है, वह कानून को जानता रहा हो, क्योंकि कानून तो प्रकाशित कर दिये जाते हैं। और इस प्रकार हम यह मुहावरा पाते हैं– ''अज्ञानता कानून से बचने का साधन नहीं है।'' ''अधिक से अधिक एक न्यायधीश कानून का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति की अज्ञानता को ध्यान में रखते हुए उसे दण्ड दे सकता है। किसी कानून का उल्लंघन करने वाले एक वकील को गँवार लड़के की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर दण्ड मिलेगा, चाहे उन लोगों का अपराध एक ही क्यों न हो। बहरहाल जो भी हो दोनों मामलों में सुनाया गया फैसला यही होगा कि ये ''दोषी'' पाये गए।

यह नियम हम परमेश्वर के वचन में भी पाते हैं। ''और यदि कोई ऐसा पाप करे कि उन कामों में से जिन्हें यहोवा ने मना किया है, किसी काम को करें, तो चाहे वह उससे अनजाने में हुआ हो, तो भी वह दोषी ठहरेगा और उसको अपने अधर्म का भार उठाना पड़ेगा'' (लैव्यवस्था 5 : 17)। यह बिल्कुल स्पष्ट है। क्या एक मनुष्य को, जोकि एक सृष्टि होने के नाते अपने सृजनहार के प्रति अपने सब कार्यों का लेखा देने के लिए उत्तरदायी है, यह अधिकार है कि वह अपने लिए स्वयं निर्धारित करे कि वह दोषी है अथवा निर्दोष है? निश्चय, ऐसा नहीं हो सकता। परन्तु वह सृजक, जिसने अपनी सृष्टि को सृजा है और उसे अधिकार दिया है, केवल

उसी को उसका न्याय करने का अधिकार है क्या उसकी सृष्टि ने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया। **केवल परमेश्वर ही इस बात का निर्धारण करता है कि पाप क्या है यदि हम जानना चाहें कि यह क्या है तो हमें परमेश्वर के विचारों को जानना होगा।**

परमेश्वर का वचन इस बात का खुलासा स्पष्ट रूप से करता है। उत्पत्ति 1 : 28 तथा 2 :15-17 में हम उन अधिकारों के विषय में जानकारी पाते हैं जो मनुष्य को उसने दिये। उसे पूर्णरूप से परमेश्वर की अधीनता एवं आज्ञाकारिता में रह कर अदन के बाग की देखभाल करनी थी। इस आज्ञाकारिता का चिन्ह यह था कि उनको भले-बुरे के ज्ञान के वृक्ष के फल खाने को मना किया गया था।

परन्तु मनुष्य ने क्या किया? उसको यह जो पहला अवसर मिला था कि वह अपनी आज्ञाकारिता-निर्भरता परमेश्वर के प्रति व्यक्त करता, उसने इसे अनाज्ञाकारिता का अवसर बना दिया- कि जानबूझकर उसकी आज्ञा का उल्लंघन करे। यह उसका आरम्भ था। तीन हजार वर्ष बाद परमेश्वर को अपने वचन में यह लिखना पड़ाः ''यहोवा ने स्वर्ग पर से मनुष्यों पर दृष्टि की, कि देखे कि कोई बुद्धिमान, कोई परमेश्वर का खोजी है कि नहीं। वे सब भटक गए, वे सब भ्रष्ट हो गए, कोई सुकर्मी नहीं, एक भी नहीं'' (भजन 14 : 2, 3)। उसके एक हजार वर्ष बाद और चलकर परमेश्वर का वचन कहता है : ''कोई समझदार नहीं, कोई परमेश्वर को खोजने वाला नहीं। सब भटक गए हैं, सब के सब निकम्मे बन गए, कोई भलाई करने वाला नहीं, एक भी नहीं'' (रोमि. 3 : 11, 12)। क्या यह पूर्णतः स्पष्ट नहीं कि परमेश्वर का निर्णय यह होना चाहिए था कि, ''सबने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं'', (रोमि. 3 : 23)?

पाप क्या है?

किन्तु आप यह कह सकते हैं- ''हमें यह मान ही लेना चाहिए कि कभी-कभी हम वह कार्य करते हैं जो गलत हैं। किन्तु उसी प्रकार हम यह भी नहीं देखते कि कोई भी मनुष्य कभी कोई भला कार्य न करता हो। निस्सन्देह, अनेक मनुष्य ऐसे भी पाये जाते हैं जो भले कार्य करते हैं। तनिक उन मनुष्यों पर भी विचार कीजिये जो दूसरों की सहायता करने में अपना सम्पूर्ण जीवन बलिदान कर देते हैं, जैसे : हेनरी डूनन्ट, अलबर्ट श्वीजर तथा अनेक उनके जैसे और भी लोग। और उदाहरण के लिए जब मैं खाता हूँ, पीता हूँ, विद्यालय जाता हूँ या कार्य करता हूँ- तो निश्चय ये चीजें बुरी नहीं हैं, ... किन्तु हैं?''

इन चीजों को वस्तुगत दृष्टि से देखना गलत नहीं है, किन्तु फिर भी व्यक्तिपरक ढंग से कुल मिलाकर गलत हो सकतीं हैं। सेब खाना गलत नहीं है किन्तु माँ के मना करने पर भी यदि बालक उसे खा ले, तो यह अनाज्ञाकारिता है। यहाँ पर हम प्रश्न के बिल्कुल सारे भाग को स्पर्श कर रहे हैं कि, ''पाप क्या है?''

मनुष्य परमेश्वर द्वारा सृजा गया था और उसे आज्ञा मिली थी कि वह उसकी उपासना करे। इस प्रकार, मनुष्य यहां परमेश्वर की सृष्टि हो कर उसके द्वारा दिये गये कार्य के विरूद्ध जाकर पाप करता है। इस सिद्धांत को हम 1 यूहन्ना 3 : 4 में इस प्रकार पाते हैं : ''पाप तो व्यवस्था का विरोध है।'' **प्रत्येक वह कार्य जिसमें उसकी सृष्टि पर परमेश्वर का कोई भी अधिकार नहीं समझा जाता, वह पाप है।**

इसी प्रकार से खाना भी, यदि परमेश्वर पर आश्रित होकर न खाया गया हो तो वह पाप है। प्रभु यीशु भोजन तभी करता था, जब परमेश्वर उसे ऐसा करने को कहता था। (मत्ती 4 : 4 तथा देखें यूहन्ना 4 : 34)। इसलिए परमेश्वर का वचन हमें बताता है कि, ''जो कुछ विश्वास से नहीं, वह पाप है'' (रोमि. 14 : 23)।

यदि हम इस नियम को अपने जीवनों पर लागू करें तो क्या पाते हैं? कौन सा वह कार्य जिसे हमने किया, कौन सा वह शब्द जो हमने बोला, कौन सा विचार जो हमारे मस्तिष्क में उठा वह परमेश्वर की आज्ञाकारिता में तथा हृदय में इस विचार के साथ आया कि, ''प्रभु, इस कार्य में मेरे लिए तेरी क्या पवित्र इच्छा है?'' क्या हम इस निष्कर्म पर नहीं पहुँचते कि-एक भी नहीं। इस प्रकार तब वह सब जो हमने किया, वह पाप है।

परमेश्वर का वचन यह भी कहता है : ''कोई भलाई करने वाला नहीं, एक भी नहीं'' (रोमि. 3 : 12)'' और उनके मन के विचार में जो कुछ उत्पन्न होता है, सो निरन्तर बुरा ही होता है'' (उत्प. 6:5)। यही कारण है कि एक धर्मी परमेश्वर मानव जाति को दोषी ठहराये। इसलिए दयालु परमेश्वर सभी मनुष्यों को बुलाता है कि वे अपना मन-परिवर्तन करें, ताकि वह उन्हें उस भयानक दण्ड से बचा सके जो कि उनकी प्रतीक्षा कर रहा है।

मन-परिवर्तन क्या है?

अब हम आपके द्वितीय प्रश्न पर आते हैं कि- ''वास्तव में मन-परिवर्तन क्या है?''

यह शब्द सरलता से परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि- ''मन-परिवर्तन'' शब्द (जिसका अनुवाद कभी-कभी ''पश्चाताप'' भी होता है) परमेश्वर के वचन के मूल हस्तलेखों में प्रयुक्त यूनानी शब्द 'मेटानोइया' का सटीक अनुवाद नहीं है। हमारे पास कोई ऐसा एक शब्द नहीं जो इस यूनानी शब्द का सही अर्थ दे सके।

थिस्सलुनीकियों 1 : 9 से यह स्पष्ट है कि इस शब्द में 'फिरने' का भाव सुरक्षित है। इससे पूर्व थिस्सलुनी के लोगों का जीवन उनकी मूर्तियों पर केन्द्रित था। अब वे पूर्णतः अपनी मूर्तियों की ओर से फिरकर उनकी ओर पीठ फेर चुके थे, और परमेश्वर की ओर फिर चुके थे। किन्तु प्रेरितों 2 : 37, 38; 17 : 30, 31; प्रकाशित 9 : 20, 21 तथा अन्य दूसरे परिच्छेद यह स्पष्ट कर देते हैं कि आत्म-निर्णय और परमेश्वर के समक्ष अपने जीवन तथा कार्यों को स्वयं जांचने के भाव भी इस शब्द से ज़ुड़े हुए हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मन-परिवर्तन परमेश्वर के पास जाकर उसके समक्ष यह पश्चाताप करते हुए कि उसका जीवन परमेश्वर के अधीन नहीं रहा है- अपने स्वयं को दोषी ठहराना है कि वह दुष्ट एवं अपराधी है। इसमें यह भाव भी निहित है कि इसके लिए वह खेदित है।

यद्यपि मन-परिवर्तन की कोई एक सुस्पष्ट शास्त्रीय परिभाषा देना सरल कार्य नहीं है, फिर भी वह व्यक्ति जो परमेश्वर के प्रकाश में आ चुका है और देख चुका है कि वह परमेश्वर के सामने क्या है और उसके लिए सजा क्या है, उसके लिए किसी प्रकार की कठिनाई नहीं। परमेश्वर हृदय और विवेक को देखता है-प्रतिभा को नहीं। उस चुंगी लेने वाले ने छाती पीट कर केवल इतना कहा, ‘‘हे परमेश्वर, मुझ पापी पर दया कर’’ (लूका 18 : 13)। किन्तु ‘‘परमेश्वर जो मन के विचार और भावनाओं को जांचता है’’ (इब्रा. 4 : 12), उसे मालूम था कि इन शब्दों में प्रत्येक बात सम्मिलित थी।

हमारे बोले जाने वाले शब्द नहीं, बल्कि परमेश्वर के समक्ष हमारे हृदय की दशा इस बात का निर्धारण करती है कि हमारा ‘मन-परिवर्तन’ हुआ है, अथवा नहीं। और अब मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। क्या आपका मन-परिवर्तन हो चुका है? क्या आप अपने पापों और अपराधों को लेकर खोयी हुई दशा को स्वीकार करते हुए कभी उसके पास गये?

ओह! अब और अधिक प्रतीक्षा न करें, किन्तु इसे आज ही कर डालें। कल के दिन शायद बहुत देर हो चुकी हो।

हार्दिक अभिवादन के साथ,

आपका मित्र,

एच. एल. एच.

परमेश्वर से मेरा मेल कैसे हो?

3 परमेश्वर से मेरा मेल कैसे हो?

प्रिय मित्र,

यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ कि आपने पाया कि आप एक भटके हुए पापी मनुष्य हैं, और यदि अभी आपको परमेश्वर के समक्ष उपस्थित होना पड़ जाये तो आप सदैव के लिए अपने को गँवा बैठेंगे। आपने परमेश्वर के समक्ष अपने पापों का पश्चाताप भी किया है। किन्तु अभी भी नहीं जानते कि वे पाप क्षमा हुए अथवा नहीं। और अब आप पूछ रहे है कि क्या आप सम्भवत: ऐसा तो अनुभव नहीं करते कि पश्चाताप अपर्याप्त है अथवा मन-परिवर्तन इतना गहरा नहीं है। कई दिन तो ऐसा भी होता है कि आप इस विषय पर बिल्कुल भी नहीं सोचते। या सोचते भी हैं तो बिल्कुल ठंडेपन से।

मैं आपके विचारों को समझ सकता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं भी इसका अनुभव किया है वर्षों तक मैं (अभी बिल्कुल छोटा था) यही समझता रहा कि मैं भटका हुआ हूँ। प्राय: दिन को तो मैं इस विषय में नहीं सोचता था, किन्तु रात्रि के समय अपने बिस्तर पर भयभीत हो उठता था। ''यदि मैं आज रात्रि में मर जाऊं तो मैं अनन्तकाल के लिए खो जाऊंगा,'' मैं सोचा करता था। तब मैं पुन: परमेश्वर के समक्ष अपने पापों को मान लेता और उससे क्षमा मांगता। परन्तु मुझे कभी भी निश्चय नहीं हो पाया कि वे क्षमा हो गए। एक प्रसंग पर मेरी एक बड़ी बहन से इस संबंध में पाया की उसे शांति प्राप्त हुई थी। मैंने पूछा कि उसके लिए उसने क्या किया था, और उसी शाम मैंने भी ठीक वैसा ही किया-सच, बिना किसी परिणाम के।

जब मैं 17 वर्ष का था और एक सायंकाल अपने बिस्तर में निराश बैठा हुआ था और सोचा, ''उन सभी प्रार्थनाओं से तो कोई लाभ नहीं। कितने वर्षों से प्रत्येक सायंकाल तूने परमेश्वर से मांग की है कि वह तुझे बचा ले, किन्तु यहाँ तो कुछ भी अन्तर नहीं आया।'' उसी क्षण परमेश्वर ने मुझे एक विचार दिया: परन्तु क्या यह नहीं कहा गया है, 'यदि हम अपने पापों को मान लें, तो वह हमारे पापों को क्षमा करने, और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है' (1 यूह. 1 : 9)। क्या यह सत्य नहीं? निस्संदेह यह सत्य है, क्योंकि परमेश्वर झूठ नहीं बोलता, मैंने सोचा। ठीक उसी समय प्रभु ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसका मेरे लिए क्या अर्थ था। इसका अर्थ यह है कि जब मैंने पहली बार सच्चाई के साथ परमेश्वर के समक्ष अपने पापों से पश्चाताप किया, मेरे सभी पाप क्षमा हो गये। उसी क्षण मेरे हृदय में शांति आ गई या यों कहिये कि मेरे विवेक को शान्ति मिली। उसी शाम से लेकर आगे तक मुझे मालुम हो गया कि मेरे पाप क्षमा हो गए। मैंने इस पर कभी फिर सन्देह नहीं किया, क्योंकि परमेश्वर ने यह कहा है, क्या उसी ने नहीं कहा?

हमें कितना पश्चाताप करना चाहिए?

तब यह ऐसा क्यों हुआ कि मुझे शान्ति प्राप्त करने में इतने वर्ष लगे? नि:सन्देह उनमें से एक कारण तो यह था कि मेरा पश्चाताप गहरा नहीं था, और मुझे पाप का बोध (अंतरात्मा को पाप का अहसास) व्यापक नहीं था। यह भी नहीं कि परमेश्वर कोई ऐसा मापदण्ड रखता है कि यदि किसी के पाप-बोध और उसके पश्चाताप इतने ऊँचे नहीं हुए तो वे क्षमा नहीं होंगे। कभी भी किसी मनुष्य ने अपने मन-परिवर्तन के समय पर्याप्त गहरा पश्चाताप और पाप बोध का अनुभव नहीं किया। **अपने मन-परिवर्तन के बाद तक भी हम नहीं सीख सकते कि हम अपने में कितने दोषी हैं।**

फिर भी परमेश्वर इतना अवश्य चाहता है कि हम अपनी खोयी हुई अवस्था का कुछ ज्ञान रखें। यह बोध जितना गहरा होगा, उतना ही पक्का हमारा मन-परिवर्तन होगा, और जितना ही भलीभाँति हम अपने दण्ड को समझेंगे, उतना ही सच्चा हमारे पापों का अंगीकार होगा, और तब उतना ही अधिक उसके बाद हमें शान्ति और चैन होगा। इसलिए पवित्र आत्मा एक पापी मनुष्य के हृदय में कार्य करता है और उसके विवेक को परमेश्वर के प्रकाश में लाना चाहता है। वहाँ वह यह होने देगा कि मनुष्य अपनी खोई हुई दशा और असंख्य पाप को समझ सके और कुछ ऐसा अनुभव कराये कि पवित्र और धर्मी परमेश्वर उस पर अपना दण्ड क्यों न लाये।

किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। मुख्य बात तो यह है कि मैं अपनी ओर से देख रहा था- परमेश्वर की ओर से नहीं और इसलिए परमेश्वर का वचन मेरे लिए पर्याप्त नहीं था। जब मैंने अपने पापों को देखा और यह कि मैंने सब कुछ बरबाद कर लिया था, मुझे परमेश्वर की आवाज को सुनना चाहिए था। परमेश्वर का वचन तो बहुत ही सीधा है: ''यदि हम अपने पापों को मान ले, तो वह हमारे पाप को क्षमा करने, और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है।'' मैं तो अपने हृदय अथवा अपने जीवन में ऐसी चीज की प्रतिक्षा कर रहा था जो आकर मुझे यह आश्वासन दे कि मुझे क्षमा मिल चुकी है। परन्तु मुझे परमेश्वर के वचन पर विश्वास करना था जो प्रत्येक मनुष्य को, जो अपने पापों का अंगीकार करता है, यह भरोसा दिलाता है कि उसके पाप क्षमा हो गये।

परमेश्वर की धार्मिकता

परमेश्वर किसी संसारिक तथा भावुक-हृदय के न्यायाधीश के समान नहीं हैं। संभव है कि कोई इस संसारिक न्यायाधीश की भावनाओं को प्रभावित करके सरलता के साथ उससे बच निकले, जबकि दूसरे को इतनी सरलता से प्रभावित नहीं किया जा सकता।

किन्तु परमेश्वर का अनुग्रह और प्रेम उसकी धार्मिकता के विरूद्ध कभी भी नहीं जा सकता। सुसमाचार के विषय में यही तो एक अद्‌भुत बात है। वही परमेश्वर जो एक दिन प्रत्येक पापी के न्याय के दिन अपनी धार्मिकता दिखायेगा, वही आज प्रत्येक पापी के, जो उसके पास प्रभु

यीशु पर विश्वास करके आता है, सभी प्रकार के पाप क्षमा करके अपनी धार्मिकता को दिखाता है। ''क्योंकि उसमें परमेश्वर की धार्मिकता विश्वास से और विश्वास के लिए प्रकट होती है'' (रोमि 1 : 17)। वरन् ''इसी समय उसकी धार्मिकता प्रकट हो, कि जिससे वह आप ही धर्मी ठहरे, और जो यीशु पर विश्वास करे, उसका धर्मी ठहराने वाला हो'' (रोमि 3 : 26)।

धर्मी ठहराया जाना

वास्तव में, यदि परमेश्वर कोई कार्य कर सकता है तो वह केवल अपनी धार्मिकता के अनुसार ही कर सकता है। इसलिए आज मानव-जाति बिना किसी आशा के सदा के लिए खोयी हुई होती, यदि प्रभु यीशु ने कलवरी पर उस छुटकारे के कार्य को पूरा ना किया होता। परमेश्वर का प्रेम पापी मनुष्य को अनन्त विनाश से बचना चाहता था। किन्तु यह सम्भव न था, क्योंकि उसकी धार्मिकता की मांग यह थी कि पापी मनुष्य को दण्ड मिलना चाहिए। और परमेश्वर का प्रेम उसकी धार्मिकता के विरूद्ध कभी भी कार्य नहीं कर सकता।

तब वह अद्‌भुत घटना आ घटित हुई जिसकी चर्चा हम इब्रानियों 10, भजन संहिता 40 और अन्य स्थलों में पढ़ते हैं। परमेश्वर की इच्छा तो यह थी कि सभी पापी बचाए जा सकें (1 तीमु. 2 : 4)। प्रभु यीशु मनुष्य बना और उसने कहा- ''देख, मैं आ गया हूँ, ताकि तेरी इच्छा पूरी करूँ।'' वह सबके पाप के प्रश्न का समाधान करने के लिए एक ही बार क्रूस पर चढ़ गया। वह वहाँ पाप-बलि बन गया और पाप के लिए परमेश्वर का दण्ड उसके ऊपर उण्डेल दिया गया, और इस दण्ड से परमेश्वर की धार्मिकता पूर्णरूप से संतुष्ट हो गई। किन्तु प्रभु ने यह दण्ड अपने स्वयं के पापों के लिए नहीं सहा। वह तो सदा से पवित्र और शुद्ध था तथा जो पाप से अनजान था। उसने इसे उन सबके बदले में सह लिया जो विश्वास के साथ अपना उद्धारकर्त्ता ग्रहण कर ले। अब परमेश्वर प्रत्येक मनुष्य से कह सकता है: ''परमेश्वर के साथ मेल-मिलाप कर लो'' (2 कुरि. 5 : 20)। और न केवल परमेश्वर का प्रेम, बल्कि उसकी धार्मिकता भी यह मांग करती है कि वह प्रत्येक जो प्रभु यीशु पर विश्वास करके परमेश्वर के पास आए, वह पापों की क्षमा प्राप्त करे।

पुनरूत्थान परमेश्वर की धार्मिकता का प्रमाण है

परन्तु इस बिन्दु पर मैं और भी गहराई के साथ जाना चाहूँगा। प्रभु यीशु ने क्रूस पर चढ़ कर वहाँ उन सबके पापों को अपनी देह पर उठा लिया, जिन्होंने उसे ग्रहण किया है, अथवा जो अभी ग्रहण करेंगे (1 पत 2 : 24)। वहाँ वह हमारे लिए पाप ठहराया गया, और उसी के अनुसार दण्ड भी सहा (2 कुरि. 5 : 21, रोमि. 8 : 3)। तब यह दण्ड क्या था? ''पाप की मजदूरी मृत्यु है'' (रोमि. 6 : 23), परमेश्वर से अलगाव (प्रकाशित 20 : 14, 15)। इसको प्रभु यीशु को क्रूस पर सहना पड़ा। अंधकार की उन भयानक घड़ियों में वह परमेश्वर का त्यागा हुआ था और अंत में वह मर गया। किन्तु तभी वह यह कह सका- ''पूरा हुआ''।

परन्तु क्या छुटकारे का कार्य पूरा कर लेने के बाद प्रभु कब्र में पड़ा रहा? परमेश्वर की वह धार्मिकता जो आरम्भ से ही उस पर दण्ड लायी थी, अब उसी की यह मांग थी कि वह आगे को मरा न रहे। कार्य पूर्ण हो चुका था– परमेश्वर का दण्ड पूरा–पूरा दिया गया, और परमेश्वर की धर्मिकता की मांग पूर्णरूप से संतुष्ट हुई। इसलिए परमेश्वर ने उसे मृत्तकों में से जिला उठाया (इफि. 1 : 20)। यह संसार तथा हमारे–दोनों के लिए प्रमाण है कि परमेश्वर ने प्रभु यीशु के प्रतिस्थापन कार्य को स्वीकार किया और उससे संतुष्ट हुआ (यूह.16 : 8, 10)। यदि प्रभु, जी न उठा होता तो यह इस बात का प्रमाण होता है कि कार्य अभी पूर नहीं हुआ है। तब हमारा छुटकारा नहीं हुआ होता (1कुरि. 15 : 17, 18)। इससे हम देख सकते है कि पुनरूत्थान सुसमाचार केन्द्र–बिन्दु है, और इस पर किया गया कोई भी आक्रमण सुसमाचार को तहस–नहस करता है।

इसलिए रोमि. 4 : 25 कहता है– ''वह हमारे अपराधों के कारण पकड़वाया गया और हमें धर्मी ठहराने के लिए जिलाया भी गया।''

इस अनुग्रह–काल में जिसमें हम रह रहे हैं, परमेश्वर प्रत्येक मनुष्य से कहता है: ''इसलिए कि सबने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित है''। किन्तु वह यह भी कहता है: ''परन्तु उसके अनुग्रह से उस छुटकारे के द्वारा जो मसीह यीशु में है, सेंतमेंत धर्मी ठहराये जाते हैं, जिसे परेमश्वर ने अपने लहू के कारण एक प्रायश्चित ठहराया है.....'' (रोमि. 3 : 23–25)।

यह संदेश तो सबके लिए है,''किन्तु यह केवल उन्हीं सब पर लागू होता है जो विश्वास करते हैं'' (रोमि. 3 : 22)। केवल वे लोग जो ईश्वरीय संदेश को ग्रहण करते हैं कि वे खोये हुए हैं, और तब विश्वास से प्रभु यीशु को स्वीकार करते हैं, वे ही उसमें सहभागी होते हैं।

अब पवित्र आत्मा ने आपके हृदय में कार्य किया और आपने अपने पाप और अपनी खोयी हुई दशा को देखा है। आप परमेश्वर के पास गए और उनके समक्ष मान लिया कि आप क्या हैं और आप ने क्या–क्या किया है। परमेश्वर ने आपको प्रभु यीशु दिखाया और कहा: ''वही पापियों के लिए मरा, यदि तुम उसे स्वीकार करते हो, तो मैं उसके कार्य तुम्हारे खाते में डाल दूँगा।'' आपने प्रभु यीशु को ग्रहण किया। अब आपको यह विश्वास करना चाहिए कि जो कुछ परमेश्वर कहता है, वह सत्य है और आपके पाप क्षमा हो चुके। इस बात का कोई महत्व नहीं है की आपके विचार कहें अथवा न कहें कि यह सब कुछ ठीक है, परन्तु एक मात्र महत्वपूर्ण बात यह है कि परमेश्वर कहता है कि सब कुछ ठीक है, जब फसह की रात्रि को संहार करने वाला यहोवा का दूत सम्पूर्ण मिस्र देश में घूमा तो जिन घरों में उसने लहू का चिन्ह देखा, उन घरों को वह छोड़ता गया (निर्ग. 12 अध्याय)। चाहे मिस्र देश के पहिलौंठो ने अथवा उनके घर के सदस्यों ने स्वयं उसे देखा या नहीं, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ा। यदि, जो कुछ परमेश्वर ने

कहा था, उन्होंने किया होता तो सब कुछ ठीक था। बहरहाल, शान्ति पाने के लिए उनको यह विश्वास करना चाहिए था कि वे सुरिक्षत रहेंगे, क्योंकि परमेश्वर ने ऐसा कहा है।

इन सब में अद्‌भुत भाग यह है कि जब परमेश्वर एक पापी मनुष्य को स्वीकार करता है तो **इसमें हर प्रकार से परमेश्वर की महिमा होती है।** उस समय स्पष्ट रूप से उसकी दया, उसका अनुग्रह और उसका प्रेम दिखाई देता है।

किन्तु यही सब कुछ नहीं है। जब एक पापी मनुष्य प्रभु यीशु पर विश्वास करके पमेश्वर के पास आता है, तो परमेश्वर प्रभु यीशु के सारे कार्य उस मनुष्य के खाते में डाल देता है। चूँकि प्रभु यीशु ने पाप का दण्ड पूर्णतया अपने ऊपर ले लिया, इसलिए परमेश्वर एक विश्वासी को इस प्रकार देखता है मानों उसने कभी कोई पाप न किया हो, क्योंकि कोई भी ऐसा पाप नहीं जिसका दण्ड न चुकाया हो। अत: जब परमेश्वर एक पापी को धर्मी ठहराता है और आने वाले न्याय (दण्ड) से उसे मुक्त करता है तो परमेश्वर की धार्मिकता प्रकट होती है। उसकी धार्मिकता और सच्चाई महिमान्वित होती है, क्योंकि उसने अपने वचन में इसकी प्रतिज्ञा की है, क्या नहीं की है? इससे 1 यूह. 1 : 9 का अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि यदि हम अपने पापों को मान ले तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वासयोग्य और धर्मी है।

परमेश्वर जानता था कि हम कौन थे

अब आप कह रहें हैं– ''किन्तु मुझे तो कोई अन्तर नहीं जान पड़ता। वास्तव में देखा जाये तो मैं पहले से अधिक, अब पाप करता हूँ।''

मैं सहज ही यह विश्वास करता हूँ कि आप पहले की अपेक्षा अपने जीवन में अधिक पाप देखते हैं। यह कैसे हो सकता है, जबकि पवित्र आत्मा ने आपकी आँखों को ज्योतिर्मय कर दिया है। परन्तु परमेश्वर–आपको इस उस समय भी भली–भाँति जानता था जब आप उसके पास आये। उसको हृदय, आपका जीवन, आपके द्वारा किये गये सब पाप और भविष्य में आप के द्वारा किया जाने वाले सब पाप ज्ञात थे जो आप इस पृथ्वी पर कभी नहीं जान सकते, वह जानता है और जानता था। ''हमारे उद्धारकर्त्ता परमेश्वर की कृपा और मनुष्यों पर उसकी प्रीति तब प्रकट हुई'' जब हम ''निर्बुद्ध, अनाज्ञाकारी, भ्रम में पड़े हुए, रंग–रंग के अभिलाषाओं और सुख–विलास के दासत्व में थे, और बैर–भाव और डाह करने में जीवन निर्वाह करते, घृणित थे और एक दूसरे से बैर रखते थे'' (तीतुस 3 : 3, 4)। ''क्योंकि जब हम निर्बल ही थे, तो मसीह.... भक्तिहीनों के लिए मरा..... परमेश्वर हम पर अपने प्रेम की भलाई इस रीति से प्रकट करता है कि जब हम पापी ही थे, तो मसीह ...... हमारे लिए मरा .... क्योंकि बैरी होने की दशा में....... हमारा मेल परमेश्वर के साथ हुआ'' (रोमि. 5 : 6–10 देखिए 2 कुरि. 5 : 20)।

परमेश्वर के साथ हमरा मेल हो गया

और इस प्रकार यह भली-भाँति जानते हुए कि आप कौन हैं, परमेश्वर ने प्रभु यीशु को दे दिया कि यदि आप उस पर विश्वास करे तो अनन्तजीवन पाएं, जैसा कि उसने कहा है कि यदि आप प्रभु यीशु के लहू पर विश्वास करने के द्वारा परमेश्वर के पास आते हैं तो सेंतमेंत धर्मी ठहराये जाएंगे (रोमि. 3 : 23. 24)।

उसने कहा है कि आपके केवल इसी प्रकार उसके पास आने मात्र से ही, आप अपने सभी अपराधों से मुक्त हो जायेंगे, और ऐसा करने में वह धर्मी ठहरेगा। क्या यह प्रकट नहीं है कि जब आप अपने पापों को मान कर उसके पास आये हैं, आपके विरोध में उसके पास अब और कुछ भी नहीं? उसके दृष्टिकोण से अब सब कुछ सामान्य हो गया।

तो क्या आपके मन में अभी भी परमेश्वर के विरूद्ध कुछ रह गया है? निस्सन्देह कुछ भी नहीं। क्या आप परमेश्वर के पास यह महसूस करते हुए नहीं गये कि वह नहीं, बल्कि आप दोषी थे और उसके लिए आपको क्षमा प्राप्ति की आवश्यकता थी?

तब फिर आप परमेश्वर के साथ मेल क्यों नहीं कर लेते? परमेश्वर के साथ मेल कर लेने का अर्थ है कि अब आप और परमेश्वर के मध्य और कुछ ठीक होना शेष नहीं रहा-सब कुछ ठीक हो चुका है। अब आपके विरुद्ध परमेश्वर के पास कुछ भी नहीं, क्योंकि प्रभु पर आपके विश्वास करने के द्वारा उसने आपको धर्मी ठहरा दिया और उसके द्वारा प्राप्त अनन्त छुटकारे में भी भागीदार हैं (रोमि. 5 : 1, इब्र. 9 : 12)। और अब से आपके पास भी उसके विरूद्ध कुछ नहीं रहा, अब आपका पमेश्वर से मेल-मिलाप हो गया (2 कुरि. 5 : 20)। अब आपने परमेश्वर से मेल कर लिया! रोमियो 5 : 1 अब आप से यह करने के लिए कहता है- ''सो जब हम विश्वास के द्वारा धर्मी ठहरे, तो अपने प्रभु यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर के साथ मेल रखें।''

किन्तु मेरा मेल नहीं हुआ

परन्तु आप कहते हैं कि अभी आपका मेल नहीं हुआ। यह ठीक भी हो सकता है, क्योंकि आपने यह तथ्य स्वीकार नहीं किया कि वह मेल तो पहले से ही हो चुका है। प्रभु यीशु ने मेल करवाया है। वही हमारा मेल है। और वह हमें अपने मेल का सुसमाचार सुनाता है (इफि. 2 : 16, 14, 17)। ''उसके क्रूस पर बहे हुए लहू के द्वारा मेल-मिलाप करके'' (कुलु. 1 : 20) जब आपने उसको ग्रहण कर लिया, तब इसमें आपका भाग था। परन्तु उसका सच्चा आनन्द प्राप्त करने के लिए आपको अवश्य विश्वास करना चाहिए कि यह सत्य है। जैसे ही आप विश्वास करेंगे कि परमेश्वर द्वारा कहा गया कि प्रभु यीशु ने क्रूस पर मेल-मिलाप कराया, सत्य है, आपका मेल हो जायेगा। आप भी ठीक वैसा ही कर रहे हैं जैसा कि कुछ जापानी सैनिकों

ने प्रशान्त महासागर के एक द्वीप में किया था। युद्ध समाप्त हुए पाँच वर्ष हो चुके थे, किन्तु वे अभी युद्धकालीन स्थिति में रह रहे थे। वे अभी शत्रु के आक्रमण के विरूद्ध ठीक उसी प्रकार पहेरे पर थे जैसे कि युद्ध के दिनों में। क्यों? क्योंकि वे समझ रहे थे कि वे अभी भी युद्ध कर रहे हैं, वे उस समाचार पर विश्वास नहीं कर सके कि युद्ध समाप्त हो चुका था। आपके अभी भी परमेश्वर में मेल न करने का वास्तविक कारण यह है कि आपने परमेश्वर के वचन पर खुलकर विश्वास नहीं किया। यह आपकी बहुत बड़ी हानि है। परन्तु इन सबसे बढ़कर यह परमेश्वर का अनादर है कि आप उसके वचन पर विश्वास नहीं करते। ''ईश्वर मनुष्य नहीं कि झूठ बोले'' (गिनती 23 : 19)।

जैसे ही आप उसके वचन को इस बिन्दु तक भी समझ लेते हैं, तो उसके अद्भुत अनुग्रह के लिए जो उसने आपको दिया है, धन्यवाद देने लगेंगे। तब आप अपने हृदय में शान्ति का अनुभव करने लगेंगे- परन्तु इसके पूर्व नहीं। मनुष्य की मान्यता है: ''पहले देखो, तब विश्वास करो।'' किन्तु परमेश्वर की मान्यता यह है ''पहले विश्वास करो, तब देखो।''

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,
आपका मित्र,
एच. एल. एच.

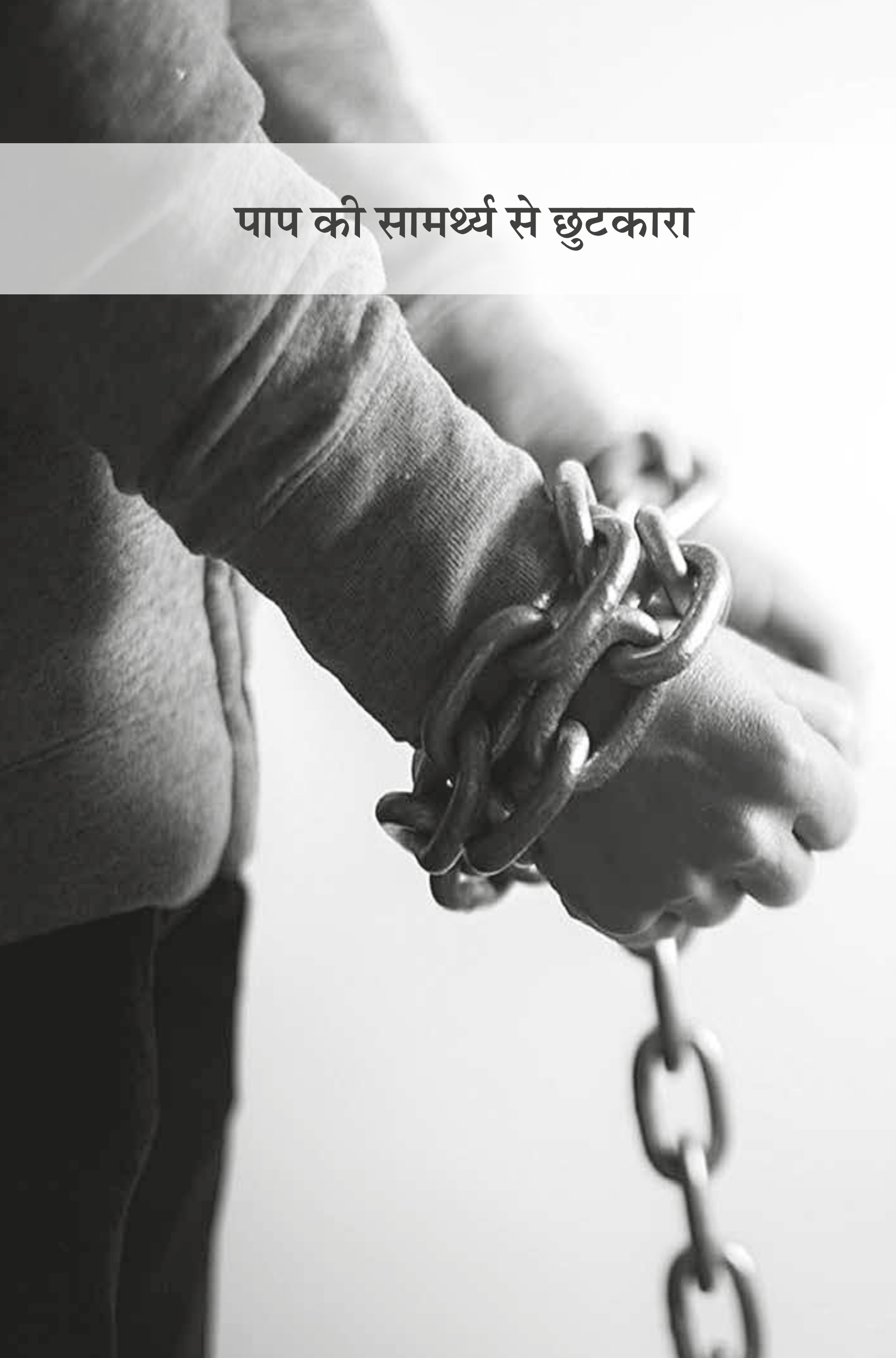

4 पाप की सामर्थ्य से छुटकारा

प्रिय मित्र,

इस प्रकार अब आपके विवेक को मसीह के द्वारा पूर्ण किये गये कार्य में चैन मिला है। आपने अपने पापों का दोष परमेश्वर के समक्ष स्वीकार कर लिया है और जो कुछ उसने प्रभु यीशु और उसके कार्य के विषय में कहा है, उस पर विश्वास कर लिया है। अब आप यह जानते हैं कि आप पर दण्ड की आज्ञा नहीं है और अब आप यह गीत गा सकते हैं: ''मेरे सब-छोटे पाप बड़े, है उसके लहु में धुल गये........।''

इसके बावजूद भी जो कुछ आप कह रहे हैं, उनसे मुझे यही आभास होता है कि आपके पास सच्चा आनन्द नहीं है। संभवत: पहले यह आनन्द आपके पास रहा है, किन्तु इस समय तो वह आपके पास नहीं है। वास्तव में मुझे यह नहीं पूछना चाहिए कि ऐसा क्यों है? यह तो मेरा अपना अनुभव बताता है, और परमेश्वर का वचन इसकी पुष्टि करता है।

आप अपने आप में अत्याधिक निराश है। आपने सोचा कि कुल मिला कर अब आपका जीवन एक भिन्न प्रकार का होगा, क्योंकि आप एक बचाये हुए व्यक्ति हैं तथा आपने परमेश्वर से मेल कर लिया है। परन्तु आपने ध्यान दिया होगा कि ऐसा नहीं है। प्राय: वे ही पापमय विचार अभी भी आपके मन में आ जाते हैं, मन-परिवर्तन से पूर्व के वे ही प्रत्यक्ष दोष अभी भी पाये जाते हैं। आप पहले जैसे क्रोधित एवं अशिष्ट दिखाई देने लग जाते हैं। आप अनुभव करते हैं कि ऐसा नहीं होना चाहिए (और आप सही अनुभव करते हैं,) क्योंकि परमेश्वर कभी भी ऐसी बातों को मान्यता प्रदान नहीं कर सकता। आप इन चीज़ों को नहीं करना चाहते, और आप ऐसा न करने का प्रयास भी करते हैं- किन्तु कुछ भी नहीं बन पड़ता-स्थिति बेहतर होने के बजाय और भी खराब होती जाती है और जैसे ही आप यह समझते हैं कि स्थिति थोड़ी सी संभल रही है, शीघ्र ही आप यह अनुभव करने लगते हैं इससे खराब तो कभी और हुआ ही नहीं। आपने काफी प्रार्थनायें की है कि प्रभु आपको पाप के ऊपर विजयी बनाए, किन्तु उससे भी कुछ नहीं होता। हो सकता है कि आपके विचार भी उसी महिला के समान रहे हों जिसने एक बार मुझसे कहा- ''जितनी ही अधिक प्रार्थना मैं सुबह करती हूँ, मेरे साथ उस दिन उतना ही बुरा होता है।''

यह मैंने अपने जीवन में अनुभव किया है। अपने अन्त:करण में चैन पाने के प्रथम दो वर्षों तक मेरी ऐसी दुर्दशा थी कि मुझे किसी से यह कहने का साहस नहीं होता था कि मेरा उद्धार हो चुका है। उन दिनों दूसरों के अतिरिक्त मेरी मां भी प्राय: यह कहा करती थी कि मुझे मन-

परिवर्तन करने की आवश्यकता है। किन्तु मैं इतना भी साहस नहीं जुटा सकता था कि मैं उससे कह दूँ कि मेरा मन-परिवर्तन हो चुका है। मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि जब वह मेरे व्यवहार को देखेगी तो विश्वास नहीं कर सकती।

यह कैसे हुआ? वास्तव में यह एक परमेश्वर की सन्तान की सामान्य दशा नहीं, कि उसके मन-परिवर्तन के साथ-साथ उसका जीवन भी न बदले, कि- यद्यपि वह ऐसा करना नहीं चाहता-अभी भी निरंतर पाप करता रहे और परिणामस्वरूप वह बुरी तरह से परेशान रहे!

इसके यहाँ पर दो कारण है:

1. परमेश्वर के वचन की व्याख्या के अनुसार हम प्रभु यीशु के कार्य का पूर्ण महत्व न तो जानते है, और न समझते हैं।

2. यदि इस बात का ज्ञान भी हमारे पास है, तो उसे हम स्वयं पर लागू नहीं करते कि वह जीवन में व्यक्तिगत बन जाए। इस प्रकार हम इस पर भी विश्वास नहीं करते कि यह सत्य भी हैं क्योंकि परमेश्वर का वचन ऐसा कहता है।

मनुष्य की दशा

इसके पूर्व के पत्र में मैंने आपको रोमियों की पत्री के प्रथम अध्याय से दिखलाया था कि सभी मनुष्यों ने पाप किया है, अत: वे परमेश्वर के सामने दोषी हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति जो प्रभु यीशु को ग्रहण करता है वह अपने अपराधों से क्षमा पाता है-हाँ, परमेश्वर उसे धर्मी ठहराता है। अत: वह पापी जिसका मन-परिवर्तन हो चुका है, वह कह सकता है: ''सो जब हम विश्वास से धर्मी ठहरे तो अपने प्रभु यीशु के मसीह के द्वारा परमेश्वर के साथ मेल रखे'' (रोमि. 5 : 1)। परमेश्वर ने प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य कर दिया है कि पापी मनुष्य बचाया जा सके। तथापि रोमियों (5 : 12) के आरम्भ में एक दूसरा विषय ले लिया गया है। यहाँ हमारे अपने पापों, पापमय कर्मों आदि के विषय में अधिक नहीं कहा गया है। किन्तु हमारी दशा के विषय में कहा गया है। ऐसा क्यों है? कि मनुष्य पाप के अतिरिक्त और कुछ नहीं करता। क्योंकि उसका स्वभाव, उसका हृदय बुरा है। ''मन तो सब वस्तुओं से अधिक धोखा देने वाला होता है, उसमें असाध्य रोग लगा है, उसका भेद कौन समझ सकता है'' (यिर्म. 17 : 9)? प्रभु यीशु कहते हैं- ''क्योंकि भीतर से अर्थात मनुष्य के मन में बुरी-बुरी चिन्ता, व्यभिचार, चोरी, हत्या, परस्त्रीगमन, लोभ, दुष्टता, छल, लुचपन, कुदृष्टि, निन्दा, अभिमान और मूर्खता निकलती है'' (मरकुस 7 : 21, 22)। और तीतुस 3 : 3 में पौलुस प्रेरित हमें हमारी दशा की तस्वीर पेश करता है: ''क्योंकि हम भी पहले निर्बुद्धि और आज्ञा न मानने वाले और भ्रम में पड़े हुए और रंग-रंग की अभिलाषाओं और सुख-विलास के दास्तव में थे, और बैर-भाव और डाह करने में जीवन निर्वाह करते थे, और घृणित थे, और एक दूसरे से बैर रखते

थे।'' यहाँ पर पापों की कोई सूची नहीं दी गई है, किन्तु **हमारी प्रवृत्ति, हमारी दशा और हमारी प्रकृति की सूची दी गई है।**

परमेश्वर के प्रतिरूप और समानता में

रोमियों 5 : 12-21 हमें बताता है कि हमारा यह स्वभाव पापमय क्यों है। यह इसलिए हैं, क्योंकि हम सब आदम की सन्तान हैं। आदम परमेश्वर के प्रतिरूप और समानता में सृजा गया (उत्प. 1 : 26, 5 : 1)। ''परमेश्वर के प्रतिरूप में''- वह सृष्टि में आदम को प्राप्त स्थान की ओर संकेत करता है। परमेश्वर के करिन्दे की हैसियत से उसने पृथ्वी पर परमेश्वर का प्रतिनिधित्व किया, और इस प्रकार वह समस्त सृष्टि का प्रधान था, यद्यपि उसके पतन और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न गड़बड़ी के कारण बहुत कुछ बदल चुका है, तो भी आदम और मनुष्य उसके उत्तराधिकारी के रूप में अभी भी उसकी सृष्टि में परमेश्वर के प्रतिरूप में विद्यमान है (1 कुरि. 11 : 7)।

''परमेश्वर की समरूपता में''- यह आदम की पवित्रता और अज्ञानता (निर्दोषता) की ओर से संकेत करता है। उस समय सृष्टिकर्ता के प्रति सृष्टि में नैतिक अनुरूपता थी। परन्तु हाय! वह अधिक दिन तक न रही। आदम ने परमेश्वर की आज्ञा को भंग कर अपनी पवित्रता को खो दिया और एक दोषी प्राणी हो गया। आदम के पतन के बाद कभी भी न तो आदम के लिए और न ही उसकी सन्तान के लिए यह कहा गया कि यह परमेश्वर की स्वरूपता में है। यह कथन केवल सृष्टि तक ही सीमित है (उत्प. 1 : 26, 5 : 1, याकूब 3 : 9)।

आदम के स्वरूप एवं समानता में

इस स्थल पर उत्पत्ति 5 बिल्कुल साफ है। पद 1 में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टि परमेश्वर की समानता में की। किन्तु पद 3 के अनुसार जब आदम के घर में एक पुत्र होता है, तो वह पुत्र ''उसकी समानता में और उसी के स्वरूप के अनुसार'' होता है। यह एक ऐसी दोषी और पापी सृष्टि से है जिसका पतन हो चुका है और वह परमेश्वर से रहित है। इस प्रकार उत्पन्न वह प्रत्येक शिशु जन्म से ही पापमय है, क्योंकि उसके भीतर उसके पापी माता-पिता का स्वभाव विद्यमान है। इसको अय्यूब ने इस प्रकार से कहा: अशुद्ध वस्तु से शुद्ध वस्तु को कौन निकाल सकता है (अय्यूब 14 : 4)। दाऊद कहता है : ''देख, मैं अधर्म के साथ उत्पन्न हुआ और पाप के साथ अपनी माता के गर्भ में पड़ा'' (भजन 51 : 5)। और रोमियों 5 : 12-21 में इस तथ्य से यह निष्कर्म निकलता है: आदम के अपराध के कारण बहुत लोग मरे, क्योंकि आदम के अपराध के कारण मृत्यु ने राज्य किया (पद 15, 17), आदम के अपराध का परिणाम बढ़कर सब मनुष्यों के लिए दण्ड का कारण हुआ (पद 18), और आदम की अनाज्ञाकारिता के कारण उसकी सभी सन्तानें पापी ठहरीं (पद 19)। दूसरे शब्दों में जन्म लेने वाले प्रत्येक मनुष्य की दशा उसके पूर्वज आदम के समान है जो उसके पतन के बाद भी,

अर्थात अदन के बगीचे और परमेश्वर की उपस्थिति से निकाले हुए एक पापी के समान जो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हो।

इस प्रकार यह अवतरण **मनुष्य की दशा** को बतलाता है, न कि उसके द्वारा किये गये पापों को। इसके पूर्व की मनुष्य कोई पाप करे, उसकी दशा एक पापी के ही समान है जो विनाशकारी मृत्यु का हकदार है। यह नहीं कि वह जन्म से ही अपराधी है। अपराधी तो वह केवल तभी होता है जब वह अपने कर्मों द्वारा पाप करता है। प्रकाशितवाक्य 20 : 12 में हम पाते हैं कि मृत्तकों का न्याय उनके कामों के अनुसार किया गया, न कि उनकी दशा के अनुसार किन्तु फिर भी उसकी यह दशा उसे स्वर्ग जाने के अयोग्य ठहराती है। परमेश्वर अपने समक्ष उस एक भी व्यक्ति को सहन नहीं कर सकता जो पापमय स्वभाव का हो। परमेश्वर जो कि पवित्र है, उसके लिए आवश्यक है कि वह ऐसे मनुष्य को सदा के लिए अपनी उपस्थिति से निकाल दे। परमेश्वर जो ''ज्योति है : और उसमें कुछ भी अंधकार नहीं'' (1 यूहन्ना 1 : 5) वह कभी भी उस किसी को अपनी उपस्थिति में रहने की आज्ञा नहीं दे सकता जो कि ''अंधकार'' हो (इफि. 5 : 8)। अवश्य है कि वह उसे ''बाहर अंधकार में डाल दे जहाँ रोना और दाँतो को पीसना होगा'' (मत्ती 8 : 12, 22 : 23)। और इस प्रकार यदि प्रभु यीशु ने छुटकारे का कार्य पूरा न किया होता, तो कोई भी स्वर्ग नहीं पहुँच सकता था- यहाँ तक कि वे बच्चे भी जो जन्म लेने के तुरन्त पश्चात मर जाते हैं और कभी कोई एक भी पापमय कार्य नहीं करने पाते।

मात्र पापों की क्षमा पर्याप्त नहीं

इससे यह परिणाम निकलता है कि पापों की क्षमा-प्राप्ति ही पर्याप्त नहीं है। यदि प्रभु यीशु मेरे सब पापों को लेकर क्रूस पर चढ़ गया होता, और मेरे लिए इससे अधिक कुछ न किया होता, तो मैं अपने पापों के कारण दण्ड न पाता, किन्तु फिर भी अनन्त काल तक के लिए खोया हुआ होता। **परमेश्वर पापों को तो क्षमा कर सकता है, परन्तु पापमय दशा और पापमय स्वाभाव को नहीं।** परमेश्वर ने हर संभव तरीके से मनुष्य को यह सुअवसर प्रदान किया है कि वह यह दिखाये कि मनुष्य में कोई अच्छाई है। महा जलप्रलय से पूर्व तक एक अवसर था जबकि अभी परमेश्वर की ओर से एक भी आज्ञा अथवा निषेधाज्ञा नहीं निकली थी, और जल-प्रलय के बाद तक भी, जब तक कि पमेश्वर ने बुराई को दबाने के लिए एक विधान लागू न किया (उत्प. 9 : 5, 6)। तब उसने इस्राएल को अपने लोग होने के लिए अलग किया, उनको विधान एवं धर्म-विधि प्रदान किया और अपनी भलाई के परिणामस्वरूप वह उनके मध्य रहने के लिए आ गया (व्यवस्था 4 : 6-8)। इसके बाद उसने उन्हें न्यायी, भविष्यवक्ता तथा राजा दिये। अपने अनुशासन में रह कर उसने उनका पालन-पोषण किया और अन्त में वह स्वयं परमेश्वर देहधारी होकर-अनुग्रह करके इस पृथ्वी पर आ गया। परमेश्वर ने मसीह में होकर अपने साथ संसार का मेल-

मिलाप कर लिया, और उनके अपराधों का दोष उन पर नहीं लगाया (2 कुरि. 5 : 19)। और क्या हुआ? ''वह अपनों के घर आया, और उसके अपनों ने स्वीकार नहीं किया।'' ''और ज्योति अंधकार में चमकती है, और अंधकार ने उसे ग्रहण नहीं किया। और मनुष्यों ने अंधकार को ज्योति से अधिक प्रिय जाना (यूह 1 : 5, 11; 3 : 19)।'' मनुष्य तो इतना बुरा हो गया था कि उसने ऐसे परमेश्वर को जिसने अपने बड़े अनुग्रह में अपने आप को उस पर प्रकट किया, हाँ, जिसके कारण ''परमेश्वर शरीर में प्रकट हो कर'' (1 तीमु. 3 : 16) क्रूस तक चला गया, त्याग दिया। क्रूस पर यह प्रत्यक्ष रूप से प्रमाणित हो गया कि मनुष्य की बरबादी और दृष्टता किस सीमा तक पहुँच चुकी थी, और परमेश्वर के पास उसको दोषी ठहराने के अतिरिक्त और कोई दूसरा विकल्प नहीं था।

इसीलिए प्रभु यीशु यूहन्ना 3 अध्याय में यह नहीं कहते ''जब तक मनुष्य के पाप क्षमा न हो जाएं, वह परमेश्वर के राज्य को देख नहीं सकता।'' बल्कि यह कि ''जब तक कोई नये सिरे से न जन्म ले, वह परमेश्वर के राज्य को नहीं देख सकता।''

परमेश्वर का उत्तर

किन्तु रोमियों 5 : 12-21 में हम इस कठिनाई का ईश्वरीय उत्तर पाते हैं। प्रथम मनुष्य अर्थात् प्रथम आदम ने उस स्थान को जो उसे पाप में गिरने के परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ था, अपनी सन्तान को हस्तान्तरित कर दिया (अर्थात् उनको जो उत्पन्न हुए हैं) तब परमेश्वर ने प्रभु यीशु को जो दूसरा मनुष्य तथा अन्तिम आदम था (1 कुरि. 15 : 45-47), पृथ्वी पर भेजा, ताकि वह उनको जो उसमें संगठित है, वह जीवन और वह स्थान दे जो उसने क्रूस पर अपना कार्य पूरा करने के पश्चात प्राप्त किया। अब प्रश्न यह उठता है कि यह क्या है?

परमेश्वर के न्याय स्वरूप प्रभु यीशु हमारे पापों को अपनी देह पर लिये हुए क्रूस पर चढ़ गया (1 पत. 2 : 24)। किन्तु इतना नहीं! रोमियों 8 : 3 में और पाप के बलिदान होने के लिए भेजकर, शरीर की समानता में और पाप के बलिदान होने के लिए भेजकर, शरीर में पाप पर दण्ड की आज्ञा दी। और 2 कुरिन्थियों 5 : 21 में हम पढ़ते हैं: ''जो पाप से अज्ञात था, उसी को उसने हमारे लिए पाप ठहराया, कि हम उसमें हो कर परमेश्वर की धार्मिकता बन जाए।''

ये दो परिच्छेद हमारे पापों अथवा हमारे कुकृत्यों को नहीं लेते, बल्कि पाप-पापमय सिद्धांत, पाप के उद्गम, हमारे बुरे स्वभाव को लेते हैं। रोमियों 8 : 3 'पापमय शरीर' और 'शरीर के पाप' का वर्णन करता है। ये अभिव्यक्तियाँ रोमियों 5 से 8 अध्यायों में हमारे बुरे स्वभाव को दिखाने के लिए की गई हैं।

तब इन परिच्छेदों में आगे कहा गया है कि जब प्रभु यीशु क्रूस पर लटका हुआ था, परमेश्वर ने उसे हमारे लिए पाप ठहराया। इस प्रकार से न केवल प्रभु यीशु ने हमारे पापों को अपने ऊपर ले लिया, परन्तु उसे इसलिए भी ठहराया गया कि वहाँ वह हमारे पापी स्वभाव का

स्थल ले ले। और वहाँ परमेश्वर ने उसका न्याय इस प्रकार किया मानो वह पापमय स्वभाव लिए हुए एक पापी मनुष्य हो, यद्यपि वह पाप से अज्ञात था। **परमेश्वर का न्याय, दोनों-जो मनुष्य के पापमय स्वभाव और उसके पापमय कार्यों के प्रति था,** वह प्रभु यीशु पर उण्डेल दिया गया। अत: प्रभु यीशु मरा और गाड़ा गया।

अन्तिम आदम

किन्तु परमेश्वर की सामर्थ्य ने उसे मृत्तकों मे ंसे जिला उठाया, (इफि 1 : 20)। यह इस बात का प्रमाण है कि परमेश्वर की धार्मिकता पूर्णरूप से संतुष्ट हुई- दोनों प्रकार से-हमारे पापों तथा हमारे पापमय स्वभाव के प्रति। प्रभु यीशु मसीह जीवित हो उठा और दण्ड हट गया। अब परमेश्वर के समक्ष एक नयी हैसियत से खड़ा है, क्योंकि पूर्णरूप से उसने हमारा पाप, पापमय स्वभाव तथा हमारे पापों को अपने ऊपर ले लिया। परन्तु वह स्वयं परमेश्वर द्वारा जिलाया गया-जो इस बात का प्रमाण है कि पूरा-पूरा न्याय (दण्ड) चुकाया जा चुका है-और अब जिसे जी उठने का आनन्द प्राप्त है। यह था उस दूसरे मनुष्य अर्थात अन्तिम आदम का स्थान जब वह एक नये घराने अर्थात् परमेश्वर के घराने का प्रधान ठहरा।

रोमियों 5 : 12-21 हमें बताता है कि वह प्रत्येक जो उसके साथ एक है, वह इस स्थान का भागीदार होता है। परमेश्वर का अनुग्रह और उसके अनुग्रह का मुफ्त दान जो एक मनुष्य अर्थात यीशु मसीह के अनुग्रह से हुआ- वह बहुतेरे लोगों पर अवश्य ही अधिकाई के साथ हुआ (पद 15)। अनुग्रह का कार्य है: बहुत से अपराधों से धर्मी ठहराया जाना (16)। जो लोग अनुग्रह तथा धार्मिकता का वरदान बहुतायत के साथ प्राप्त करते हैं, वे एक मनुष्य अर्थात प्रभु यीशु के द्वारा निश्चित ही अनन्तजीवन भर राज्य करेंगे (पद 17)। प्रभु यीशु मसीह के कार्य का यह परिणाम हुआ कि सब मनुष्यों को उनके जीवन के निमित्त उन्हें धर्मी ठहराया जा सके, और उस एक के आज्ञा मानने से बहुत लोग धर्मी ठहरेंगे (पद 18 : 19)। धार्मिकता के द्वारा अनुग्रह का राज्य अनन्त काल के लिए है (पद 21)। यदि हम उसकी मृत्यु की समानता में उसके साथ जुट गये हैं, तो निश्चय ही उसके जी उठने की समानता में भी जुट जाएंगे (रोमि. 6 : 5)। इफिसियों 2 : 5, 6 तो इससे भी आगे चला जाता है। हम मसीह के साथ जिलाये गये, उसके साथ उठाये गये और स्वर्गीय स्थानों में बैठाये गये।

अत: अब हम जानते हैं कि केवल पापों की क्षमा की तुलना में /अपेक्षा प्रभु यीशु का कार्य हमारे लिए अधिक अर्थ रखता है, अब एक पापी अपने पापों का अंगीकार करते हुए तथा प्रभु यीशु पर विश्वास करते हुए परमेश्वर के पास जाता है तो परमेश्वर उसे अपने परिवार में स्थानान्तरित कर देता है, और तब वह प्रभु यीशु मसीह का हो जाता है। तब फिर प्रभु यीशु के समस्त कार्य उसके खाते में गिन लिए जाते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उसके पापों (पापमय

कार्यों) का दण्ड क्रूस पर मिट गया। अब वह प्रभु यीशु के पुनरूत्थान के जीवन में सहभागी हो गया है। इसी के साथ-साथ उसके पापी स्वभाव का भी न्याय हो चुका और वह प्रभु यीशु के पुनरूत्थान के जीवन में सहभागी हो गया है। अन्तिम आदम (एक जीवनदायक आत्मा 1 कुरि. 15 : 45) ने अपनी आत्मा उसके अन्दर फूँक कर उसको अपने पुनरूत्थान का जीवन दिया (यूह. 20 : 22)। अब उसके पास अनन्त जीवन है अर्थात् स्वयं प्रभु यीशु उस का जीवन है (यूह. 3 : 15, 16, 1 यूह 1 : 1-2, 5 : 11-13, 20)।

मसीह के साथ मरे हुए

जब हम इसे समझ चुकते हैं तो आगे को हम अपने आपको सुधारने का प्रयत्न नहीं करते। हम यह अनुभव करने लग जाते हैं कि जिसे परमेश्वर ने रद्दी समझ कर छोड़ दिया हो, उस का सुधरना असम्भव है। हम यह भी जानते हैं कि परमेश्वर हमको प्रभु यीशु मसीह के क्रूस की मृत्यु में से ले आया है। हमने अपने बपतिस्में के समय यह अंगीकार किया है कि हम जितनों ने प्रभु यीशु का बपतिस्मा लिया, अत: उस मृत्यु का बपतिस्मा पाने से हम उसके साथ गाड़े गये (रोमि. 6 : 3, 4)। जब कोई व्यक्ति डूब का बपतिस्मा न लेकर, छिड़काव का बपतिस्मा लेता है तो यह सत्य कितना छिपा हुआ प्रतीत होता है! हम जानते हैं कि अब परमेश्वर हमें सिर्फ हमारे नये जीवन में देखता है, जो जीवन न तो पाप कर सकता है और न करेगा। और हम आप को उसी तरह देखते हैं-पाप के लिए अपने आप को मृतक और परमेश्वर के लिए मसीह यीशु में जीवित समझते हैं (रोमि. 6 : 11)।

हमें अपने अन्दर पाये जाने वाले पाप के विरूद्ध युद्ध नहीं करना चाहिए। हम कहीं भी यह नहीं पाते कि एक मसीह को ऐसा करना चाहिए। बल्कि हमें इसके विपरीत करना चाहिए। हमें अपने आपको इसके प्रति मरा हुआ समझना चाहिए(इब्र. 12 : 4 हमारे भीतर पाये जाने वाले पाप के विषय में नहीं कहता, बल्कि संसार के पाप के विषय में जो हमारा शत्रु है)। निस्सन्देह वह पाप जो हमारे भीतर बसा हुआ है, वह स्वयं अनुभव कर लेगा। वह यह दिखाना चाहता है कि वह अभी भी जीवित है, किन्तु हमें उसे तनिक भी छूट नहीं देनी चाहिए। हमें इसकी और कान भी नहीं देना चाहिए, बल्कि प्रभु यीशु की तरफ देखते रहना चाहिए। जब पाप मेरे हृदय में क्रियाशील हो और मेरे ध्यान को अपनी और आकर्षित करता हो, तो हमें उसकी नहीं सुननी चाहिए-मुझे तुरन्त अपने विचार प्रभु यीशु की और मोड़ देना चाहिए। जिस क्षण मैं ऐसा करता हूँ, उसी के बाद मैं पाप के विषय में नहीं सोचूँगा। और प्रभु यीशु को निहारने के द्वारा स्वयं एक नया जीवन मुझ में प्रस्फुटित हो सकता है। ''परन्तु जब हम सबके उघाड़े चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रकट होता है, तो प्रभु के द्वारा जो आत्मा है हम उसी तेजस्वी रूप में अंश-अंश करके बदलते जाते हैं'' (2 कुरि. 3 : 18)।

यदि मैं इन चीजों को करूँ तो पवित्र आत्मा जो मुझ में निवास करता है, स्वयं शरीर (पापी स्वभाव) के विरूद्ध युद्ध करने का दायित्व ले लेगा (गला. 5 : 17)। यह हमारा कार्य नहीं है। ''ऐसे ही तुम भी अपने आप को पाप के लिए मरा, परन्तु परमेश्वर के लिए मसीह यीशु में जीवित समझो''(रोमि. 6 : 11)।

अनुभव

तब क्यों बहुत से विश्वासी उसी प्रकार पाप के दासत्व में कराहते रहते हैं जैसा कि मैंने इस पत्र के आरम्भ में वर्णन किया है? और क्यों ऐसा एक भी विश्वासी नहीं पाया जाता जो अपने व्यक्तिगत अनुभव से इस दशा और इससे सम्बन्धित इस युद्ध को नहीं जानता? यह सत्य नहीं है कि कभी-कभी कहा जाता है कि यह युद्ध एक विश्वासी के जीवन भर चलता रहता है। प्रभु का धन्यवाद हो कि ऐसा नहीं है। प्रभु यीशु ने शैतान और पाप पर विजय पाई है। प्रत्येक व्यक्ति जो उसका संगी वारिस है, वह स्वतंत्र खड़ा रह सकता है (गला. 5 :1, 13, 16) और एक विजयी जीवन जी सकता है (रोमि. 8 : 1-4)। प्रत्येक वह जो रोमियों 8 : 1-11 को अपने जीवन में व्यावहारिक वास्तविकता के रूप में एक मापदण्ड बना लेता है; वह शैतान, पाप और मृत्यु के दासत्व से स्वतंत्र है। आत्मा के फल उसी में पाये जाते हैं। (गला. 5 : 22, 23), और व्यवस्था के निमित्त आवश्यक धार्मिकता उसी में पूर्ण होती है (रोमि. 8 : 4)।

किन्तु हम में से प्रत्येक इस युद्ध के विषय में जानता है, क्योंकि छुटकारे का ज्ञान केवल अनुभव से किया जा सकता है।

जब भी कोई अपना मन-परिवर्तन करता है तो वह अपने पापों को देखता और उन्हीं से भरा रहता है, क्योंकि परमेश्वर का न्याय उसके सामने है। वह नया जीवन प्राप्त करता है और उसकी इच्छा शक्ति नई हो जाती है जो परमेश्वर की सेवा करने की लालसा करती है। वह परमेश्वर की इच्छा मालूम करता है और उसे **विधान** समझ कर पूरा करना चाहता है। केवल इसी प्रकार से वह अपने पापमय स्वभाव एवं अपनी वास्तविक दशा को जानना सीखता है। हमें इस अनुभव का वर्णन रोमियों 7 अध्याय में मिलता है।

प्रथम चार पदों में हम शिक्षा को पाते हैं जो एक मानदण्ड है। व्यवस्था के लिए हम मर चुके हैं और एक दूसरे मनुष्य अर्थात जीवित मसीह के साथ एक हो गये हैं। पद 5 तथा 6 हमें सिद्धांत से अनुभव की ओर ले चलते हैं। प्रथम अनुभव तो यह है कि व्यवस्था का कोई बल-सामर्थ्य नहीं है। यह पवित्र, न्यायपूर्ण और भली है। यह ''प्राणी के लिए'' थी, क्योंकि ''जो मनुष्य'' उनको पूरा करता है, ''वह जीवित रहेगा!'' परन्तु मेरा अनुभव तो यह है कि मेरे लिए मृत्यु उत्पन्न करती है, क्योंकि इसकी आज्ञाओं के द्वारा मेरे हृदय में पापों की अभिलाषा जागृत होती है, और व्यवस्था इस अभिलाषा का विरोध करती है। अन्त में यह मेरे पुराने स्वभाव के

ज्ञान तक पहुँचती है- ''मैं जानता हूँ कि मुझ में अर्थात मेरे शरीर में कोई अच्छी वस्तु वास नहीं करती'' (पद 18)।

कदाचित यह सत्य है कि जिस भले काम की मैं इच्छा करता हूँ वह तो नहीं करता, परन्तु जिस बुराई से घृणा करता हूँ, वही किया करता हूँ, मुझे उस ''मैं'' का भेद कराती है, जो भले कार्य की इच्छा करता है, हाँ, यहाँ तक कि वह (मैं) भीतरी मनुष्यत्व से तो परमेश्वर की व्यवस्था से प्रसन्न रहता है (पद 22), और उस का करने वाला मैं न रहा, परन्तु पाप जो मुझ में बसा हुआ है (पद 20)। और तब मुझे यह अनुभूति होती है कि मैं अपने भीतर बसे पाप का दास हूँ। यह एक ''पाप की व्यवस्था-नियम'' है, एक पक्का नियम कि मैं पाप करता हूँ और मैं उसके सामने असहाय हूँ-मैं इसका दास हूँ।

तब पवित्र आत्मा मुझे इस निराशजनक परिणाम पर पहुँचाता है कि मैं तो इस प्रकार नाश हो गया कि बचने की कोई आशा नहीं और तभी मैं चीख उठता हूँ- ''मैं कैसा अभागा मनुष्य हूँ! मुझे इस मृत्यु की देह से कौन छुड़ायेगा?'' (पद 24) किन्तु तभी परमेश्वर के वचन (पद 25) से उत्तर आता है: ''मैं अपने प्रभु यीशु के मसीह के द्वारा परमेश्वर का धन्यवाद करता हूँ!''

छुटकारा

मैं मृत्यु की इस देह छूट गया! इसका न्याय (दण्ड) मसीह में क्रूस के ऊपर चुकाया जा चुका (रोमि. 8 : 3)। अब मैं जीवित न रहा, पर मसीह मुझ में जीवित है (गला. 2 : 20)। अब मैं मसीह में हूँ और अब मुझे ठीक वही स्थान प्राप्त है जो पुनरूत्थान के बाद मसीह को प्राप्त है। अब मुझ पर दण्ड की आज्ञा नहीं (रोमि, 8 : 1)। पवित्र आत्मा ने मुझमें एक नया जीवन आरंभ कर दिया है, ऐसा जीवन पापमय नहीं-नहीं, वह पाप नहीं कर सकता-बल्कि इसके लेखक (पवित्रआत्मा) के साथ इसका पूर्ण समन्वय है (यूह. 3 : 5, 6)। और इससे भी अधिक यह कि पवित्र आत्मा **एक व्यक्ति** के रूप में मुझ में रहता है और यह वह सामर्थ्य है जो अपने स्वभाव के अनुसार नये जीवन को कार्य करने की योग्यता प्रदान करता है (1 कुरि. 6 : 14, यूह. 4 : 14, 7 : 38, 39)। इसके अतिरिक्त शरीर के विरूद्ध चल रहे आत्मिक युद्ध को भी वह अपने हाथों में ले लेता है (गला. 5 : 17)।

अत: जीवन के आत्मा की व्यवस्था (अटल नियम) ने मसीह यीशु में मुझे पाप की और मृत्यु की व्यवस्था से स्वतंत्र कर दिया (रोमि. 8 : 2, रोमि. 7 : 23 से तुलना करें)। अब मैं शरीर (पुराने स्वभाव) में नहीं बल्कि आत्मा में हूँ। मेरे इस पद का महत्व जीवन के उस धरोहर (अनामत) से है जिसे पवित्र आत्मा ने मुझ में नया जन्म (यूह 3) के द्वारा तथा स्वयं के वास करने के द्वारा उत्पन्न किया है (रोमि. 8 : 9)। इसी समय इसका यह अर्थ भी निकलता है कि मैं मसीह का हूँ, और इसलिए मैं एक मसीही हूँ।

एक विश्वासी की सामान्य स्थिति यह है : शैतान, पाप तथा मृत्यु से मुक्ति तथा परमेश्वर की सेवा करने, आनन्द की भरपूरी प्राप्त करने और निर्विध्न परमेश्वर से संगति रखने की स्वतंत्रता (1 यूह. 1 : 3, 4)।

काश, परमेश्वर करे कि मैं और आप लगातार इसी सामान्य स्थिति में पाये जाएं।

हार्दिक अभिवादन के साथ,

प्रभु यीशु में आपका भाई,

एच. एल. एच.

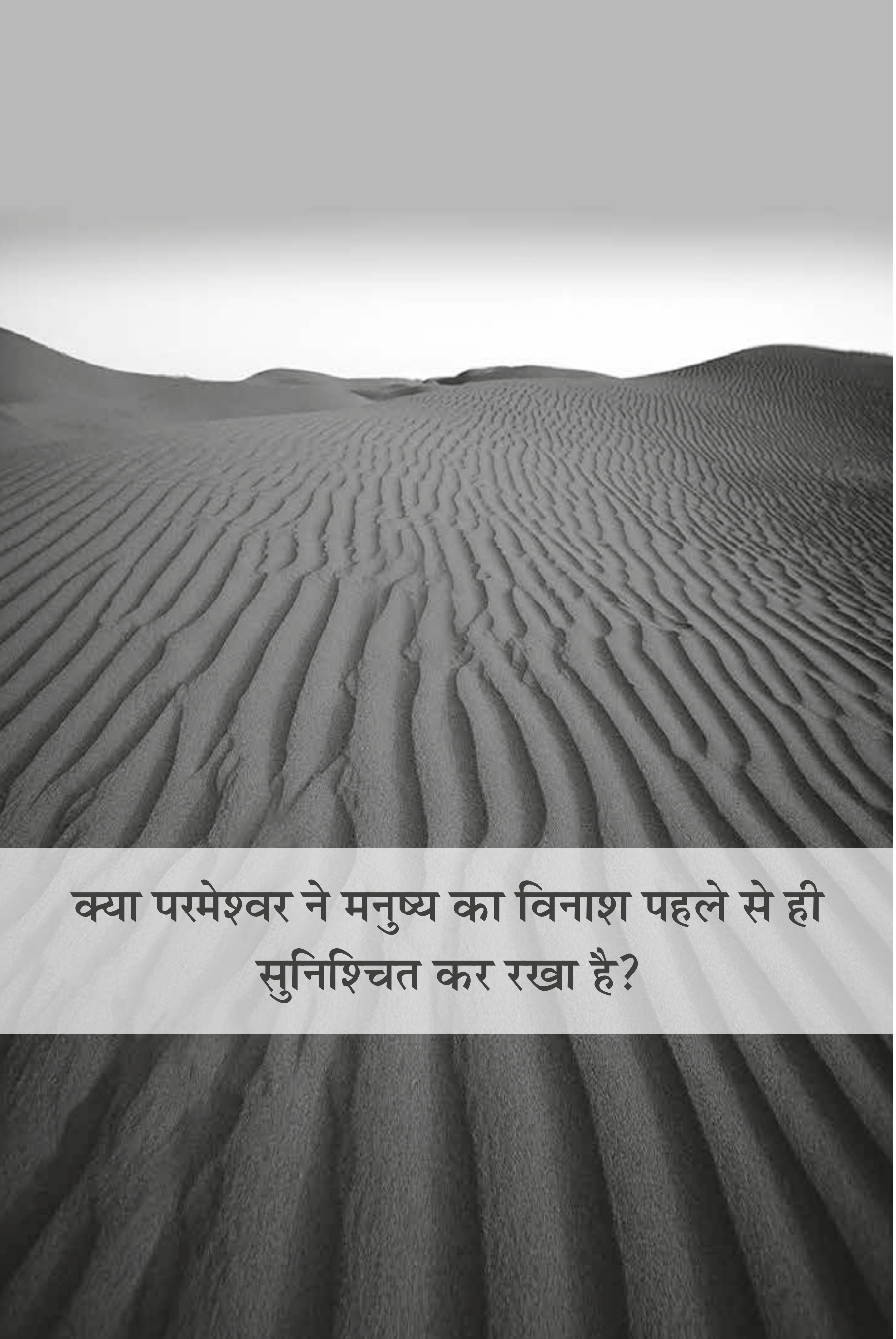

5 क्या परमेश्वर ने मनुष्य का विनाश पहले से ही सुनिश्चित कर रखा है?

प्रिय मित्र,

किसी ने यह कह कर आपको थोड़ा भ्रम में डाल दिया है, ''कि चूँकि आप यह नहीं जानते कि आप चुने हुए हैं, अत: आप इस पृथ्वी पर नहीं जान सकते कि आपका उद्धार हुआ है अथवा नहीं!''

ठीक, तब तो आप बड़ी सरलता से उसका उत्तर बाइबल से दे सकते थे। परमेश्वर का वचन कहता है, ''जो कोई उस पर विश्वास करे, वह नाश न हो परन्तु अनन्त जीवन पाये'' (यूह. 3 : 16)। तो यदि परमेश्वर ही सत्य कह रहा है तो आप जान सकते हैं और निश्चित रूप से इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि परमेश्वर का वचन सत्य बोलता है।

मैंने एक बार एक मनुष्य से जो यही बात कह रहा था पूछा कि, ''तुम क्या सोचते हो कि क्या पौलुस प्रेरित कभी परमेश्वर के पास रहा था जहाँ उसने उनकी परामर्श पुस्तक पढ़ ली थी?'' उसने उत्तर दिया, ''संभवत: मैं ऐसा नहीं समझता।'' तब मैंने पुन: पूछा– ''तब वह थिस्सलुनीकियों को यह कैसे लिख सका, 'और हे भाइयों, परमेश्वर के प्रिय लोगों, हम जानते हैं कि तुम चुने हुए हो' (1 थिस्स. 1 : 4)! और कैसे वह अपनी सभी पत्रियों में जिनको उसने लिखा, 'सन्तो' कहकर सम्बोधित कर सका? वह इसका उत्तर न दे सका, किन्तु दूसरे ही दिन उसने मेरे पास आकर कहा, ''अब मैं भी जान गया हूँ कि मैं बच गया हूँ।''

निश्चय ही चुने जाने के विषय में परमेश्वर का वचन बिल्कुल स्पष्ट बतलाता है। कौन परमेश्वर की सन्तान ऐसी होगी जिसने श्रद्धापूर्वक इफिसियों 1 : 4, 5, रोमियों 8 : 29, 30, 1 पतरस 1 : 2 आदि स्थलों को नहीं पढ़ा होगा और इसके पश्चात ऐसे बड़े अनुग्रह के लिए अपने परमेश्वर की उपासना न की हो?

पूर्व नियति

दुर्भाग्यवश उसके साथ स्थिर न रहा जो परमेश्वर के वचन में लिखा गया है, किन्तु उसने अपने मन को इससे भी आगे जाने को छोड़ दिया है ताकि वह तथाकथित कुछ तार्किक परिणाम निकाल सके। इसका परिणाम यह रहा कि वह कुछ ऐसी-ऐसी अभिव्यक्ति का उपयोग करने लगा जो परमेश्वर के वचन के विरूद्ध है और जिससे वास्तव में उसके नाम का अनादर होता

है। समस्त मानव जाति के लिए पूर्व नियति सिद्धांत उस **महिमामय स्वैच्छिक चुनाव के चित्रण** का जो परमेश्वर का वचन करता है, उपहास है।

पूर्व नियति का सिद्धांत यह बतलाता है कि परमेश्वर ने कुछ लोगों को अनंत उद्धार के लिए चुन लिया है और रोमियों 9 : 8-23 के अनुसार अपने दावे को प्रमाणित करने के लिए यह कहता है कि अन्य दूसरे लोगों को छोड़ देने के लिए परमेश्वर दृढ़ संकल्प है। अत: पवित्रशास्त्र के इस स्थल को एक बार पढ़ना चाहिए।

अनुग्रह केवल यहूदियों के लिए नहीं

रोमियों की पत्री के प्रथम आठ अध्यायों में हम मनुष्य की दशा को, और अपने लिए वर्णित परमेश्वर के उत्तर को पाते हैं। मनुष्य आशारहित खोया (भटका) हुआ है। ''क्योंकि कुछ भेद नहीं इसलिए कि सबने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं, उसके अनुग्रह के छुटकारे के द्वारा जो मसीह यीशु में है, सेंतमेंत धर्मी ठहराये जाते हैं'' (रोमि. 3 : 22-24)। किन्तु यदि सभी (लोग) केवल अनुग्रह के आधार पर बचाये गये हैं, तब यह अनुग्रह केवल यहूदियों तक ही सीमित नहीं रहा। तब तो अनुग्रह समस्त जातियों, अर्थात् गैर-यहूदियों के लिए भी ठहरा।

किन्तु यहूदी इसे क्यों मानते! उनके पास तो विशेधिकार प्राप्त अपना स्थान था जिसे वे बनाये रखना चाहते थे। इसलिए जब कभी भी अन्य जातियों को सुसमाचार सुनाया गया तो उनकी शत्रुता उभर कर सामने आ गयी-उदाहरणार्थ देखें, प्रेरितों. 13 : 45-50, 14 :1, 17 : 5 तथा 28 : 25-29।

रोमियों 9-11 अध्यायों में प्रेरित निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करता है, सुसमाचार के संदर्भ में यहूदी तथा गैर यहूदी दोनों ही की स्थिति एक समान है, लोभी यहूदी परमेश्वर के सामने अपना विशेषाधिकार रखने के अभ्यस्त थे। ये दोनों ही स्थितियाँ एक साथ कैसे मेल खा सकती थीं?

इब्राहीम की सन्तान

पहला तथ्य जिसकी वे दलील देते थे, यह था कि वे इब्राहिम की सन्तान थे। प्रेरित ने कहा, ठीक है, तब तुमको इश्माएल को भी स्वीकार करना होगा, क्योंकि वह भी इब्राहीम का पुत्र था। यदि सम्भवत: यह कहा जाए कि इश्माएल की मां तो केवल एक दासी थी, तो ठीक है, अरब जाति के जनक एसाव को ले लो। याकूब और एसाव तो एक ही माता-पिता से थे। वे जुड़वे थे। फिर भी

ऐसाव, यद्यपि जो ज्येष्ठ था, परमेश्वर की प्रजा का पूर्वज न बन सका-और वह इसलिए नहीं कि याकूब उससे उत्तम था। पमेश्वर ने तो उनके जन्म से पूर्व ही यह घोषित कर दिया था कि बड़ा (भाई), छोटे की सेवा करेगा।

इस प्रकार यह किसी अधिकार के आधार पर नहीं था। कि यहूदियों को यह विशेष स्थान प्राप्त होता, किन्तु यह तो परमेश्वर के प्रभुत्व के आधार पर था। यदि वे किसी अधिकार का आह्वान् करना चाहें तो उन्हें अरबों को भी परमेश्वर की प्रजा के रूप में स्वीकार करना होगा, जो वे कभी भी नहीं कर सकते। परन्तु, यदि वे परमेश्वर के प्रभुत्व के आधार पर ही उसकी सन्तान हैं तो क्या परमेश्वर को यह अधिकार नहीं कि वह इस आशीष में औरों को भी सम्मिलिति करे?

अब हम देख सकते हैं कि यहाँ पर अनन्त के लिए चुने जाने अथवा अस्वीकार किये जाने का प्रश्न नहीं है, परन्तु यहाँ तो पूर्णरूप से इस पृथ्वी पर विशेषाधिकार की बात है- प्रश्न तो यहाँ इसी बात का है।

मैंने याकूब से प्रेम किया और एसाव को अप्रिय जाना

'त्यागे जाने' के सिद्धांत के पक्ष में रोमियों 9 : 13 के ये वचन अन्य वचनों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुए हैं। जो लोग यह कहते हैं, वे पद 12 और 13 को एक में मिला दे रहे हैं। जैसा कि हम पद 12 में पढ़ते हैं, निस्सन्देह परमेश्वर ने वैसा कहा, जबकि बालक अभी उत्पन्न भी नहीं हुए थे- किन्तु जगत् की उत्पत्ति से पहले नहीं, जैसा कि हम अपने विषय में इफिसियों 1 : 4 में पढ़ते हैं। यहाँ तो पृथ्वी पर विशेषाधिकार का प्रश्न है, और परमेश्वर ने उनके जन्म के थोड़े समय पहले यह कहा (पद 11)। परन्तु पद 13 मलाकी 1 अध्याय का उदाहरण है। परमेश्वर ने इसे याकूब तथा एसाव के लगभग 1400 वर्ष बाद कहा, अत: वह उनको तथा उनके वंशजों को जानता था कि वे किस प्रकार का जीवन व्यतीत किये थे। इब्रानियों 12 : 16, 17 में एसाव को व्यभिचारी एवं अधर्मी व्यक्ति कहा गया है जिसने एक बार के भोजन के बदले, अपने पिहलौठे होने के पद को बेच डाला और उसे मन-फिराव का अवसर न मिला। क्या इसमें कोई आश्चर्य की बात है कि यदि परमेश्वर ऐसे मनुष्य को अप्रिय जानने की बात कहता है? ''तुझे सब अनर्थकारियों से घृणा है'' (भजन 5 : 5)।

तब हम अपने अध्याय के पद 15 पर आते हैं : ''मैं जिस किसी पर दया करना चाहूँ, उस पर दया करूँगा।'' यह निर्गमन 33 : 19 का उदाहरण है। लोगों ने सोने का बछड़ा स्थापित

करके यहोवा को त्याग दिया था (निर्ग 32 : 4)। वे लोग दण्ड के भागी हो चुके थे। (निर्ग 32 : 10), किन्तु मूसा ने उनके लिए विनती की। तब परमेश्वर ने एक बार पुन: अनुग्रह करके अपनी प्रजा को क्षमा किया। इस प्रकार ये वचन इस बात के प्रमाण हैं कि **परमेश्वर अपना सर्वाधिकार सुरक्षित रखता है** कि दण्ड की आज्ञा हो चुकने के बाद भी वह किसी के ऊपर अनुग्रह करे। इस प्रकार परमेश्वर के अनुग्रह से ही इस्राएल परमेश्वर की प्रजा ठहरा। परन्तु ये वचन 'त्यागे जाने' के सिद्धांत के पक्ष में प्रमाण के रूप में प्रयुक्त हों, यह कैसे सम्भव है?

पद 15 अनुग्रह के सिद्धांत की पुष्टि करता है। जबकि, जहाँ एक और सभी के सब दण्ड के भागी हों, केवल परमेश्वर की दया ही छुटकारा दिला सकती है। उस मनुष्य का क्या होगा जो-नि:संदेह मान भी लिया- कि आज के दिन से फिर आगे भी पाप न करें! फिर भी उसके आज दिन तक के पापों के लिए दण्ड उसे दण्डित होना पड़ेगा।

परमेश्वर कुछ लोगों को कठोर कर देता है

पद 17, निर्गमन 9 : 16 से उद्धृत किया गया है। परमेश्वर फिरौन से कह रहा है कि वह उसका हृदय कठोर करने जा रहा है, ताकि उसके कारण वह अपनी संपूर्ण सामर्थ्य दिखला सके। किन्तु पहले हमें पढ़ना होगा जो इसके पूर्व घटित होता है। निर्गमन 5 : 2 में फिरौन कहता है: ''यहोवा कौन है कि मैं उसका वचन मानकर इस्राएलियों को जाने दूँगा।'' और तब उसने लोगों के कार्यों को बढ़ा दिया (निर्ग 5 : 7)। उन समस्त चिन्हों और विपत्तियों के बावजूद भी जिन्हें परमेश्वर ने फिरौन पर भेजे, उसने यहोवा की आज्ञा न मानी। तब परमेश्वर ने कहा, ''अब मैं तेरे हृदय को ऐसा कठोर करूँगा कि मेरा पूरा-पूरा क्रोध तुझ पर भड़केगा।''

यह सत्य है कि यहोवा ने पहले ही कह दिया था वह ऐसा करेगा (निर्ग. 4 : 21), क्योंकि वह पहले से ही जानता था कि फिरौन नहीं मानेगा। वह फिरौन के हृदय को जानता था (निर्ग. 3 : 19)। किन्तु जब-जब यहोवा फिरौन से कहता और बड़े चमत्कार तथा बड़ी विपत्तियाँ भेजता, तब-तब फिरौन कहता कि वह लोगों को जाने देगा, किन्तु हर बार वह अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर देता था; और तभी यहोवा ने उसके हृदय को कठोर किया (निर्ग. 9 : 12)। ऐसा हुआ कि तब यहोवा ने उससे ये वचन कहे।

यह एक गंभीर तथ्य है कि कभी परमेश्वर हृदयों को कठोर कर देता है। उसने फिरौन के साथ ऐसा ही किया। कभी-कभी वह अभी भी वैसा ही करता है। कलीसिया के स्वर्ग पर उठा लिये जाने के तुरंत बाद वह उन सभी लोगों के साथ ऐसा करेगा जिन्होंने उसके सुसमाचार को

तो सुना है, किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया है (2 थिस्स. 2 : 11)। परन्तु परमेश्वर ने जब तक मन फिराव के लिए अवसर दिया है, उससे पहले वह ऐसा कभी नहीं करता (अय्यूब 33 : 14-30)। परन्तु यह सिद्धांत से बिल्कुल भिन्न है जो 'त्यागे जाने' का सिद्धांत कहता है।

परमेश्वर अपने व्यवहार में प्रभुसत्ता सम्पन्न है

रोमियों 9 : 19 : 21 में जिस मौलिक प्रश्न पर विचार दिया गया है, वह यह है कि क्या परमेश्वर को अपनी रचना (सृष्टि) पर यह अधिकार नहीं कि जैसा वह चाहे, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करे? यदि परमेश्वर एक मनुष्य को आदर का तथा दूसरे को अनादर का पात्र बनाना चाहे, तो क्या उसको ऐसा करने का अधिकार नहीं है? क्या सृष्टि अपने सृष्टिकर्ता से लेखा मांग सकती है। सृष्टिकर्ता की हैसियत से परमेश्वर को यह अधिकार है कि एक को क्षमादान दे तथा दूसरे को अनन्त विनाश के लिए ठहराये। परमेश्वर ने अपने इस दूसरे अधिकार का प्रयोग नहीं किया है। परमेश्वर ज्योति और प्रेम है, और वह जो कुछ है उसके विरूद्ध कभी भी व्यवहार नहीं करता।

जो यह कहता है, वह ठीक 21वां पद है। यह निर्मयाह 18 अध्याय की ओर संकेत है। वहाँ परमेश्वर अपने उस अधिकार की ओर संकेत करता है कि वह इस्राएल के साथ जो चाहे कर सकता है। कुम्हार ने मिट्टी लेकर एक बर्तन बनाया, परन्तु जब वह बिगड़ गया तो उसी मिट्टी से उसने एक दूसरा बर्तन बना दिया। ''तब यहोवा का यह वचन मेरे पास पहुँचा, हे इस्राएल के घराने, यहोवा की यह वाणी है कि इस कुम्हार की नाई तुम्हारे साथ क्या मैं भी काम नहीं कर सकता? देख, जैसा मिट्टी कुम्हार के हाथ में रहती है, वैसा ही हे इस्राएल के घराने तुम भी मेरे हाथ में हो'' (यिर्म. 18 : 5, 6)।

परन्तु अपने इस अधिकार को परमेश्वर कैसे लागू करता है? ''जब मैं किसी जाति अथवा किसी राज्य के विषय कहूँ कि उसे अखण्ड अथवा ढा दूँगा, या नाश करूँगा, तब यदि उस जाति के लोग जिसके विषय में मै ने यह बात कही हो अपनी बुराई से फिरें, तो मैं उस विपत्ति के विषय जो मैंने उन पर डालने को ठाना हो, पछताऊँगा। और अब मैं किसी जाति अथवा राज्य के विषय जो मैं उसे बनाऊँगा और रोपूँगा; यदि वह मेरी आज्ञा का पालन न करके मेरी दृष्टि में दुष्टता के कार्य करे, तो मैं उस भलाई के विषय जिसे मैंने उसके लिए करने को कहा हो, पछताऊँगा'' (यिर्म. 18 : 7-10)।

यदि कोई अपनी दुष्टता से फिरकर पश्चाताप करे और मन फिराये तो परमेश्वर भी दण्ड देने से पछताता है जो उसने देने के लिए ठान रखा है, और उस पर अनुग्रह करता है। परमेश्वर अपने प्रभुत्व का प्रयोग इस हद तक करता है।

विनाश के लिए तैयार किये गये क्रोध के बर्तन

रोमियों 9 : 22, 23 इसी बात को सिद्ध करता है, यद्यपि इस अवतरण को 'त्याग दिये जाने' के सिद्धांत के पक्ष में प्राय: प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जाता है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि यह उसके विरूद्ध एक दृढ़ प्रमाण है।

पद 22 विनाश के लिए तैयार किये गये क्रोध के बर्तनों के विषय में बतलाता है। उनको किसने तैयार किया है? यह हमें यहाँ नहीं बतलाया गया है। परन्तु यह कि परमेश्वर ने ऐसा नहीं किया है, संदर्भ से सुस्पष्ट है। यदि परमेश्वर ने यह किया होता तो क्या कहा जा सकता था कि परमेश्वर ने उसको बड़े धीरज से सहा? इस पद तथा 23 पद में जो अन्तर है, उस पर भी ध्यान दीजिए जहाँ कहा गया है कि उसने दया के पात्र पहले तैयार किये। इससे यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने इसे स्वयं ही अपने ऊपर ओढ़ लिया है। ''पर अपनी कठोरता और हठीले मन के अनुसार उस के क्रोध के दिन के लिए जिसमें परमेश्वर का सच्चा न्याय प्रकट होगा अपने निमित्त क्रोध कमा रहा है'' (रोमि. 2 :5)।

परमेश्वर के वचन में 'त्यागे जाने' के लिए पूर्व निर्धारण नहीं

नहीं! पवित्रशास्त्र में एक भी कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि (मनुष्य को) 'त्यागे जाने' के लिए परमेश्वर ने कोई पूर्व-निर्धारण किया हो, अथवा दूसरे शब्दों में यह कि उसने जान बूझकर यह संकल्प कर रखा हो कि परमेश्वर ने अपने वचन में अपने विषय जो कुछ प्रकट किया है, उससे इसका अपना स्वयं खण्डन हो जाता है।

वह हमारा बचाने वाला परमेश्वर है जिसकी यह अभिलाषा है कि प्रत्येक मनुष्य बचाया जाय, और उसने ''सभों की छुड़ौती के लिए'' अपने पुत्र मसीह यीशु को दे दिया (1 तीमु. 2 : 4, 6) जिससे उसके छुटकारे में सभी लोग सम्मिलित हो सकें। तो क्या उसने इन ''सभी'' में से कुछ को निकालकर यह निश्चित किया कि वे लोग अनन्त विनाश के लिए होंगे और इनका इसमें कोई भाग नहीं होगा?

इस प्रकार के अनेक अवतरण हम बतला सकते हैं-किन्तु उदाहरण के लिए केवल यूहन्ना 3 : 16, रोमियों 3 : 22; 1 यूहन्ना 2 : 2 आदि पर विचार कीजिए।

नहीं परमेश्वर का धन्यवाद हो, बल्कि एक ऐसा चुनाव या विकल्प है जिससे कि बेचारे पापी भी अनन्त महिमा में प्रवेश कर सकते हैं। परन्तु यहाँ परमेश्वर का वचन विनाश के लिए चुने जाने का वर्णन अवश्य करता है। इसके विरूद्ध परमेश्वर का वचन कहता है- ''जो प्यासा हो वह आए, और जो कोई चाहे वह जीवन का जल सेंतमेंत ले'' (प्रकाशित 22 : 17), और ''हमारा बचाने वाला परमेश्वर जो यह चाहता है कि सब मनुष्यों का उद्धार हो, और वे सत्य को भली-भाँति पहचान लें'' (1 तीमु. 2 : 4)।

और यदि हम इन दो चीज़ों- 'कुछ का जीवन के लिए चुनाव' को तथा 'सबों को आने का निमंत्रण' को सुसंगत बनाने के योग्य नहीं हैं, तब हमारे लिए यशायाह 55 : 9 हैं: ''क्योंकि मेरी और तुम्हारी गति में, और मेरे और तुम्हारे सोच-विचारों में आकाश और पृथ्वी का अन्तर है।'' कौन मनुष्य होगा जो यह सोचने का एहसास भी कर सके कि उसका मस्तिष्क परमेश्वर की बुद्धि और उसके मार्गों को जानने और समझने को सक्षम है? किन्तु एक विश्वासी जन इब्राहीम के साथ यह कह सकता है, ''क्या सारी पृथ्वी का न्यायी न्याय न करें?'' (उत्प. 18 : 25)।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,
प्रभु यीशु में आपका भाई,
एच. एल. एच.

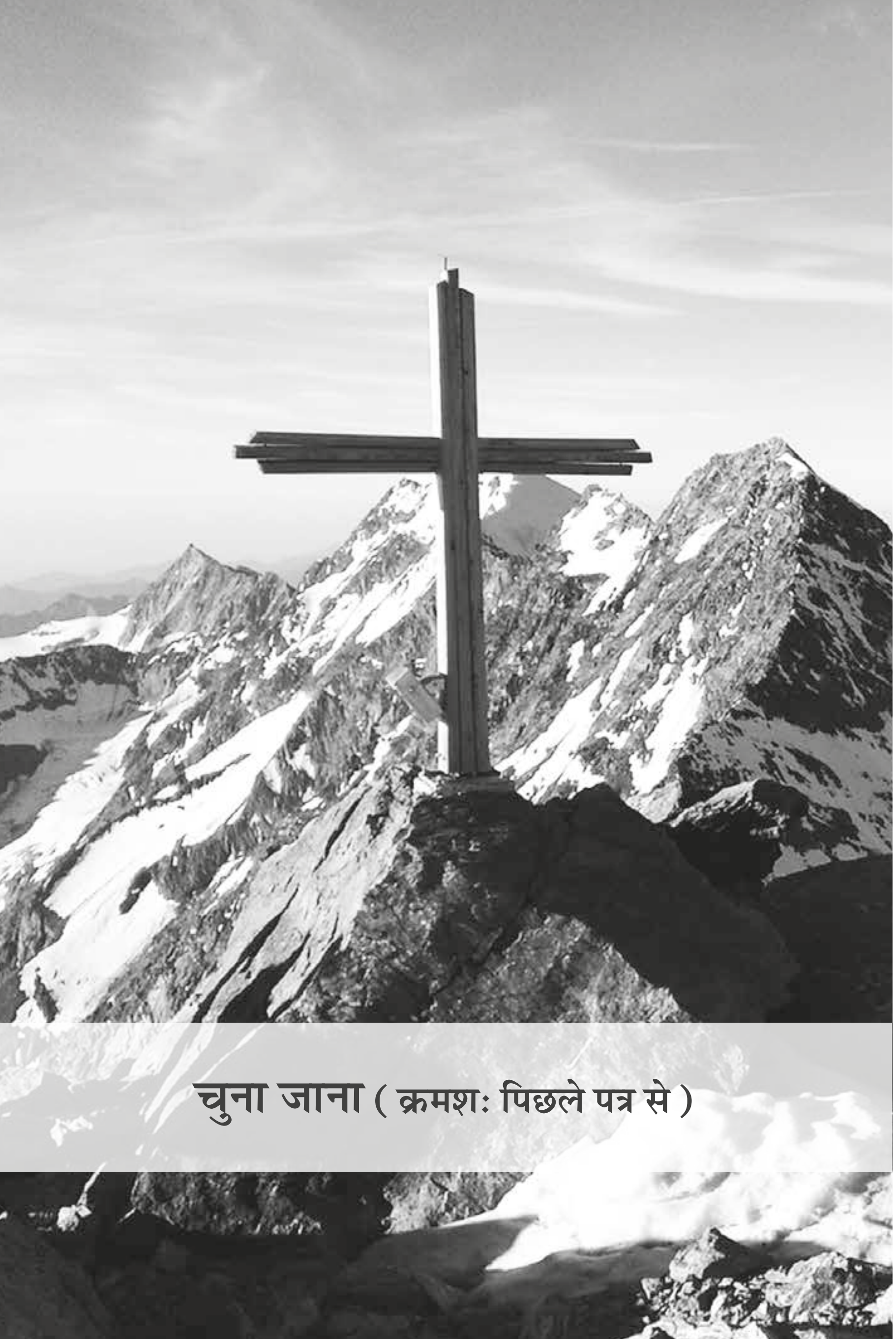

6 चुना जाना (क्रमशः पिछले पत्र से)

प्रिय मित्र,

अब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि मैं कैसे जानूँ कि मैं चुन लिया गया हूँ? सर्वप्रथम तो हमें बड़े ध्यान से इस बात को समझना होगा कि परमेश्वर का वचन इस पसंदगी के लिए किसी अविश्वासी को कभी नहीं कहता। पवित्र शास्त्र अपरिवर्तित मनुष्यों को उनकी खोयी हुई दशा में प्रस्तुत करता है जिन पर परमेश्वर का दण्ड प्रकट है, और यह कि परमेश्वर की बुलाहट सुनकर वे मन फिरायें जबकि प्रभु यीशु और उसके कार्य बतलायें जाते हैं कि वे विश्वास कर सकें।

तब, जब वे मन फिरा लेते हैं और प्रभु यीशु पर विश्वास कर लेते हैं तो उनको बतलाया जाता है कि अब वे चुन लिये गये हैं। इसे अब वे कैसे जानें? 1 थिस्सलुनीकियों 1 : 4-6 इसका उत्तर देता है। यहाँ प्रेरित लिखता है: ''और हे भाईयों, परमेश्वर के प्रिय लोगों, हम जानतें हैं कि तुम चुने गये हो!''- तब वह **कारण** बतलाया है कि वह क्यों जानता है: ''क्योंकि हमारा सुसमाचार तुम्हारे पास न केवल वचनमात्र ही में, वरन् ,सामर्थ्य और पवित्र आत्मा और बड़े निश्चय के साथ पहुँचा है; जैसा तुम जानते हो कि हम तुम्हारे लिए तुम में कैसे बन गये थे और तुम बड़े क्लेश में पवित्र आत्मा के आनंद के साथ वचन को मानकर हमारी और **प्रभु की सी चाल चलने लगे।''**

उन्होंने वचन को ग्रहण किया था-यही प्रमाण था। जब कोई सुसमाचार को ग्रहण करता है और उसके द्वारा परमेश्वर के साथ उसका मेल हो जाता है, तो यही उसके चुन लिये जाने का प्रमाण ठहराता है।

चुने जाने के विषय में पवित्रशास्त्र क्या कहता है

यद्यपि चुने जाने के विषय में परमेश्वर के वचन में कई स्थानों पर लिखा हुआ है (उदाहरण के लिए देखें : 1 पत. 1 : 2; 2 तीमु. 1 : 9, तीतुस 1 : 2 आदि)। यह शिक्षा मुख्यतः रोमियों 8 : 28-30 तथा इफिसियों 1 : 3-14 में पायी जाती है। रोमियों 8 : 29-30 में हम पढ़ते हैं: क्योंकि जिन्हें उसने पहले से जान लिया है, उन्हें पहले से ठहराया भी है कि उसके पुत्र के स्वरूप में हों, ताकि वह बहुत भाइयों में पहिलौंठा ठहरे। फिर जिन्हें, पहले से ठहराया, उन्हें बुलाया भी; और जिन्हें बुलाया, उन्हें धर्मी भी ठहराया है; और जिन्हें धर्मी ठहराया, उन्हें महिमा भी दी है।

सर्वप्रथम हम यहाँ सीखते हैं कि परमेश्वर को लोगों का पूर्व-ज्ञान है। यहाँ यह नहीं कहा गया है कि उसे लोगों की दशा मालूम थी कि लोग कैसा जीवन बिताएंगे, अथवा यह कि वे अपना मन-परिवर्तन करेंगे अथवा नहीं, आदि। नहीं, वह तो व्यक्तियों को जानता था; और इफिसियों 1 : 4 में कहता है कि ''पूर्व ज्ञान'' का ''पूर्व'' जगत् की उत्पत्ति के पहले से, अर्थात् उस पिछले अनन्त के साथ था। इन सभी के सभी लोगों के लिए परमेश्वर ने पूर्व-निर्धारण कर रखा है कि ये सभी उसके पुत्र की स्वरूपता में बदल जाएं।

यही चुना जाना है। इसके पूर्व कि हम उत्पन्न हों, आदम की उत्पत्ति हो; हाँ इसके पूर्व कि स्वर्ग और पृथ्वी की सृष्टि हुई जिसका वर्णन उत्पत्ति 1 : 1 करती है, परमेश्वर को हमारा ध्यान था और उसके विचार में यह था कि **हम उस के पुत्र की स्वरूपता में बदल जाएं।** परमेश्वर का वचन मसीह के विषय में कहता है कि वह ''अदृश्य परमेश्वर का प्रतिरूप'' है (कुलु. 1 : 15)। यहाँ पर हम यह पाते हैं कि हम उसके रूप में बदल जाएंगे। बहुत से भाइयों में वह अवश्य ही पहिलौंठा है। यद्यपि इस प्रकार वह सब बातों में प्रथम स्थान रखता है फिर भी हम उस के समान होंगे।

नि:संदेह, सब यहाँ पर प्रभु शाश्वत् पुत्रत्व में नहीं। बल्कि वह अनन्त परमेश्वर है, जो एक मात्र परमेश्वर है। यहाँ वह पृथ्वी पर देहधारी, परमेश्वर का पुत्र कहा जाता है जिसने क्रूस पर अपना कार्य शुरू कर दिया, और जिसमें परमेश्वर की सारी परिपूर्णता वास करे (कुलु. 1 : 19-21; इफि. 1 : 10, 20-23)।

हमारे आशीष के मूल स्त्रोत का सम्बंध इसके सम्पूर्ण निष्कर्म से है-स्वर्ग और पृथ्वी की सृष्टि से पहले के अनन्त (शाश्वत) का सम्बन्ध, स्वर्ग और पृथ्वी के टल (विनष्ट हो) जाने के बाद के अनन्त से है। परमेश्वर के हृदय के विचारों का सम्बंध उनकी पूर्णता से है जैसा कि 1 यूहन्ना 3 : 2 में हमारे लिए प्रस्तुत किया गया है: ''हम जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम भी उसके समान होंगे, क्योंकि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है।'' ''जी उठने की सन्तान'' की भांति (लूका 20 : 36) परमेश्वर के सन्तान भी होंगे, जब वह हमारी दीन-हीन देह का रूप बदलकर अपनी महिमा की देह के अनुकूल बना देगा'' फिलि. 3 : 21)।

बुलाये गये, धर्मी ठहराये गये और महिमान्वित किये गये

पद 30 में हमें परमेश्वर की मनसा तथा समय में एक संबंध दिखायी देता है। जब हम उत्पन्न हुए तो हमने परमेश्वर की ओर अपनी पीठ फेर ली; हम पापी थे। परन्तु परमेश्वर ने हमको बुलाया है। यहाँ पर परमेश्वर की सभी के लिए आम बुलाहट का प्रश्न नहीं है कि वे मन फिरायें। यहाँ पर तो यह परमेश्वर का सृजनात्मक कार्य है कि ''जो बातें हैं ही नहीं, उनका नाम

ऐसा लेता है कि मानो वे है'' (रोमि. 4 : 17)। और जिनको उसने इस प्रकार बुलाया है, उनको धर्मी भी ठहराया है।

यहाँ प्रत्येक वस्तु परमेश्वर की ओर से तथा परमेश्वर की मनसा (सम्मति) से दिखलायी देती प्रतीत होती हैं। रोमियों की पत्री के लिखे जाने तक सभी चुने हुए लोग बुलाये नहीं गये थे-वास्तव में बहुत थोड़े से ही लोग बुलाये हुए थे, क्योंकि विषय तो है जगत की उत्पत्ति से पूर्व के चुने जाने का: और यहाँ तो सम्बंध केवल कलीसिया से है। इस्राएल तथा कलीसिया के उठाये जाने के बाद के विश्वासी भी, संसार की उत्पत्ति से पहले वे चुने हुए हैं (प्रकाशित 13 : 8)।

और यहाँ तक कि वास्तव में अभी भी सभी लोग बुलाये हुए नहीं हैं। वह तो तभी होगा जब कलीसिया ऊपर उठा ली जाती है और उनकी संख्या पूरी हो जाती है। किन्तु परमेश्वर के विचार से यह निश्चय है कि ऐसा होगा। इसीलिए भविष्यवक्ता की भाषा में इस प्रकार कहा गया है, मानो यह पहले ही शुरू हो चुका है। यहाँ तक कि महिमा-प्राप्ति को भी इस प्रकार दर्शाया गया है जैसे कि पहले ही प्राप्त हो चुकी हो, यद्यपि रोमियों 5 : 2 कहता है कि हमारी मरणहार देह अभी भी जिलायी जाएंगी। परन्तु यह तो निश्चित है कि यह होगा। उस स्थान को प्राप्त करने के लिए जो कुछ आवश्यक है तथा जो परमेश्वर के अनुग्रह से हमें प्राप्त होने को है, वह बिना हमारी किसी सहायता के उसके द्वारा घटित होगा। यही हमारा विश्वास है।

हमारा परमेश्वर और हमारा पिता

इफिसियों 1 : 4,5 हम आगे विस्तारपूर्वक देखेंगे। पद 3 में परमेश्वर को हमारे प्रभु यीशु मसीह का परमेश्वर और पिता कहा गया है। मनुष्य की हैसियत से प्रभु यीशु ने ''मेरे परमेश्वर'' कहा (उदाहरणार्थ, मत्ती 27 : 46)। परमेश्वर के पुत्र की हैसियत से प्रभु यीशु ने परमेश्वर को अपना पिता कहकर सम्बोधित किया (यूह. 17 : 1, 5 : 17, 18 इत्यादि)। अपने पनरूत्थान के पश्चात प्रभु अपने को परमेश्वर के उसी सम्बन्ध में ले आया। ''मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता: और अपने परमेश्वर और तुम्हारे परमेश्वर के पास ऊपर जाता हूँ'' (यूह. 20 : 17)। निश्चित रूप से यह एक अंतर सदैव बना रहेगा। वह ''हमारे'' पिता और ''हमारे'' परमेश्वर नहीं कहता। वह बहुत से भाइयों से पहिलौंठा है। किन्तु फिर भी परमेश्वर, प्रभु यीशु के द्वारा हमारा परमेश्वर और हमारा पिता बन गया है।

इफिसियों 1 : 4, 5 में चुने जाने के द्वारा जो स्थान हमने प्राप्त किया है, उसका भी वही महत्त्व है। पद 4 में हमें अपना वह स्थान प्राप्त है जहाँ परमेश्वर, हमारा परमेश्वर है, तथा पद 5 में हमें वह स्थान प्राप्त है जहाँ पर परमेश्वर हमारा पिता है। और इसलिए कि हम सिद्धता में इस स्थान को प्राप्त कर ले, हम मसीह मे चुने गए हैं। उसे यह स्थान उसके व्यक्तिगत महिमा और व्यक्तिगत अधिकार के कारण प्राप्त है। हमें यह उसी में प्राप्त होता है।

प्रेम में उसके निकट पवित्र और निर्दोष

इफिसियों 1 : 4 को पुन: देखें ''जैसा उसने हमें जगत की उत्पत्ति से पहले उसमें चुन लिया कि हम उसके निकट प्रेम में पवित्र और निर्दोष हों।'' यहाँ पर हम अपने सामने ईश्वरीय स्वभाव को पाते हैं। **परमेश्वर अपने अस्तित्व में पवित्र, कार्य में निर्दोष और स्वभाव में प्रेमी है** (यूह. 1 : 5, 4 : 8-16)। उसकी इच्छा के अनुसार यदि हम उसकी उपस्थिति में आना चाहते हैं, तो यह आवश्यक है कि हम उसके स्वभाव के अनुरूप हों। वे मनुष्य जो पाप के कारण विकृत हो गये हैं, वे किस प्रकार उसके साथ रह सकते हैं जो इतना पवित्र है कि वह पाप की तरफ देख भी नहीं सकता और जो एक दिन पाप-संबंधी सभी चीजों को आग की झील में डालेगा? अत: उसने हमें इसलिए चुन लिया है कि हम उसके स्वभाव के तदनुसार हो जाएं। परन्तु इतना पर्याप्त नहीं है। अवश्य ही हमें उसके हृदय की भावनाओं में अर्थात् परमेश्वर के विचारों में, जो प्रेम है, प्रवेश करना होगा। इसी कारण पद 4 कहता है, ''उसके निकट प्रेम में''।

धीरे-धीरे जब हम उसके साथ हो लेंगे, तब हम ''उसके निकट प्रेम में पवित्र और निर्दोष'' होंगे। तब वह प्रत्येक वस्तु जो अभी भी हम में पाप का स्मरण कराती है, अर्थात् हमारी सभी निर्बलताएं, कमियों और पाप, दूर कर दी जाएंगी। तब शरीर के काम समाप्त हो जाएंगे किन्तु परमेश्वर पहले ही से हमें इस प्रकार से देखता है। वह केवल उस नये जीवन में हमें देखता है जो प्रभु यीशु ने दिया है। ''मसीह यीशु में उन भले कार्यों के लिए सृजे गये जिन्हें परमेश्वर ने पहले से हमारे करने के लिए तैयार किया'' (इफि. 2 : 10)। ''क्योंकि उसने एक ही चढावे के द्वारा उन्हें जो पवित्र किये जाते हैं, सर्वदा के लिए सिद्ध कर दिया है'' (इब्रा. 10 : 14)। ''जैसा वह है, वैसे ही संसार में हम भी है!''(1 यूह. 4 : 17)।

हम जो अपने आप में कंगाल और पापी मनुष्य हैं, हम पर कैसा अनुग्रह हुआ।

उसका लेपालक-पुत्र बनने के लिए

किन्तु यही सब कुछ नहीं! ऊपर वर्णित सभी आशिषों को हम प्राप्त कर सकते हैं जिससे परमेश्वर के समक्ष हम उसके सेवक ठहरें। एक स्वर्गदूत को भी महिमा और पवित्रता में परमेश्वर के अनुसार होना आवश्यक है। ''हमें अपने लिए पहले से ही ठहराया कि यीशु मसीह के द्वारा हम उसके लेपालक (दत्तक) पुत्र हो'' (इफि. 1 : 5)। यहाँ पर एक निश्चित संबंध है : एक पिता का अपने बच्चे के साथ संबंध और बच्चों का एक पिता के साथ संबंध। पुनरूत्थान और क्रूस पर किये गये अपने कार्य के आधार पर परमेश्वर का पुत्र हमें अपने स्थान पर ले आया : कि हम परमेश्वर की सन्तान बनें। परन्तु इफिसियों में हम सीखते हैं कि परमेश्वर ने जगत की उत्पत्ति से पहले ही हमें इसके लिए अलग रखा है। इस प्रकार परमेश्वर ने पहले से

ही यह निश्चित कर लिया था कि हमें यह स्थान प्राप्त हो। और इसके लिए वह क्या कारण देता है? ''**अपनी इच्छा की सुमति के अनुसार**'' केवल उसका प्रेम ही इस आशीष का मूल-स्त्रोत है।

मसीहियत में पाया जाने वाला शाश्वत (अनंतकाल) का गुण

किन्तु इन पदों से अभी एक और महत्वपूर्ण निष्कर्म निकाला जाना है। ''उसने हमें जगत की उत्पत्ति से पहले उस (मसीह) में चुन लिया।'' यह चुनाव पूर्णतया समय से परे और शाश्वत है-इस संसार के लिए नहीं। पद 3 के लिए भी स्वर्गीय स्थानों में सब प्रकार की आशीषों का वर्णन करता है। इस्राएल इस पृथ्वी पर चुनी हुई एक जाति है (निर्ग 19 : 5, लैव्य. 25 : 2, 23, व्यवस्था. 7:6)। परन्तु मत्ती 25 : 34 में ''भेड़ों'' के लिए भी कहा गया है: ''आओ, उस राज्य के अधिकारी हो जाओ जो जगत के आदि से तुम्हारे लिए तैयार हुआ है।'' इस प्रकार ये संसारिक आशीषें (राज्य) हैं जो समय (जगत् के आदि) से सम्बद्ध हैं।

यहाँ से एक विशेष स्थान का वर्णन पाया जाता है जो हमारे पास है। हम एक (मसीहियत) और एक देह (कलीसिया) के अन्तर्गत आते हैं जो पूर्णतया समय-परिधि से परे है। उनकी उत्पत्ति जगत के आदि से है जब परमेश्वर ने मसीह में उनकी सृष्टि की। वे इस संसार के नहीं (यूह. 17 : 14), और जब यह पृथ्वी समाप्त हो जाएगी तब वे आनेवाले अनन्त भविष्य में आगे बने रहेंगे-चालु रहेंगे। उनका गुण आत्मिक और शाश्वत् है। इसके द्वारा हमें मसीहियत के चरित्र की गहराइयों का दर्शन होता है।

इसलिए इफिसियों 1 : 3-5 किसी दायित्व और उससे जुड़ी सारी बातों के विषय में नहीं बतलाता। यह दायित्व तभी आरम्भ हुआ जब आदम की सृष्टि की गई और वह अदन के बाग में रखा गया था, जिसका अन्त उस न्याय के महाश्वेत सिंहासन के उपरान्त ही होगा (प्रका. 20)।

अदन के बाग में दो वृक्ष थे। एक वृक्ष भले और बुरे के ज्ञान का वृक्ष था जो दायित्व के सिद्धान्त को दर्शाता है, क्योंकि ''जिस दिन तू इसे खायेगा, निश्चय ही मर जाएगा,'' और वहाँ जीवन का भी एक वृक्ष था, जो जीवन के सिद्धान्त को दर्शाता है। आदम ने इनमें से पहले वृक्ष का फल खाया और तब वह कभी भी उस दूसरे वृक्ष का फल न खा सका, क्योंकि उसके दण्ड स्वरूप उसे मृत्यु प्राप्त हो गई।

क्रूस के ऊपर हम दोनों वृक्षों को एक साथ पाते है। प्रभु यीशु ने उन सभी के पापों का दायित्व अपने ऊपर ले लिया जिन्होंने विश्वास किया, तथा एक पुनरूत्थान पाये हुए की हैसियत से उसने मृत्यु के बदले उसको जीवन प्रदान किया। वह जीवन का वृक्ष है।

परन्तु यह सब कुछ ''समय के अन्तर्गत'' धरती पर घटित हुआ, और इस प्रकार वह

परमेश्वर की अनन्तकालीन मनसा का हिस्सा न बन सका। क्योंकि यह सब कुछ इस पापी, शापित पृथ्वी पर घटित हुआ जिसे जलाने के लिए और परमेश्वर के आगे से नाश करने के लिए रखा हुआ है। तो भी यह आवश्यक था और इसलिए ''चुनाव'' का कार्य उसमें अर्थात् मसीह में सम्पन्न हुआ, और परमेश्वर की सर्म्पूण मनसा और उसका नमूना सर्वप्रथम क्रूस के पश्चात प्रकट हुआ जब अन्तिम आदम नयी सृष्टि का अर्थात परमेश्वर के परिवार का प्रधान ठहरा।

परमेश्वर के विचारों की गहराइयाँ देखना तथा उसकी बुद्धि पर आश्चर्य करना कितना अद्भुत है–और इसी समय यह भी विचारना कि हम उसके इन विचारों के विषय थे।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,

परमेश्वर के प्रेम में आपका भाई,

एच. एल. एच

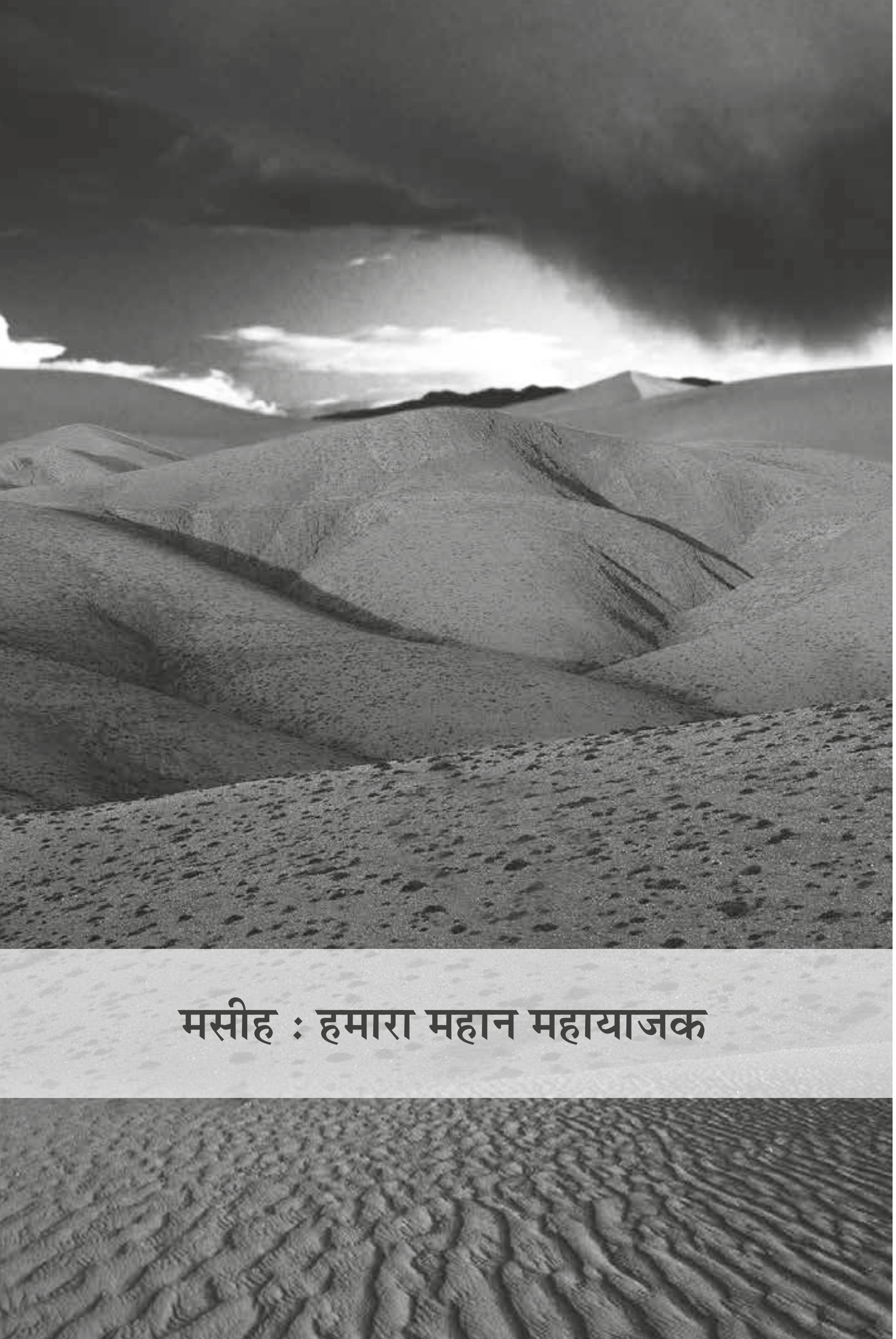

7 मसीह : हमारा महान महायाजक

प्रिय मित्र,

जब कोई व्यक्ति अनुभव करने लगता है कि एक विश्वासी के पास क्या है, तो वह विचार कर सकता है कि अब उसे किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि उसके पाप क्षमा हो चुके है और उसका मेल परमेश्वर से हो चुका है। नये जन्म के द्वारा उसका एक नया जीवन, एक नया स्वभाव और एक ईश्वरीय स्वभाव प्राप्त हुआ है जो अब पाप नहीं कर सकता।

परमेश्वर ने उसके पुराने स्वभाव का न्याय क्रूस पर चुका कर उसे दूर कर दिया है, इसलिए अब परमेश्वर एक विश्वासी को केवल उसके नये जीवन में देखता है, इसलिए अब जो मसीह यीशु में है, उस पर दण्ड की आज्ञा नहीं। उसके साथ पवित्र आत्मा वास करता है। इस प्रकार से वह शैतान, पाप और संसार की शक्ति से छूट कर स्वतन्त्र हो गया है–अर्थात् छूट कर स्वतंत्र हुआ है कि वह परमेश्वर की सेवा करे। वह उस प्रिय में ग्रहण कर लिया गया है।

इस प्रकार, अब वह परमेश्वर की महिमा की उस आशा पर गर्व कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि वह उसी के लिए तैयार किया गया है।

अब जहाँ तक शाश्वत जीवन और स्वर्ग का सम्बन्ध है, यह सत्य है कि अब उसे कुछ और नहीं चाहिए। किन्तु फिर भी एक परमेश्वर की सन्तान की अनेक आवश्यकताएं हैं। चूँकि वह परमेश्वर की सन्तान तथा स्वर्ग का एक नागरिक है (फिलि. 3:20), अत: वह इस धरती पर परदेशी है, और इसलिए कि वह स्वर्ग के मार्ग पर है, वह एक यात्री है। किन्तु इसके होते हुए भी चूँकि वह शैतान की शक्ति से मुक्त किया गया है। उसके हृदय की यह अभिलाषा रहती है कि वह परमेश्वर की सेवा करे। परन्तु इसके कारण वह तुरंत शैतान तथा उन मनुष्यों का जिन्होंने अभी मन-परिवर्तन नहीं किया है, विरोध सहने लग जाता है। **वास्तव में, शैतान का कार्य मनुष्यों को परमेश्वर की आज्ञा मानने से रोकना है।** अत: वह अपनी सारी शक्ति और सारी चालाकी एक विश्वासी को परमेश्वर के विरुद्ध पाप करने तथा उसकी आज्ञा न मानने के सुनिश्चित उद्देश्य के लिए लगा देता है।

इसमें अविश्वासियों के साथ शैतान को तनिक भी परेशानी नहीं होती। क्योंकि वे स्वभाव से ही परमेश्वर की आज्ञा नहीं मानना चाहते। उनके मन की अभिलाषा तो यही रहती है कि वे पाप करें, और जब वे पाप करते हैं तो उनका हृदय सन्तुष्ट हो जाता है (उत्प. 6:5, मरकुस 7:20-23, रोमि. 3:10-20)। यही वह आधार है जिस पर संसार और समाज बना है। इसी

उद्देश्य से मनुष्य आपस में संगठित हुए हैं कि वे परमेश्वर पर निर्भर न रहें, बल्कि अपनी इच्छा के अनुसार चलें (उत्प. 9:1, 11:4-9)। परन्तु इसलिए कि मनुष्य स्वतंत्र नहीं रह सकता, वह शैतान को अपना राजा मान बैठा है और परमेश्वर के पुत्र को त्याग देने के पश्चात् तो उसने उसे अपना ईश्वर भी मान लिया है (यूह. 12:31, 2 कुरिं. 4:4)।

तब एक मसीही के कार्य संसार के कार्य से बिल्कुल विरुद्ध लगते हैं। इसलिए संसार एक मसीही का कट्टर शत्रु है जिसको वह क्रोध दिलाने वाला उपद्रवी समझता है। प्रभु ने अविश्वासियों से बात करते हुए यूहन्ना 7:7 में कहा : ''जगत तुमसे बैर नहीं कर सकता, परन्तु वह मुझ से बैर करता है, क्योंकि मैं उसके विरोध में गवाही देता हूँ कि उसके काम बुरे हैं।'' परन्तु यूहन्ना 17:14 में वह विश्वासियों के विषय कहता है : ''संसार ने उनसे बैर किया, क्योंकि जैसा मैं संसार का नहीं वैसे ही वे भी संसार के नहीं।'' और तब यूहन्ना 16:33 में वह अपने शिष्यों से कहता है : ''संसार में तुम्हें क्लेश होता है।''

एक मसीही इस संसार में केवल तभी स्वीकार किया जा सकता है, जब वह अपने को मसीही प्रकट न करे, बल्कि उसके कार्यों में सम्मिलित हो और इस प्रकार से व्यावहारिक रूप से अपने आप को शैतान के स्वामित्व में समर्पित कर दे। किन्तु ऐसा करना उसके लिए परमेश्वर के प्रति अविश्वास योग्य एवं विश्वासघाती ठहरना होगा। ऐसा मसीही सचमुच में शत्रु का सहयोगी है।

यहीं पर एक मसीही के संग युद्ध आरम्भ हो जाता है। अब वह शैतान आता है और प्रयास करता है कि वह उससे पार कराये। वह फुस-फुसाकर उसके कान में गंदे और पापमय विचार डाल जाता है। वह उसे पापमय वस्तुएँ देखने देता है। वह उसे दुष्ट-वचन सुनने देता है, और उसे फिर से गंदे स्थानों पर ले आता है। और इन सब के बावजूद भी वह होने देता है कि संसार उससे शत्रुता करे। यह सब एक नये मनुष्य को दुखी बनाता है। **परन्तु एक मसीही के पास उसका पुराना स्वभाव अभी भी होता है जो परमेश्वर को प्रसन्न करने की बजाय पाप करता है और यही वह बिन्दु है जहाँ पर शैतान सम्पर्क साधता है।** यहाँ एक बहुत बड़ा खतरा है कि शैतान विजयी हो जाय और मनुष्य को पाप करने के लिए फुसलाए। परन्तु परमेश्वर के प्रेम ने इसका भी उपाय कर रखा है।

मसीह हमारा महायाजक

ये चीजें हमारे समक्ष इब्रानियों की पत्री में प्रस्तुत की गयी हैं। यहाँ हम एक मसीही को एक यात्री तथा परदेशी के रूप में पाते हैं। वह यात्रा करते हुए महिमा की ओर बढ़ता चला जा रहा है (इब्रा० 11:40), क्योंकि उसी ने स्वर्गीय बुलाहट में बुलाया है (इब्रा. 3:1)। किन्तु वर्तमान में वह अभी भी जंगल में है, जहाँ वह हर प्रकार की कठिनाइयों और जोखिमों का

सामना कर रहा है। तब हमें हमारा याजक दिया गया है। स्वर्ग में विद्यमान प्रभु यीशु हमारा महान् महायाजक है, जो हमारी कठिनाईयों और हमारे खतरों पर आँख लगाये हुए परमेश्वर से विनती एवं निवेदन करता है।

प्राय: ऐसा सोचा जाता है कि प्रभु यीशु का याजक पद हमारे पाप के संदर्भ में पाया जाता है। किन्तु साधारणतया यह कहना ठीक नहीं है। नि:संदेह, महायाजक की भांति उसका आरम्भ हमारे पापों के संबंध में था। इब्रा 2:17 बतलाता है, ''वह उन बातों में जो परमेश्वर से संबंध रखती हैं, एक दयालु और विश्वासयोग्य महायाजक बने ताकि लोगों के पापों के निमित्त प्रायश्चित करे।'' परन्तु इब्रानियों 10:12 बतलाता है कि, ''वह व्यक्ति तो पापों के बदले एक ही बलिदान सर्वदा के लिए चढ़ाकर परमेश्वर के दाहिने जा बैठा।'' पद 14 आगे कहता है, ''क्योंकि उसने एक ही चढ़ावे के द्वारा उन्हें जो पवित्र किए जाते हैं सर्वदा के लिए सिद्ध कर दिया है।''

इब्रानियों की पत्री एक विश्वासी को परमेश्वर की सृष्टि के रूप में देखती है और चूँकि प्रभु यीशु ने क्रूस पर के कार्य को पूरा किया है, जहाँ परमेश्वर पूर्ण रूप से संतुष्ट हो गया, अत: पाप की समस्या का समाधान सदैव के लिए हो गया। उसने ''अनन्त छुटकारा पाया है'' (इब्रा. 9:12)। एक विश्वासी ''स्थायी रूप से सिद्ध किया गया है।'' मसीह ने अपने ही बलिदान के द्वारा पाप को दूर कर दिया (इब्रा. 9:26)।

परमेश्वर तथा एक विश्वासी के मध्य अब पाप का प्रश्न पुन: कभी भी नहीं उठेगा। अत: इब्रानियों की पत्री में इसके विषय में और अधिक नहीं कहा गया है। वे पाप जो एक विश्वासी करता है, उसके मन-परिवर्तन कर लेने के पश्चात् विवाद के विषय परमेश्वर और उसकी सृष्टि के मध्य नहीं, बल्कि एक पिता और उसके बच्चे के मध्य रह जाता है। यह हम यूहन्ना की प्रथम पत्री में पाते हैं।

स्वर्गीय याजक

यद्यपि महायाजक की हैसियत से प्रभु यीशु की प्रथम सेवकाई इस पृथ्वी पर आरम्भ हुई, और वास्तव में इसका संबंध हमारे पापों से था, परन्तु प्रभु के याजकपन का अब वह रूप नहीं। अपना कार्य पूरा कर लेने के पश्चात् वह सर्वदा के लिए स्वर्ग में पिता के दाहिने जा बैठा। ''सो ऐसा ही महायाजक हमारे योग्य था, जो..... स्वर्ग से भी ऊँचा किया हो'' (इब्रा. 7:26)। ''और यदि वह पृथ्वी पर होता तो कभी याजक न होता'' (इब्रा. 8:4)। अत: हमारे पास स्वर्ग में एक याजक हैं, और जहाँ तक हमारे पापों का संबंध है, उसने सब कुछ ठीक कर लिया है और अब वह अपने लोगों के लिए विनती करने को जीवित है (इब्रा. 7:25)।

और यह याजक कौन है ? इब्रानियों 1 अध्याय कहता है कि वह परमेश्वर का पुत्र है! इसीलिए वह सदैव हमारे लिए परमेश्वर से विनती कर सकता है। परमेश्वर के अतिरिक्त कौन

ऐसा कर सकता था ? परन्तु मनुष्यों के लिए विनती करने के लिए उसे भी मनुष्य होना चाहिए। और इब्रानियों 2 अध्याय बतलाता है कि वह सचमुच में एक मनुष्य बन गया। वह मनुष्य का पुत्र है। वह तो आदम से कहीं बढ़कर मनुष्य था, क्योंकि वह एक स्त्री से उत्पन्न हुआ था (गल 4:4)।

कितना अद्‌भुत! परमेश्वर शरीर में प्रकट हुआ। वचन देहधारी हुआ! वह जो स्वर्ग और पृथ्वी का सृष्टिकर्त्ता था और जिसने मनुष्य की उत्पत्ति की वह स्वयं मनुष्य बन गया।

इब्रानियों 2 अध्याय, प्रभु के मनुष्य बनने के दो कारण देता है। पद 14-17 हमें बतलाते हैं कि यह हमारे पापों के प्रायश्चित के कार्य को पूरा करने के लिए तथा हमे शैतान तथा मृत्यु की शक्ति से छुड़ाने के लिए था। किन्तु शेष पद अन्य दूसरे कारण भी बतलाते हैं : अवश्य है कि वह दयालु और विश्वसनीय महायाजक हो। क्या यह हृदयों से जोर से बातें नहीं करता ?

प्रभु यीशु जानता था कि हम किसके समान होंगे। वह जानता था कि मार्ग में कठिनाइयाँ और खतरे आएंगे। इसलिए वह मनुष्य बना और हमारी प्रत्येक परिस्थिति में से होकर गया, ताकि वह स्वयं अपने अनुभव से प्रत्येक कठिनाई, प्रत्येक दु:ख और प्रत्येक परीक्षा में अपनी पूरी जानकारी के साथ हमारे संग खड़ा रह सके कि हमें किन-किन पर विजयी होना है।

उसने आज्ञाकारिता सीखी

वह परमेश्वर के आज्ञा-पालन की कीमत को जानता था, जबकि हम एक ऐसे वातावरण में रह रहे हैं जो कि परमेश्वर के प्रति विरोधी है। क्या उसने आज्ञाकारित नहीं सीखी थी (इब्रा. 5:8) ? वह आज्ञा-पालन करने का अभ्यस्त नहीं था, क्योंकि वह सर्वोच्च परमेश्वर था। परन्तु पृथ्वी पर मनुष्य की हैसियत से उसने यह सीखा कि आज्ञाकारिता क्या होती है। यशायाह 50:4, 5 में वह कहता है : ''भोर को वह नित्य मुझे जगाता और मेरा कान खोलता है कि मैं निर्देशानुसार सुनूँ। प्रभु यहोवा ने मेरा कान खोला है, और मैंने विरोध न किया, न पीछे हटा।'' उसने इसके द्वारा इस संसार में परमेश्वर के साथ शत्रुता के परिणाम को भी अनुभव किया। ''मैंने मरने वालों को अपनी पीठ, और गलमोछ नोचने वालों की और अपने गाल किये, अपमानित होने और उसके थूकने से मैंने मुँह न छिपाया'' (यशा. 50:6)। उसने मार खायी, क्योंकि वह सच बोलता था (यूहन्ना 18:23)। उस परमेश्वर के पवित्र पर क्या बीती होगी जब लोगों ने उससे कहा :''क्या हम ठीक नहीं कहते कि तू सामरी है और तुझमें दुष्ट आत्मा है ?'' और ''अब हम जानते हैं कि तुझ में दुष्ट आत्मा है'' (यूहन्ना 8:48-52) ? किंतु उसने परमेश्वर की शक्ति का भी अनुभव किया जो उसे थामे रही। ''क्योंकि प्रभु यहोवा मेरी सहायता करता है, इस कारण मैंने संकोच नहीं किया, वरन् अपना माथा चकमक की नाई कडा किया क्योंकि मुझे निश्चय था कि मुझे लज्जित होना न पड़ेगा। जो मुझे धर्मी ठहरता है वह मेरे निकट है'' (यशा 50:7, 8)।

हमें आज्ञाकारित अवश्य सीखनी चाहिए, क्योंकि हम अनाज्ञाकारी, पापी जन थे। केवल वही हमें भली भाँति जान सकता है कि हमने क्या सीखा। जब हमारी आज्ञाकारिता का परिणाम यह होता है कि मनुष्य हमारा ठट्ठा करते हैं, हमारी हँसी उड़ाते हैं, और यहाँ तक कि संभवत: हमारी अपनी कमाई, आगे बढ़ने के अवसर अथवा जीवन की अन्य बातों की हानि उठाते हैं, तब वह हमसे पूरी-पूरी सहानुभूति रखता है। और हमारे लिए विनती करता है जिससे कि हम पर दया और अनुग्रह हो और समय पर सहायता भी (इब्रा. 2:18, 4:16)।

परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारिता हमारे लिए यह अनिवार्य बना सकती है कि हम उन व्यक्तियों तथा वस्तुओं से अलग हो जाएं जिनसे हमारे हृदय लगे हुए हैं। हाँ, संभवत: उन चीजों से अलग हो जाएं जो अपने आप में भली दिखाई देने वाली हैं और जिन्हें हमने प्रभु से प्राप्त किया है। संभवत: उन लोगों से अलग हो जाएं जिनसे हम इस धरती पर अत्याधिक प्रेम करते हैं, क्योंकि वह उनको हमसे तो ले लेता है, और शायद इसलिए कि हम उसके आज्ञाकारी बने रहना चाहते हैं, अत: अब आगे को उनके संग नहीं चल सकते। हमें अपने कार्यकलापों के क्षेत्र को छोड़ना पड़ सकता है यहाँ तक कि वह आत्मिक कार्य जिसे हम उसके लिए करना चाहते हैं, अर्थात् वह कार्य जो हमें करने को दिया है। इन सब बातों को प्रभु यीशु अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानता है। उसने अपने आप को रिक्त-खाली, शून्य कर दिया और मृत्यु तक, हाँ क्रूस की मृत्यु तक आज्ञाकारी रहा (फिलि. 2:5-8)। उसने गतसमनी के बाग में बड़े ही संघर्ष के साथ प्रार्थना की : ''पिता, यदि तू चाहे तो इस कटोरे को मेरे पास से हटा ले'' (लूका 22:42)। परमेश्वर की जिस आज्ञा-पालन की मांग उससे की गयी थी, क्या वह पवित्र उस मार्ग से पीछे न हट जाय ? हाँ, एक ऐसा मार्ग जहाँ उस पवित्र को आप ही अपनी देह पर हमारे पापों को लेकर क्रूस पर जाना था कि वहाँ वह हमारे लिए पाप ठहराया जाय (1 पत. 2:24; 2 कुरि. 5:21)। एक ऐसा मार्ग जिसमें परमेश्वर उसे छोड़ दे, और कि परमेश्वर का दण्ड उस पर आ पड़े (मत्ती 27:46; जकर्याह 13:7, रोमि. 8:3)। हाँ, परमेश्वर के किसी भी जन की अपेक्षा वह कहीं अधिक गहरी आज्ञाकारिता में से होकर गया है जिसमें से होकर न तो कभी कोई गया, और न ही कभी जाने में समर्थ होगा। इस कारण से भी ऐसी कोई भी ''आज्ञाकारिता का बलिदान'' नहीं जिसमें वह हमारे हृदयों में से उठने वाली संघर्ष की भावनाओं को न समझ सके। परन्तु आज्ञाकारिता के मार्ग को पूरा तय करने के कारण से – ''मेरी नहीं, परन्तु तेरी इच्छा पूरी हो'' – वह अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानता है कि ऐसी परिस्थिति में हृदय की क्या दशा रहती है, और क्या सहायता परमेश्वर करता है। ''तब स्वर्ग से एक दूत उसको दिखायी दिया जो उसे सामर्थ्य देता था'' (लूका. 22:43)। इसलिए वह हमारी सहायता के लिए आगे आता है कि हम ''उपयुक्त सहायता के लिए अनुग्रह पा सकें।''

शैतान की ओर से परीक्षाएँ

हमारे हृदय दु:खी हो जाते हैं जब शैतान हमारे सामने परीक्षाओं को लेकर आता है। किस प्रकार हमारे अंदर पाये जाने वाले उस नये जीवन की हानि होती है जब वह हमारे भीतर अशुद्ध विचार जागृत कर देता है, जब वह हमारे हृदयों को अनाज्ञाकारिता की ओर उकसाता है, जब वह बार-बार नये सिरे से शीघ्र आक्रमण करता है, परमेश्वर के वचन को पढ़ते समय जब वह हमें भटका देता है, और जबकि वह प्रार्थना करते समय अथवा सभा के सबसे महत्त्वपूर्ण क्षणों में हमारे हृदयों में गलत विचार उत्पन्न कर देता है।

जिस प्रकार से शैतान के द्वारा प्रभु की परीक्षा हुई, वैसी किसी भी व्यक्ति की कभी परीक्षा नहीं हुई होगी। लगातार 40 दिनों तक उसकी परीक्षा होती रही (लूका 4:1)। शैतान ने अपनी सारी शक्ति और सारी चालाकी उस पवित्र के विरुद्ध लगा दी।

पाप में गिर जाने के पश्चात् मनुष्य के साथ शैतान का कार्य सरल हो गया। उस पतित मानव के पापमय हृदय में उसका एक शक्तिशाली गठबंधन हो गया, **एक ऐसा गठबंधन जिसकी प्रसन्नता सदा पाप में रहती है।** उसके मन के विचार में जो कुछ उत्पन्न होता है, वह बुरा ही होता है (उत्प. 6:5)। परन्तु यह बात आदम के पतन के पूर्व सत्य नहीं थी। वह तो विशुद्ध रूप से परमेश्वर के द्वारा रचा गया था। यद्यपि आदम के हृदय-पटल पर शैतान का किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं था, फिर भी शैतान का एक ही प्रयास उसकी उद्देश्य-प्राप्ति के लिये पर्याप्त था। आदम का पतन हो गया, और वह शैतान का दास बन गया।

अब पृथ्वी पर एक नया मनुष्य था जिसका हृदय पाप-रहित था। वह पाप से अज्ञात था। इस मनुष्य के विरुद्ध भी शैतान ने अपना आक्रमण जारी रखा, परन्तु यह युद्ध कुछ भिन्न प्रकार का ही रहा।

आदम पर आक्रमण अदन के बगीचे में हुआ जहाँ सब कुछ परमेश्वर की महानता और उनकी भलाई से भरपूर था-जबकि प्रभु यीशु पर यह आक्रमण एक उजाड़ मरुस्थल में हुआ जो शापित भूमि का प्रतीक है, और जहां उसके लिए कुछ भी न था। यहाँ पर भी शैतान ने उस पवित्र को पापी ठहराने में अपनी सारी शक्ति और चालाकी का भरपूर उपयोग किया। यह युद्ध चालीस दिनों तक चलता रहा, जब तक कि शैतान ने अपने सभी अस्त्र-शस्त्र का उपयोग न कर लिया और पराजित न हो गया। तब शैतान वहाँ से चला गया-न कि प्रभु यीशु, यहाँ कौन है जो उन सभी परीक्षाओं को जानता हो जिससे होकर प्रभु यीशु गया ? कौन है जो शैतान की समस्त चालों तथा उस अंधकार के हाकिम के सम्पूर्ण शस्त्रगार को जानता हो ? हमें तो केवल अन्तिम तीन अस्त्र ही बतलाये गये हैं। परन्तु उस शुद्ध एवं पवित्र के विरुद्ध जो पाप से अज्ञात था, इन अंधकार के हथियारों का कितना अधिक उपयोग हुआ होगा कि वह उनका सामना करे! उसके पवित्र प्राण ने कैसा दु:ख सहा होगा! उसी प्रकार जब शैतान अपनी युक्तियों को हम पर चलाता है तो प्रभु इसे समझ सकता है और हमसे सहानुभूति रख सकता है। क्या हमारे सामने कोई ऐसी परीक्षा भी हो सकती है, जो प्रभु यीशु के सामने शैतान द्वारा न लायी गयी हो ? इसीलिए वह हमारी सहायता कर सकता है, उसने पतरस के लिए प्रार्थना की, परीक्षा के संबंध में, की उसका विश्वास न खोने पाये। ''क्योंकि जब उसने परीक्षा की दशा में दु:ख उठाया, तो वह उनकी भी सहायता कर सकता है जिनकी परीक्षा होती है'' (इब्रा. 2:18)। ''क्योंकि हमारा ऐसा महायाजक नहीं, जो हमारी निर्बलताओं में हमारे साथ दु:खी न हो सके; वरन् वह सब बातों से हमारी नाई परखा तो गया, तो भी निष्पाप निकला'' (इब्रा. 4:15)।

दु:ख और कठिनाइयों में उसकी सहानुभूति

जब हमारे प्रिय हमसे ले लिये जाते हैं,तो हमारी हृदय-वेदना को कौन उसके समान समझता है जो अपने एक मित्र की कब्र पर रो पड़ा था ? जब हम अकेले होते हैं, तो कौन उससे अधिक अकेला रहा जिसने कहा : ''मैं पड़ा-पड़ा जागता रहता हूँ और गौरे के समान हो गया हूँ'' (भजन 102:7) ? जब मित्र हमें त्याग दिये हों, हमें कौन उसके समान समझा सकता है जिसके विषय में पवित्र शास्त्र कहता है : ''इस पर सब चेले उसे छोड़ कर भाग गये'' (मरकुस 14:50) ? जब हम गलत समझे जाते हैं अथवा जिनसे हम अपनी कठिनाइयों को बतलाते हैं। और कोई भी सहानुभूतिपूर्ण रुचि नहीं दिखलाता, तो उससे अधिक अकेला कौन था जिसने पुकारा : ''मैंने सहानुभूति चाही पर कहीं न मिली, शांति देने वाले को भी चाहा, परन्तु किसी को न पाया'' (भजन 69:20) ? यह वह था, जिसने जब अपने शिष्यों से कहा कि वह उनमें से एक के द्वारा पकड़वाया जाएगा और मरने के लिए सौंपा जाएगा, तो उन्होंने शायद ही उस पर ध्यान दिया, बल्कि आपस में विचार करने लगे कि उनमें से बड़ा कौन है (लुका. 22:19-24)। जबकि हमें प्रकाश की आवश्यकता है, तो कौन हमारी उससे अधिक सहायता कर सकता है जिसके विषय में लूका में सात बार कहा गया है कि जब कभी उसको महत्वपूर्ण कार्य करने होते थे तो वह प्रार्थना किया करता था, हाँ, पूरी-पूरी रात्रि वह प्रार्थना में बिता देता था!

यह है हमारा महायाजक जो हमारे लिए विनती करने को स्वर्ग में सदा काल के लिए जीवित है (इब्रा. 7 : 24) अब उसे स्वयं के लिए भी कठिनाई का सामना नहीं करना है - क्योंकि उसका युद्ध समाप्त हो चुका है, किन्तु उसके द्वारा संघर्ष और कठिनाईयों से संबंधित जो भी कोई व्यक्तिगत अनुभव उसने किया है उसका लाभ उठाकर वह अपने आप को पूर्ण रूप से हमारी सहायता करने को अर्पित कर सकता है।

क्या मुझे अपने मार्ग में कठिनाईयों और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है ? यदि है, तो मुझे मसीह के याजकीय प्रार्थना की सहायता प्राप्त हो सकती है। वह पूर्ण रूप से यह जानते हुए

कि परमेश्वर के अनुग्रह से शान्ति मिलती है दूसरों के लिए प्रार्थना करता है,क्योंकि जब वह इस पृथ्वी पर इन्हीं परिस्थितियों में था तो इस शांति को अनुभव से जानता था कि किसी अशांत व्यक्ति को किस प्रकार सांत्वना दी जाये। वह मुझे प्रत्येक वस्तु जिसकी मुझे आवश्यकता होती है, प्रदान करता है और अपनी समझ से जो मुझे चाहिए, वह परमेश्वर से मेरे लिए निवेदन करता है। क्या मुझे ज्योति चाहिए ? क्या मुझे मेरे मार्ग के लिए पथ-प्रदर्शक चाहिए ? परमेश्वर इसे दे सकता है। मुझे प्रत्येक वस्तु प्राप्त होगी, क्योंकि मेरी आवश्यकता के लिए मेरा परमेश्वर है। यह सब कुछ मसीह द्वारा मेरे लिए की जाने वाली विनती का ही परिणाम है।

तो क्या मैं यह इसलिए प्राप्त करता हूँ कि मैं इसके लिए प्रार्थना करता हूँ ? इसके पूर्व कि घटने वाली उस घटना को पतरस जानता, उसने पतरस के लिए प्रार्थना की थी। नहीं, हम प्रभु से नहीं कहते कि वह हमारे लिए पिता से विनती करे। यह तो हमारे प्रति उसके हृदय में उसका वह अनुग्रह है जो यह सब करता है। और वह हमें इसके विषय में सूचित करता है कि हमें ''उसके अनुग्रह के सिंहासन के सामने जाने का हियाव हो, ताकि हमें उसकी दया तथा उपयुक्त सहायता प्राप्त हो''।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ, आपका मित्र, एच.एल.एच.

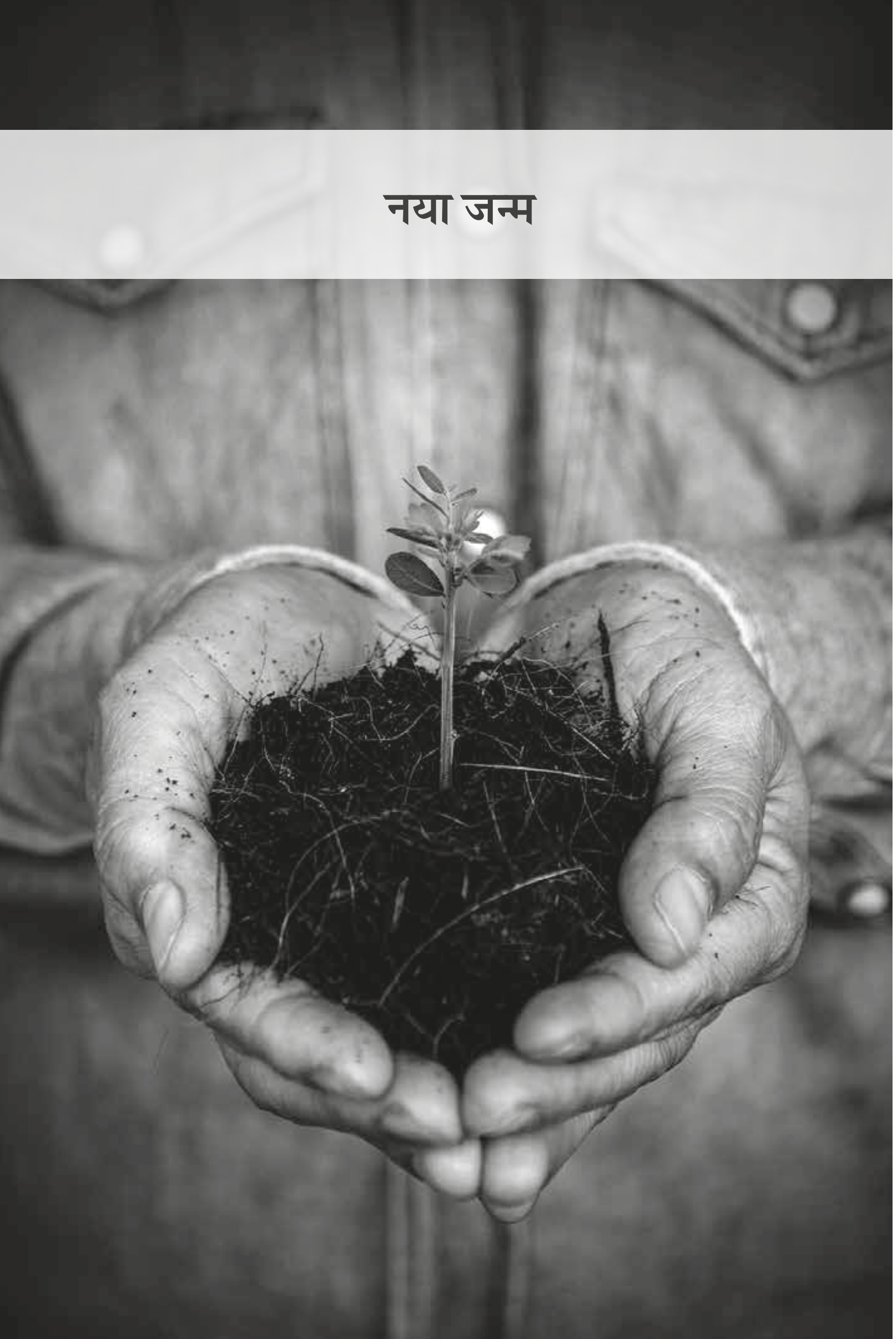

8 नया जन्म

प्रिय मित्र,

पिछले पत्र में हमने देखा है कि एक मसीही वह है जो मसीह के साथ मर चुका है। पुराने मनुष्य का स्वभाव इतना बुरा है कि इसके दण्ड देने को छोड़, परमेश्वर और कुछ कर ही नहीं सकता। यूहन्ना के अध्याय 3 में प्रभु यीशु नीकुदेमुस के समक्ष इस दूसरे तथ्य को प्रस्तुत करता है : किन्तु इसी के साथ वह उसके समक्ष इसका ईश्वरीय निदान भी प्रस्तुत करता है।

वास्तव में यह अनुच्छेद अध्याय 2:23 से आरम्भ होता है। यहाँ हम मसीह को यरुशलेम में पाते हैं। फसह के अवसर पर जब वह आश्चर्य-चिन्ह दिखला रहा था, ''बहुतों ने उन चिन्हों को जो वह दिखलाता था देख कर उसके नाम पर विश्वास किया।'' परन्तु आगे क्या होता है : ''परन्तु यीशु ने अपने आप को इसके भरोसे पर नहीं छोड़ा, क्योंकि वह सबको जानता था : और उसे प्रयोजन न था कि मनुष्य के विषय में कोई साक्षी दे, क्योंकि वह आप ही जानता था कि मनुष्य के मन में क्या है।'' और तब जब कि उनमें से एक मनुष्य उसके पास आया, प्रभु ने ये चुभने वाले शब्द कहे : ''यदि कोई नये सिरे से न जन्मे तो वह परमेश्वर का राज्य देख नहीं सकता!''

मनुष्य का पुत्र जो स्वर्ग में है

अध्याय 3 के 11वें और 13वें पदों में वह प्रकट कर देता है कि स्वयं वह कौन है। वह मनुष्य का पुत्र है जो स्वर्ग में रहता है। यहाँ पर हम उसके व्यक्तित्व का अद्‌भुत रहस्य पाते हैं। यूहन्ना 1:1 हमें बतलाता है कि वह स्वयं शाश्वत परमेश्वर है। परन्तु पद 14 में वह कहता है कि – ''वचन देहधारी हुआ, और हमारे बीच में डेरा किया'' – ''परमेश्वर जो शरीर में प्रकट हुआ'' (1 तीमु. 3:16)। एक ही मनुष्य में परमेश्वर और मनुष्य दोनों! कितना बड़ा रहस्य!

प्रभु यीशु अनन्त परमेश्वर है। उसने स्वयं को नम्र किया और मनुष्य बना! किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह कभी परमेश्वर नहीं था। यह असम्भव है। वह लहू और मांस का सहभागी हुआ (इब्रा. 2:14)। वह वास्तविक मनुष्य बना (गला. 4:4; 1 तीमु. 2:5)। परन्तु वह जो मनुष्य था, साथ-साथ अनन्त परमेश्वर भी था (यशा. 9:6)। जहाँ एक ओर वह चरनी में पड़ा हुआ एक बालक था, वहीं दूसरी ओर वह प्रत्येक मनुष्य को थामने और उसे सम्भालने वाला था। जहाँ एक ओर यात्रा के कारण वह थकित, भूखा और प्यासा होकर सामरी स्त्री से

कुछ जल मांगता है, वहीं दूसरी ओर अपने को पवित्र आत्मा प्रदान करने वाला सर्वशक्तिमान और उस स्त्री का सम्पूर्ण जीवन खोलकर रख देने वाला सर्वज्ञाता के रूप में प्रकट करता है। एक ओर जहाँ वह एक वास्तविक मनुष्य की तरह नाव में सो गया, वहीं दूसरी ओर उसने खड़े होकर आंधी और लहरों को डांटा। उसने अपना नाम लिया और सिपाही पीछे हट कर भूमि पर गिर पड़े, किन्तु उसके तुरन्त बाद उन्होंने उसे बांधा, उसके मुँह पर थूका और ठट्ठों में उड़ाया।

जबकि वह नीकुदेमुस से यहाँ इस धरती पर बातें कर रहा था, वहीं वह स्वर्ग में भी था। उसने वही कहा जो वह जानता था, क्योंकि ''जानने'' शब्द का पूरा अर्थ केवल परमेश्वर ही जानता है। कभी कोई मनुष्य स्वर्ग पर नहीं गया, इस प्रकार कोई भी स्वर्ग की बातें नहीं बता सकता। परन्तु वह मनुष्य का पुत्र स्वर्ग से उतरा था। हाँ, वह अभी भी स्वर्ग में था। इस प्रकार जब वह स्वर्गिक वस्तुओं की बातें करता था जो उसने देखा है, देख रहा है और जिनको वह जानता था, क्योंकि स्वर्ग उसी का है और महिमा भी उसी की है। उसमें होकर परमेश्वर और मनुष्य का मेल हुआ, क्योंकि वह परमेश्वर और मनुष्य दोनों, एक व्यक्ति में था। इसीलिए उसके जन्म के समय स्वर्गदूत यह कह सके – ''पृथ्वी पर उन मनुष्यों में जिनसे वह प्रसन्न है, शान्ति हो'' (लूका 2:14)। वह परमेश्वर और उसकी महिमा को जानता था और वह मनुष्य को भी जानता था।

मनुष्य का स्वभाव

यूहन्ना 2:23-25 में हम मनुष्य के प्रति यीशु का दृष्टिकोण पाते हैं। ये विधर्मी लोग नहीं थे जिन्होंने खुली शत्रुता के रूप में उसे अस्वीकार किया हो। उन्होंने उसे मान्यता प्रदान की, क्योंकि वे उन चिन्हों को देखकर कायल थे कि वही मसीह है। उन्होंने उनके नाम पर विश्वास किया। मात्र इसका एक उथला अध्ययन ही हमें इस निष्कर्ष पर ले जा सकता है कि ये ही वे लोग हैं जिनके विषय में यूहन्ना 1:12 कहता है कि उनको उसने परमेश्वर की सन्तान होने का अधिकार दिया। किन्तु उनके विषय में अध्याय 2 के अन्त में यह कहा गया है- ''परन्तु यीशु ने अपने आपको उनके भरोसे पर नहीं छोड़ा, क्योंकि वह सबको जानता था! और उसे प्रयोजन न था कि मनुष्य के विषय में कोई गवाही दे, क्योंकि वह आप ही जानता था कि मनुष्य के मन में क्या है।''

ये लोग कायल हुए थे, न कि मन-परिवर्तन। उन्होंने उसके नाम पर विश्वास तो कर लिया था, किन्तु उसको ग्रहण नहीं किया था (यूहन्ना 1:12)। उन्होंने उसके चिन्ह देखे थे तथा मन और भावना में कायल थे कि यही मसीह है। उस समय ऐसे लोग बहुत थे, और आज ऐसे

लोगों की संख्या लाखों-करोड़ों में पायी जाती है। वे मसीही सत्य में शंका नहीं करते। उनके मन और उनकी भावनाओं के कारण वह उनको तर्क संगत और उत्कृष्ट जान पड़ता है। और ऐसे लोगों ने ही इसी प्रकार से मसीहियत को स्वीकार किया है। क्योंकि यह तो ठीक वही है जैसा कि एक **स्वाभाविक मनुष्य** चाहता है और इस रीति से वह सच्चाई से और परमेश्वर से उच्च ठहरता है। उसकी आस्था तो यह है कि जो कुछ उसका मन और उसकी भावना कहे, वही ठीक है। यह उस समय कितना भिन्न लगने लगता है जब कि विवेक परमेश्वर के प्रकाश में आ जाता है। तब यह अपने आप को पापी और अपनी खोयी हुई दशा को देखता है। तब वह न्याय करने वाले परमेश्वर के विषय में नहीं सोचता अथवा उसके विषय में जो परमेश्वर ने प्रकट किया है। तब केवल आत्म-परख और स्व-न्याय होता है और परमेश्वर से एक पुकार रह जाती है कि वह इस पापी को स्वीकार कर ले।

स्वाभाविक मनुष्य निश्चित रूप से उन लोगों के लिए 'नये जन्म' की आवश्यकता को मान लेगा जो लोग मूर्ति पूजा करते अथवा उसके लिए पूर्ण रूप से पाप में जीते रहते हैं। परन्तु यह कि प्रत्येक मनुष्य को नये सिरे से जन्म लेना आवश्यक है, यह बात एक स्वाभाविक मनुष्य की समझ में नहीं आ सकती। यहाँ यहूदी, बल्कि फरीसी भी थे जो प्रभु के शुभचिंतक थे और वे उसके नाम पर विश्वास करते थे-हाँ, यहाँ तक कि नीकुदेमसु नामक फरीसी ने भी जो यहूदियों का सरदार और इस्राएल का एक गुरु था, प्रभु यीशु को वह सर्वोच्च सम्मान जो किसी को मिल सकता था, दिया ''तू परमेश्वर की ओर से गुरु होकर आया है, क्योंकि इन चिन्हों को जो तू दिखाता है, यदि परमेश्वर उसके साथ न हो तो नहीं दिखा सकता'' (पद 2)। स्वाभाविक मनुष्य तो यह भी नहीं समझ सकता कि इसको 'नया जन्म' लेना आवश्यक है (पद 7)। परन्तु इसको कहने वाला वह है जो सदा वही करता है जो वह जानता है (पद 11), क्योंकि वह अनन्त परमेश्वर है। यह तथ्य, कि वह यह बात न केवल अपने शत्रुओं के लिए कहता है, बल्कि उनके लिए भी जो उसे स्वीकार करते हैं, क्या हमें इस अनुभव तक नहीं लाते कि मनुष्य किस सीमा तक भटका हुआ है और एक सांसारिक मनुष्य के लिए परमेश्वर की उपस्थिति में आना कितना असंभव है ?

जब तक कोई नये सिरे से न जन्में, वह परमेश्वर के राज्य को नहीं देख सकता

प्रभु यहाँ उसी राज्य के विषय में कह रहा है जो उस समय प्रकट किया गया था। सम्पूर्ण पृथ्वी इसे उस समय देखेंगी जब यह धीरे धीरे महिमा में प्रकट किया जायेगा और आज इस राज्य के मसीही स्वरूप (यदि मैं इस पारिभाषिक शब्द का उपयोग करूं) में एक दूसरी ही

स्थिति व्याप्त है।

परन्तु जब प्रभु यीशु इस पृथ्वी पर आया, तो वह राज्य उसमें आ गया। और केवल उन्हीं लोगों ने जिन्होंने उसे पहचाना, जिन्होंने उसको उसके वास्तविक अर्थात् परमेश्वर के पुत्र के रूप में देखा केवल उन्होंने ही उस राज्य को देखा। केवल वे ही जिन्होंने नये सिरे से जन्म लिया था। क्या कभी हमको यह नहीं खटका कि प्रभु यीशु के अपने भाइयों ने भी उस पर विश्वास नहीं किया ? हाँ, मरकुस 3:21 में यह भी कहता है : 'जब उसके कुटुम्बियों ने यह सुना तो उसे पकड़ने के लिए निकले; क्योंकि वे कहते थे कि इसका चित्त ठिकाने नहीं है।'' क्या वे प्रभु को नहीं जानते थे ? क्या उन्होंने उन दिनों नासरत में रहते हुए उसके क्षण-प्रतिक्षण और दिन-प्रतिदिन के पूर्ण पवित्र जीवन को नहीं देखा होगा ? क्या मरियम तथा यूसुफ ने उनसे, वह सब जो स्वर्गदूत ने उसके जन्म से पूर्व कही थी और जो अद्भुत बातें लूका 2 में लिखी हैं, नहीं बतलायी होंगी ? क्या उन्होंने नहीं सुना होगा कि उनका सहोदर भाई यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला उसके विषय में क्या साक्षी दे रहा था ? क्या उन्होंने उसके आश्चर्य-कर्मों को नहीं देखा ? विशेषकर इस बात को ध्यान में रखकर कि यूहन्ना लिखता है-''हमने उसकी ऐसी महिमा देखी, जैसे पिता के इकलौते की'' (यूह. 1:14)। और यह विचार करते हुए कि किस प्रकार स्वर्ग खुल गया और यह आकाशवाणी हुई, ''तू मेरा प्रिय पुत्र है, तुझसे मैं प्रसन्न हूँ'' (मर. 1:11); और उसके कुटुम्बियों ने कहा कि वह तो पागल हो गया है, और उन्होंने उसे पकड़ना चाहा! प्रभु यीशु के इस वचन के तथ्य का कि ''मैं तुम से सच कहता हूँ कि जब तक कोई नये सिरे से न जन्में वह स्वर्ग के राज्य को नहीं देख सकता'' यह कैसा सुन्दर प्रमाण है!

नये सिरे से जन्म लेना

इसका यह तात्पर्य नहीं जो नीकुदेमुस का था, और न ही वह जो प्राय: मूर्ति पूजा को और उनके पौराणिक कथाओं में पाया जाता है : कि किसी बूढ़े मनुष्य का एक बालक के रूप में पुन:जन्म हो गया है, अथवा वह तरुण हो गया है कि वह पुन: नवयुवक बने। एक नवजात शिशु का वही स्वभाव होता है जो उसके माता-पिता का, उससे तनिक भी बेहतर नहीं। लिखा है कि आदम का पुत्र शेत अपने पापमय पिता के स्वरूप में था (उत्प. 5:3)। अय्यूब ने पहले ही कहा : ''अशुद्ध वस्तु से शुद्ध वस्तु कौन निकाल सकता है? कोई नहीं!'' (अय्यूब 14:4)। और रोमियों 5:11 कहता है कि आदम के समस्त वंशज उसकी आज्ञा न मानने के कारण पापी ठहरे। ''क्योंकि जो शरीर से जन्मा है वह शरीर है, और जो आत्मा से जन्मा है, वह आत्मा है'' (यूह. 3:6)। यहाँ तक कि यदि नीकुदेमुस दस बार भी इस प्रकार से जन्म लेता, जैसा पहले

लिया था पापमय माता-पिता से फिर भी जहाँ तक परमेश्वर के साथ उसके सम्बन्ध का प्रश्न है, उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं आता।

एक मनुष्य का नये सिरे से जन्म लेना पूर्णरूपेण ऊपर से नये ढंग से तथा जीवन (जिन यूनानी शब्दों ''जेन्तथेई एनोथेन'' का प्रयोग यहाँ पर हुआ है, वे तीतुस 3:5 में प्रयुक्त ''पैलिनजेनिसियास'' से भिन्न है; जहाँ नये जन्म के स्नान और पवित्र आत्मा द्वारा हमें नया बनाने की बात करी गई है।) के नये स्रोत से होना चाहिए। पद 5 में प्रभु यीशु बतलाता है कि यह जीवन का स्रोत, है क्या। ''मैं तुमसे सच सच कहता हूँ, जब तक कोई मनुष्य जल और आत्मा से न जन्मे, वह परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता।'' पवित्र शास्त्र में जल परमेश्वर के वचन का प्रतीक है जो पवित्र आत्मा के द्वारा मनुष्य पर लागू होता है। इफिसियों 5:26 में इसे जोर देकर कहा गया है, और इसी प्रकार से यूहन्ना 13:10 तथा यूहन्ना 15:3 में भी।

जिस वस्तु पर जल का प्रयोग होता है उसे वह साफ करता है। पवित्र आत्मा द्वारा प्रयुक्त परमेश्वर का वचन मनुष्य के ध्यान, विचार और उसके कार्य को शुद्ध कर देता है। और उसी समय आत्मा वचन का उपयोग करके उसमें नया जीवन आरंभ कर देता है - एक बिल्कुल भिन्न जीवन जिसमें उसके भौतिक माता-पिता का गुण नहीं होता - परन्तु उसमें उसका गुण होता है जिसने इस जीवन को उत्पन्न किया है। ''जो आत्मा से जन्मा है, वह आत्मा है'' (यूह. 3:6)।

यह तथ्य कि नया जन्म परमेश्वर के वचन के द्वारा होता है, पवित्र शास्त्र में बार-बार प्रमाणित होता है। पौलुस कुरिंथियों को लिखता है कि उसने उन्हें बड़े आनन्द के साथ उत्पन्न किया (1 कुरि. 4:15)। याकूब 1:18 में हम पाते हैं कि ''उसने अपनी ही इच्छा से हमें सत्य के वचन के द्वारा उत्पन्न किया''। और 1 पतरस 1:22-25 में वह लिखता है - ''सो जबकि तुमने...सत्य के मानने से अपने मनों को पवित्र किया है...क्योंकि तुमने नाशमान नहीं, पर अविनाशी बीज से, परमेश्वर के जीवते और सदा ठहरने वाले वचन के द्वारा नया जन्म पाया है...।'' 1 थिस्सलुनीकियों 1:5 में भी हम वचन और पवित्र आत्मा का वर्णन साथ-साथ पाते हैं।

यहाँ प्रभु नया जन्म लेने की आवश्यकता पर बोल रहा है जिससे कि लोग परमेश्वर के राज्य को देख सकें और उसमें प्रवेश हो सकें, क्योंकि वह यहूदियों के एक सरदार नीकुदेमुस से बात कर रहा है। परन्तु जिस ढंग से प्रभु अपने को प्रकट करता है, यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि वह एक आम नियम है, जैसा कि यूहन्ना के लेखों में हम हर कहीं पाते हैं। मनुष्य के पतन से लेकर आगे तक (के लिए) परमेश्वर के साथ एक नये संबंध में प्रवेश करने के लिए नये जन्म की आवश्यकता अनिवार्य है।

अनिवार्य है कि मनुष्य का पुत्र ऊपर चढ़ाया जाये

परन्तु जब पद 12 से आगे प्रभु स्वर्गीय वस्तुओं के विषय में बताना आरंभ करता है, तब और भी इसकी आवश्यकता प्रकट होती है। मनुष्य का पुत्र जो स्वर्ग में है वह उस स्वर्गीय महिमा को जानता है, जहाँ उसका निवास स्थान है, जो स्वयं ''ज्योति है उसमें कुछ भी अंधकार नहीं'' (1 यूह. 1:5)। और यदि मनुष्य उस महिमा में प्रवेश करना चाहते हैं तो सर्वप्रथम उसके पाप-समस्या का समाधान होता है। परमेश्वर जोकि मनुष्य के पाप के कारण अत्याधिक अपमानित हुआ है, पाप के संबंध में उसका संतुष्ट होना आवश्यक है। और मनुष्य को उन बातों से शुद्धता प्राप्त करना आवश्यक है जो उसको उस महिमा में प्रवेश होने के अयोग्य ठहरा सकती हैं। तो मनुष्य अपने उस पाप के कारण उस स्वर्गीय स्थान में, जो स्वयं परमेश्वर का निवास स्थान है कैसे प्रवेश कर सकता है, जबकि उसने अदन के बाग से निकाले जाने के समय आदम के उस पाप की तुलना में हजार गुणा अधिक पाप किये हैं ?

यह कैसे संभव हो सकता था, जब तक कि वह जो कि एक ही देह में परमेश्वर और मनुष्य दोनों है, उस कार्य को पूरा न करता जिसके द्वारा सभी आवश्यक बातें पूरी हो जाती हैं ? ''अवश्य है कि मनुष्य का पुत्र ऊँचे पर चढ़ाया जाये, ताकि जो कोई विश्वास करे उसमें अनन्त जीवन पायें'' (यूह. 3:14-15)।

क्या यह सबसे बड़ी और महान् चीज़ नहीं है जो परमेश्वर हमें दे सकता है ? अरे इससे संबद्ध तो बहुत सी चीजें हैं। हम उसे ''हे अब्बा, हे पिता'' कहकर पुकार सकते हैं, क्योंकि आत्मा आप हमारी आत्मा के साथ मिलकर गवाही देता है कि हम परमेश्वर की सन्तान हैं (रोमि. 8:15, 16)। हम मसीह के संगी वारिस हैं और आगे चलकर हम उसके संग इस जगत का शासन और न्याय करेंगे (रोमि. 8:17; इफि. 1:10, 11:1 कुरि. 6:2, 3 इत्यादि)। 1 यूहन्ना 3:1 हमें इसी स्तर पर ला खड़ा करता है जहाँ प्रभु यीशु है, जिन्हें संसार नहीं जानता। पद 2 हमें बतलाता है कि जब वह प्रकट होगा तो हम भी उसके समान होंगे, क्योंकि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है। 1 यूहन्ना 4:17 कहता है कि जहाँ तक न्याय का संबंध है, हम पृथ्वी पर वैसे ही हैं जैसा कि वह स्वर्ग में है। पद 19 में हम पाते हैं कि हम इसलिए प्रेम करते हैं कि पहले उसने हमसे प्रेम किया। हम संसार पर जय प्राप्त करते हैं (1 यूह. 5:4)। हम शीघ्र ही जान लेते हैं कि पवित्रशास्त्र बहुत-सी बातों का खुलासा करता है।

क्या पिता और उसके पुत्र के साथ हमारी संगति हमारे लिए सबसे बड़ा सौभाग्य नहीं ? यूहन्ना 3 में पाये जाने वाले प्रभु यीशु के वचन अनुसार हम सांसारिक राजा को भी न तो देख सकते थे और न उसमें प्रवेश कर सकते थे। क्योंकि प्रभु यीशु मसीह, जो परमेश्वर का पुत्र, वह

उसके देहदारी रूप में इस पृथ्वी पर उस समय सच्चा, न्यायी और परमेश्वर का भेजा हुआ राजा ही था। हम तो भटके हुए पापी थे जो केवल नरक-वास के भागी, परमेश्वर के शत्रु तथा उसकी दृष्टि में घृणित थे। हम पिता को तथा प्रभु यीशु को जानते हैं (1 यूहन्ना 5:20) - जैसे सृजन किये गये प्राणी उनके सृजनहार को जानते हैं, वैसे अब से हम उनको नहीं जानते किन्तु जैसे 'वे वास्तव में है' - वैसे ही जानते हैं, हमारी संगति पिता तथा उसके पुत्र प्रभु यीशु मसीह के संग है। इस संगति का आनंद केवल स्वर्ग में ही नहीं मिलेगा। नहीं, **बल्कि अभी भी पृथ्वी पर से ही है**, जिसका भेद बाहर से उनके द्वारा नहीं लगाया जा सकता जो शैतान के बंधन में हैं।

जब हम इसका अनुभव करते हैं और इसे अपने जीवन का व्यावहारिक सत्य बना लेते हैं, तो क्या हमारा आनन्द पूरा नहीं होगा ?

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,

एच.एल.एच.

पिता और पुत्र के साथ संगति

9 पिता और पुत्र के साथ संगति

प्रिय मित्रो,

हमने देखा है कि वह प्रत्येक जन जो प्रभु यीशु पर विश्वास करता है, न केवल पापों की क्षमा प्राप्त करता है, बल्कि नये जन्म के द्वारा संपूर्ण नया जीवन प्राप्त करता है। वह परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है (यूह 1:13) और उसके द्वारा वह ईश्वरीय जीवन और ईश्वरीय स्वभाव का सहभागी हो जाता है (2 पत. 1:4)। यही जीवन अपने समृद्ध रूप में अनन्त जीवन कहलाता है, और 1 यूहन्ना 5:20 प्रभु यीशु के विषय कहता है : ''वह सत्य परमेश्वर और अनंत जीवन है।'' स्वयं प्रभु यीशु हमारा जीवन है।

हमारे पास इस सत्य के बेपरिणाम हैं। हमें उस प्यार में अनुग्रह प्राप्त होता है (इफि. 1:6), ''हम उसके प्रिय पुत्र के राज्य में प्रवेश कराये गये हैं'' (कुलु. 1:13)। हम उसमें होकर परमेश्वर के समक्ष हर प्रकार से स्वीकार किये जाने के योग्य ठहरते हैं जिसे परमेश्वर 'प्रिय' कहता है। हम प्रभु यीशु के साथ एक किये गये हैं। संसार हमें नहीं जानता क्योंकि उसने उसे भी नहीं जाना (1 यूह. 3:1)। जैसा अभी वह स्वर्ग में है (1 यूह. 4:17) वैसे ही संसार में हम भी है। हम भी उसके समान होंगे, क्योंकि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है (1 यूह. 3:2)। इसी के साथ-साथ 1 यूह. 4:12. 13 की तुलना यूह. 1:17 से कीजिए। 1 यूहन्ना 5:20 कहता है : ''परमेश्वर का पुत्र आ गया है, और उसने हमें समझ दी है कि हम उस सच को पहचानें।'' वास्तव में इसमें सब कुछ आ जाता है।

सृष्टि के समय परमेश्वर ने आदम को समझ दी थी। इसी से मानव और पशु में भेद किया जाता है। चूँकि यह समझ पार्थिव थी, अत: वह केवल सांसारिक वस्तुओं को ही समझ सकता था। स्वर्गदूत भी परमेश्वर को नहीं समझ सकते यद्यपि सृष्टि में वे मनुष्य से उच्च क्रम के हैं। वे उसके सामर्थी सेवक हैं जो परमेश्वर की इच्छा को पूर्ण करने के लिए सतत चुस्त खड़े रहते हैं, किन्तु वे उन बातों को भी ध्यान से देखने की लालसा रखते हैं जो हम (मनुष्यों) से संबंध रखती हैं (1 पत. 1:12)।

और अब उन भटके हुए पापियों को जो उसके शत्रु थे, किन्तु अब प्रभु यीशु को ग्रहण कर चुके हैं, उनको परमेश्वर ने नये जीवन के रूप में अपने पुत्र को दिया है। **उसी के साथ-साथ उसमें और उसके द्वारा उन्हें परमेश्वर को समझने की समझ भी मिली है।** हम उसकी प्रकट की गयी उस महिमा को देख सकते हैं, जो संसार उसे शीघ्र ही देखने वाला है जब कि पुन: प्रभु यीशु बादलों पर होकर इस धरती पर प्रकट होगा और तब प्रत्येक आँख उसे देखेगी। परन्तु हम

उसे वैसा ही देखेंगे जैसा वह है–न कि केवल वैसा, जैसा कि वह प्रकट होगा। हम तो अभी भी उसके विचारों को समझ सकते हैं। हम उसकी आंतरिक महिमा को देखते हैं, और वह हमारे हृदयों को भर देती हैं। हमारे विचार और हमारी भावनाएँ परमेश्वर के ही समान हैं। वह अपना हृदय हमसे खोलता है, और अपने हृदय की बातों को कहता है, और हम उसकी बातों को समझ सकते हैं और उसकी भावनाओं को बाँट सकते हैं।

पिता और उसके पुत्र यीशु मसीह के साथ संगति

पिता (परमेश्वर) के हृदय में क्या पाया जाता है ? क्या पुत्र और उसके व्यक्तित्व की महिमा और उसके कार्य नहीं ? जबकि पुत्र इस धरती पर था, तो ''पिता की प्रसन्नता इसी में थी कि उसमें सारी परिपूर्णता वास करे'' (कुलु. 1:19)। प्रभु के सार्वजनिक सेवा-काल के आरंभ में (लुका. 3:22) तथा उसके अन्त के लगभग (मत्ती 17:5), पिता ने कहा : ''यह मेरा प्रिय पुत्र है जिससे मैं अति प्रसन्न हूँ।'' और उसके पश्चात् वह गुलगुता का कार्य सम्पन्न होने को था। पिता के लिए यह कैसा कार्य रहा होगा।

''पिता इसलिए मुझसे प्रेम रखता है कि मैं अपना प्राण देता हूँ कि उसे फिर ले लूँ'' (यूह. 10:17)। हां, जो स्वेच्छापूर्वक क्रूस तक चला गया और परमेश्वर के नाम को महिमा देने के लिए तथा उसकी इच्छा पूरी करने के लिए मृत्यु को सह लिया, ''वह जो आप ही हमारे पापों को अपनी देह में लिये हुए क्रूस पर चढ़ गया'' (1 पत. 2:24), जो ''हमारे लिए पाप ठहराया गया'' (2 कुरिं. 5:21), वह जिसने परमेश्वर के दण्ड को उठा लिया और उसका त्याग हुआ था और इन सब में सिद्ध निकला–''मसीह जिसने अपने आप को सनातन आत्मा के द्वारा परमेश्वर के सामने निर्दोष चढ़ाया'' (इब्रा. 9:14), पिता उससे प्रेम करता है।

परमेश्वर – पिता हमे कहता है, ''यह मेरा प्रिय पुत्र है'', और हम प्रत्युत्तर में कहते हैं, ''यह हमारा प्रिय उद्धारकर्त्ता है।'' परमेश्वर-पिता कहता है, ''मेरे प्रति प्रेम के कारण (निर्ग. 21:5) से ही उसने गुलगुता पर सारे दु:खों को सह लिया और उद्धार के कार्य को पूरा किया।'' और हम उत्तर देते हैं – ''मसीह ने हमसे प्रेम किया, और हमारे लिए अपने आपको न्यौछावर कर दिया'' (इफि. 5:2)। और मैं व्यक्तिगत रूप से कहता हूँ, ''परमेश्वर के पुत्र ने मुझसे प्रेम किया और मेरे लिए अपने आप को दे दिया'-(गल. 2:20)।

ठीक वही महिमान्वित व्यक्ति जो परमेश्वर के हृदय में रहता है, मेरे हृदय में भी रहता है। परमेश्वर-पिता हमको अपने पुत्र की महिमा दिखलाता है, और हम परमेश्वर-पिता से वह सब कुछ बतलाते हैं जो हमने पुत्र में प्राप्त किया है। **यही संगति है-समान भावना एवं समान रुचि।** वही व्यक्ति हमारे हृदयों को आनन्द और खुशी से भर देता है।

क्या यही बात पुत्र के साथ भी सत्य नहीं ? उसने परमेश्वर-पिता को हम पर प्रकट किया है। हमने उसे यह कहते हुए सुना है : ''हे अब्बा, हे पिता'' (मरकुस 14:36), और अब हम स्वयं भी कहते हैं, ''हे अब्बा, हे पिता'' (रोम. 8:15)।

क्या यह हमारा सबसे बड़ा सौभाग्य नहीं कि हम परमेश्वर को समझें और उसे जानें! और न केवल उसकी आशीषों और स्वर्गीय वस्तुओं के भागीदार हों, बल्कि स्वयं परमेश्वर के भागीदार हों। इस प्रकार परमेश्वर पिता और परमेश्वर-पुत्र के साथ संगति रखें! इससे उत्कृष्ट और कोई चीज नहीं। यदि हम इसे अपने जीवनों में वास्तविक बनायें तो स्वयं ही इस पृथ्वी पर हमारे हृदय अति प्रसन्न रहेंगे। इसीलिए प्रेरित कहता है–''और ये बातें हम इसलिए लिखते हैं कि हमारा आनन्द पूरा हो जाये'' (1 यूहन्ना 1:4)।

परमेश्वर ज्योति है, उसमें कुछ भी अंधकार नहीं

परमेश्वर-पिता और उसके पुत्र के साथ हमारी यह संगति, वास्तव में परमेश्वर के स्वभाव के अनुरूप होनी चाहिए। हमारे स्वाभाविक, दैहिक एवं सांसारिक स्वभाव के अनुरूप कभी नहीं। परमेश्वर ज्योति है, और उसके संग संगति बनाये रखने के लिए हमें भी ज्योति में रहना होगा। हम जो ''पहले अंधकार थे'' ''अब प्रभु में ज्योति हैं'' (इफि. 5:8)। अब हम एक दूसरे के संग संगति रखते हुए ज्योति में चलते हैं। और परमेश्वर के पुत्र यीशु का लहू हमारे उस मीरास की बुनियाद तथा उसकी वैधता का प्रमाण है।

1 यूहन्ना 1:7 में प्रश्न यह नहीं कि हम कैसे चलते हैं, परन्तु यह कि हम कहाँ चलते हैं। जब हम एक ऐसी चाल की बात करते हैं जो ज्योति के अनुरूप हो, तो ये स्पष्ट है कि वो हमारे व्यावहारिक चाल का प्रश्न है। किन्तु यहाँ तो प्रश्न यह है कि हम कहाँ चल रहे हैं। वह प्रत्येक जन जिसने नया जन्म प्राप्त कर लिया है, तथा जिसने अंधकार के वश से छुटकारा पा लिया है और जो ज्योति में पवित्र लोगों के साथ मीरास का भागीदार हो चुका है (कुलु. 1:12, 13), वह ज्योति में चल रहा है। और प्रमाण स्वरूप मैं अपने स्थान पर बना हुआ हूँ, उसका लहू है जो मुझे मेरे सारे पापों से शुद्ध करता है। एक उदाहरण देखिए : जब तक कि मैं साबुन के पानी से भरी बाल्टी में अपने हाथों से कार्य करता रहता हूँ, मेरे हाथ गंदे नहीं हो सकते। क्योंकि साबुन के पानी की साफ करने की वह शक्ति जिसने पहली बार ही मेरे हाथों को स्वच्छ कर दिया, उसके रहते यह असंभव है कि मेरे हाथ गंदे हों। तो वे जब एक ऐसे द्रव में पड़े हैं, क्योंकर गंदे हो सकते हैं जबकि उस द्रव का गुण ही ऐसा हो कि वह प्रत्येक गंदी वस्तु को स्वच्छ कर दे। उसी प्रकार से लहू की सामर्थ्य भी जोकि ज्योति में कार्यकारी है। इस बात का प्रमाण है कि मेरी संगति उस ज्योति से है।

किन्तु इससे यह तथ्य कि मेरा पुराना स्वभाव अभी भी विद्यमान है, नहीं बदलता। यदि मैं इसका इन्कार करूँ और मानो यह कहूँ कि मुझ में पाप नहीं, तो मैं अपने आपको धोखा देता हूँ और मुझ में सत्य नहीं। और यदि मैं यह कहूँ कि मैंने कभी भी कोई गलत कार्य नहीं किया, अर्थात् कभी भी कोई पाप नहीं किया है, तो मैं परमेश्वर को झूठा ठहराता हूँ क्योंकि परमेश्वर ने ही कहा है : ''सब ने पाप किया है।''

1 यूहन्ना 1:10 यह नहीं कहता, ''यदि हम कहें कि हम पाप नहीं करते'' बल्कि भूतकाल में यह कहता है, ''....पाप नहीं किया है।'' पवित्रशास्त्र कभी भी ऐसी कल्पना नहीं करता कि एक विश्वासी के लिए पाप करना आवश्यक है। हाँ, हमारे पास एक नवीन स्वभाव होता है जो पाप नहीं कर सकता और हमारे भीतर एक ईश्वरीय सामर्थ्य रहती है, अर्थात् पवित्र आत्मा जो हमें हमारे नये जीवन के अनुसार चलने के योग्य बना देता है। **हम ज्योति में चलने लग जाते हैं जहाँ हम उन चीजों को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं जो ज्योति से मेल नहीं खाती है।**

बड़े ही खेद के साथ हम सभी को यह स्वीकार करना चाहिए कि, ''हम सब बहुत बार चूक जाते हैं'' (याकूब 3:2)। परन्तु यह कोई बहाना नहीं है। मैं आशा करता हूँ कि अब हम इस मुद्दे पर अपने अगले पत्र में विचार करेंगे जिससे कि यह पत्र अधिक लम्बा न हो जाये।

शुभकामनाओं के साथ,

एच.एल.एच.

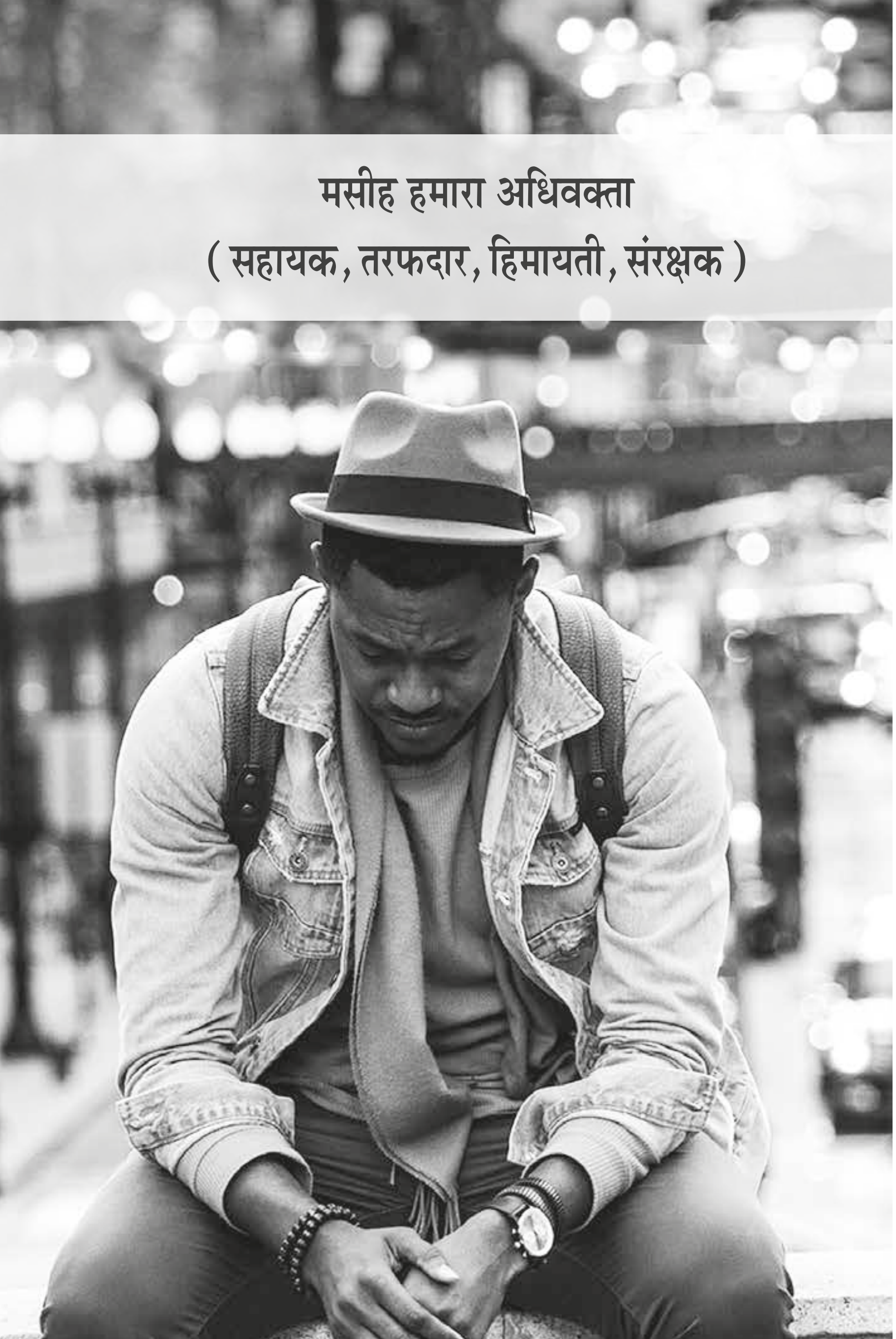

10

मसीह हमारा अधिवक्ता
(सहायक, तरफदार, हिमायती, संरक्षक)

प्रिय मित्रो,

जहाँ पर मैंने अपना पिछला पत्र छोड़ा था, वहाँ से अब मैं पुन: आगे बढ़ता हूँ और इस विषय पर आता हूँ।

यदि एक विश्वासी पाप करता है

यदि हम एक विश्वासी होते हुए भी पाप करते हैं तो क्या होना है ? क्या इसमें परमेश्वर की सन्तान होने का हमारा अधिकार बदल सकता है ? और तब फिर क्या हम परमेश्वर की उपस्थिति से हटा दिये जायेंगे ? इसका उत्तर हम इब्रानियों 9 तथा 10 अध्याय में पाते हैं। मसीह ने एक शाश्वत छुटकारे की स्थापना की है। ''क्योंकि उसने एक ही चढ़ावे के द्वारा उन्हें जो पवित्र किये जाते हैं, सर्वदा के लिए सिद्ध कर दिया है'' (इब्रा. 10:14)। परमेश्वर की सृष्टि के रूप में हमारा संबंध सदाकाल के लिए ठीक हो चुका है। अब हम उस संबंध में लाये गये हैं जो एक पिता का उसकी सन्तान के साथ होता है। अब यह सम्बन्ध कभी नहीं बदलेगा।

परन्तु तब क्या हमारा वह पिता अपने बच्चों के पाप की अनदेखी करता है ? नहीं, हमारा पिता वह परमेश्वर है जो ज्योति है और उसमें कुछ भी अंधकार नहीं। वह इतना पवित्र है कि पाप को देख ही नहीं सकता। जो उसके निकट आते हैं उनके लिए वह पवित्र माना जाना चाहिए। वह अविश्वासियों, अर्थात् ईश-निन्दक संसार के पापों को तो सहन कर सकता है-किन्तु वह अपनी संतान के किसी भी एक पाप को सहन नहीं कर सकता। भला वह पवित्र, कैसे पाप अथवा पाप से अशुद्ध व्यक्ति के साथ संगति रख सकता है ? इसलिए प्रत्येक पापमय विचार, पापमय अथवा निकम्मे वचन और प्रत्येक पापमय स्वच्छंद कार्य के द्वारा तुरंत पिता तथा उसके पुत्र से हमारी संगति टूट जाती है। और यह संगति तब तक कायम नहीं होती, जब तक कि परमेश्वर के तरीके से पाप दूर नहीं कर दिया जाता। ''यदि हम अपने पापों को मान लें, तो वह हमारे पापों को क्षमा करने और हमें सब अधर्म से शुद्ध करने में विश्वास योग्य और धर्मी है'' (1 यूह. 1:9)। केवल पश्चाताप एवं आत्म-परख के द्वारा ही हम शुद्ध हो सकते हैं।

संगति को पुनः स्थापित करने का एक-मात्र उपाय : आत्मा-परख

यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे हम सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र अर्थात् 'नया नियम' तथा 'पुराना नियम', दोनों में पाते हैं। तो आइए कुछ विशिष्ट उदाहरणों को हम 'पुराना नियम' से देखें।

लैव्यव्यवस्था 4 तथा 5 अध्यायों तथा थोड़ा-थोड़ा 6 तथा 7 अध्यायों में हम ऐसे इस्राएली के लिए कुछ निर्देश पाते हैं जिसने कि पाप किया हो। **यहाँ पर मन फिराने वाले किसी पापी का प्रश्न नहीं है,** यद्यपि एक सुसमाचार-प्रचारक इन अध्यायों को लेकर भली भांति सुसमाचार के सिद्धान्त को प्रस्तुत कर सकता है। इन अध्यायों में इस्राएल एक ऐसी प्रजा दृष्टिगोचर होती है जो प्रायश्चित में उस महान् दिवस पर बलि के आधार पर ही परमेश्वर के पास जा सकती थी (लैव्य. 16 अध्याय), और यदि परमेश्वर की उपस्थिति उसके मध्य थी तो वह केवल उनके समय-समय पर चढ़ायी जाने वाली होम-बलि के आधार पर थी (निर्ग. 29:38-46)। और उस पर भी जब वे परमेश्वर की उपस्थिति में उसकी प्रजा के रूप में आते और सचेत होकर विचारते कि "उस प्यार में उन पर कैसा अनुग्रह हुआ" (इफि. 1:6 लैव्य. 1 तथा 7:8) कि अब उन्होंने जंगल में भटकते हुए अपने मन की वस्तु प्राप्त कर ली (लैव्य 2 में अन्न बलि): और अब वे उसमें भाग लेकर परमेश्वर की संगति कर सकते थे (लैव्यव्यवस्था 3 और 7:11-34 में धन्यवाद की मेलबलि): तो अब प्रतिदिन की अशुद्धता के प्रश्न का समाधान इन्हीं से किया जाना था।

लैव्यव्यवस्था 5:1-4 सर्वप्रथम हमारे दैनिक जीवन में होने वाली मुख्य तीन प्रकार की अशुद्धता की सूची प्रस्तुत करता है। पद 1 यदि कोई बुरे के विरुद्ध अथवा भले की ओर से साक्षी न दे। बताने में किसी बात को छोड़ा जाना भी पाप हुआ करता था। पद 2 ऐसी अशुद्धता को बतलाता है जो बाहर से आती है-इस प्रकार से यहाँ उन परिणामों को बतलाया गया है जो व्यावहारिक रूप से इस संसार से अलग न होने के कारण मिलते हैं। पद 4 हमारे गंभीर और संयमी न होने के परिणाम के विषय बतलाता है-अर्थात् वह अशुद्धता जो हमारे हृदय से उत्पन्न होती है। पद 15 तथा उसके आगे यह बतलाया गया है कि यदि कोई परमेश्वर की रखी हुई वस्तु में से कुछ ले ले तो वह अशुद्ध ठहरेगा। और अध्याय 6:1-7 किसी की रखी हुई धरोहर के साथ विश्वासघात करके अशुद्ध होने का वर्णन करता है।

यदि कोई इस्राएली पाप करता था तो वह कैसे शुद्ध होता था ? उसका केवल एक उपाय था, और उसका वर्णन अध्याय 5:5, 6 में पाया जाता है : "और जब वह इन बातों में से किसी भी बात में दोषी हो, तब जिस विषय में उसने पाप किया हो, वह उसको मान ले: और वह

यहोवा के सामने अपना दोषबलि ले आए...।" इसमें और भी चीज़ें जोड़ी जा सकती हैं, जैसे-चाहे वह यहोवा की वस्तु में से ली गई हो या अपने भाई की वस्तु में से (5:16, 6:5)। **किन्तु पहली बुनियादी शर्त यह थी कि पाप का अंगीकार किया जाए तथा दोष बलि चढ़ाई जाए।**

आत्म-परख अपने पापों का तथा अपनी असफलताओं का अंगीकार....प्रत्येक प्रकार के पाप क्षमा तथा पुनःस्थापना के लिए आवश्यक शर्त है (उदाहरणार्थ, 1 कुरि. 11:31 तथा यूह. 1:9)। परमेश्वर हमें एक सच्ची आत्म-परख तक लाना चाहता है; जिसमें वह हमसे चाहता है कि न केवल हम अपने किये गये कार्यों को परखें परन्तु हम अपनी दशा को परखें, जैसा कि दाऊद ने भजन 51:5-7 में किया। अत: वह हमारी आँखों को क्रूस की ओर फेरता है कि हम यह सीख सकें कि पाप क्या है। **ऐसा नहीं कि मसीह का लहू हम पर पुनः लागू हो। यह तो एक बार सर्वदा के लिए हो चुका है।** परन्तु हमें पाप की भयंकरता को यहाँ तक कि जो हमने केवल एक पाप किया-उसको यह देखकर कि प्रभु यीशु को हमारे बदले कैसी मृत्यु सहनी पड़ी, पहचानना चाहिए (दोषबलि)। तब लैव्यव्यवस्था 1-7 अध्याय में हम स्वयं क्रूस को तो नहीं पाते बल्कि क्रूस की ओर फिरकर देखते हैं। स्वयं-क्रूस जो परमेश्वर के साथ हमारी निकटता का आधार है, वह लैव्यव्यवस्था 16 तथा निर्गमन 29 अध्यायों में पाया जाता है।

हाँ, केवल गुलगुता पर प्रभु यीशु को हमारे लिए दु:ख उठाते देखकर ही हम यह जान सकते हैं कि पाप कितनी भयंकर चीज है। उसे वहाँ परमेश्वर द्वारा त्यागा जाना था, परमेश्वर के दण्ड को सहना था, मरना था, क्योंकि वह "आप ही हमारे पापों के लिए क्रूस पर चढ़ गया" (1 पतरस. 2:24)। इस प्रकार से हम अपने सही आत्म-परख पर पहुंचते हैं और अपने किए हुए पर खेदित होते हैं। **आइए, हम कभी भी पाप को हल्की रीति से न लें।** और हम कभी भी न भूलें कि पापांगीकार ही संगति के पुनःस्थापना का एक मात्र रास्ता है-परमेश्वर के सामने पापांगीकार तथा उन मनुष्यों के सामने पापांगीकार जो हमारे कार्य से प्रभावित हुए हैं।

अज्ञात पाप

परन्तु अब हम एक बड़ी कठिनाई में फँसते हैं। प्राय: हम ऐसे भी पाप करते हैं जिनके प्रति हम अनजान रहते हैं, और यहाँ तक कि कभी-कभी तो हम यह समझते हैं कि हम अच्छा कार्य कर रहे हैं। **परन्तु अज्ञानता हमें निर्दोष नहीं ठहरा सकती।** "और यदि कोई ऐसा कार्य करें कि उन कार्यों में से जिन्हें यहोवा ने मना किया है, किसी काम को करें, तो चाहे वह उसके अनजाने में हुआ हो, तो

भी वह दोषी ठहरेगा और उसको अपने अधर्म का भार उठाना पड़ेगा'' (लैव्य 5:17)। इसलिए भजन संहिता 19:12 में दाउद प्रार्थना करता है : ''मेरे गुप्त पापों से तू मुझे पवित्र कर।''

यदि हमें इन पापों का अंगीकार करना है और परमेश्वर की संगति में पुन: स्थापित होना है, तो सर्वप्रथम हमें अपने उन पापों को जानना होगा। इसीलिए लैव्यव्यवस्था के इन अध्यायों में बार-बार यह कहा जाता है : ''यदि वह अपने उस पाप को जिसे उसने किया हो जान ले...।'' परन्तु यह कौन करे ? हमें हमारे उन विचारों, वचनों और कार्य के विषय कौन चिताएं जो कि दूसरा कोई जानता ही नहीं ? और उस समय हमें कौन कायल करें, जबकि हम अपने को सही मान बैठते हैं ? इसमें भी परमेश्वर के प्रेम ने हमारे लिए उपाय कर रखा है। ''हे मेरे बालकों मैं ये बातें तुम्हें इसलिए लिखता हूँ कि तुम पाप न करो; और यदि कोई पाप करे तो पिता के पास हमारा एक सहायक है, अर्थात् धार्मिक यीशु मसीह'' (1 यूह. 2:1)। काश, हम इस पद को भली भांति पढ़े और इस पर मनन और विचार करें।

मसीह हमारा संरक्षक

यूनानी शब्द ''पैराक्लीटॉस'' जिसका यहाँ अनुवाद ''संरक्षक'' हुआ है, केवल यूहन्ना 14 तथा 16 में और इस अनुच्छेद में हुआ है। यूहन्ना 14 तथा 16 में यह शब्द पवित्रआत्मा की ओर संकेत करता है और जिसका अनुवाद यहाँ ''सहायक'' के रूप में किया गया है। जे.एन. डर्बी के अनुवाद का फुट नोट कहता है कि इस शब्द का अर्थ है, ''वह व्यक्ति जो किसी दूसरे के हित को आगे बढ़ाये और उसकी सहायता करे।'' कुछ लोग 1 यूहन्ना 2 में इसी शब्द का अनुवाद ''अधिवक्ता'' अथवा ''प्रतिवक्ता'' के रूप में करते हैं।

अब प्रभु यीशु इस सेवा को हमारे लिए स्वर्ग में करता है। जहाँ तक परमेश्वर का संबंध है, वह इसे परमेश्वर के समक्ष नहीं रखता, क्योंकि हमारा मामला तो क्रूस पर पूरी तौर से रफा-दफा हो चुका; बल्कि इसे वह पिता के सामने रखता है।

पिछले पत्र में हमने देखा है कि प्रभु यीशु हमारा महायाजक है जो कि इस पृथ्वी पर हमारी निर्बलताओं, और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर परमेश्वर से हमारे लिए विनती करता है। यहाँ हम पाते हैं कि दैनिक जीवन में हमारे किये जाने वाले पापों के दृष्टिकोण से प्रभु यीशु क्या है। जब हम पाप करते हैं तब पिता के समक्ष वह हमारा अधिवक्ता और हमारा संरक्षक है। वह हमारा अधिवक्ता केवल तभी नहीं होता जब हम अपना पापागींकार करके उससे पश्चाताप करते हैं। नहीं, जिस क्षण मैं पाप करता हूँ, स्वर्ग में वह मेरा बचाने वाला जो मुझे और मेरे हित को पिता के समक्ष प्रस्तुत करता है। और जिसे हम अपना संरक्षक कहते हैं। वह है कौन ? वह

है धर्मी यीशु मसीह। एक तरफ जहाँ वह धार्मिकता में पिता के बराबर धर्मी है, वहीं दूसरी तरफ वह मेरी धार्मिकता है (1 कुरि. 1:30)। किन्तु यही नहीं! बल्कि उसने अपने कार्यो को इस सिद्धता के साथ पूर्ण किया है कि न केवल वह हमारे पापों का प्रायश्चित है, बल्कि वह समस्त संसार का भी प्रायश्चित है। इस प्रकार से वह अपने व्यक्तित्व और अपने कार्य दोनों में ही वह अपने पिता को पूर्णरूप से ग्रहण योग्य है-इससे तनिक भी कम नहीं, ताकि जब मैं पाप किया होता हूँ तो वह मेरा संरक्षक होता है।

किन्तु पूर्ववर्ती हमने यह देखा है कि पापों की क्षमा केवल पश्चाताप के पश्चात् ही है। अत: हमारे संरक्षक के रूप में प्रभु यीशु की सेवकाई का दूसरा भाग यह है कि वह स्वयं हममें होकर हमें हमारे पापों से पश्चाताप् तक ले आता है।

पैर धोना

जिस रात प्रभु बंदी बनाया जाने को था उसने एक प्रतीकात्मक रूप में इस सेवकाई को आरम्भ किया। वह तो अपने भोज की विधि को आरंभ करने जा रहा था तो उस मुक्तिदाता के संग-उसकी देह के सदस्यों की संगति का एक प्रतीक था (1 कुरि. 10:16, 17) कि वह हमारे लिए मरा। किन्तु व्यावहारिक रूप से अशुद्ध हुए शिष्यों तथा उस प्रभु के मध्य जो स्पष्टतया पाप का नाश करने के लिए मरा, कैसे संगति हो सकती थी। इसका केवल यही अर्थ हो सकता था कि अशुद्ध हुए लोग दण्ड के भागी होते (1 कुरि. 11:26, 32)।

और इस प्रकार उसको पूरी जानकारी थी कि वह कौन था, किन्तु उसका प्रेम इस सीमा तक बढ़ गया और अन्त में चरम सीमा तक कि प्रभु ने दास का स्थान ले लिया और उनके पैर धोए। और परमेश्वर ने पतरस की नासमझ का (क्योंकि वह नहीं समझता था कि जो कुछ प्रभु करता है वह सदा भला करता है और हमें सदैव उसके अधीन होना है, यहाँ तक कि जब हम न समझते हों तो भी) उपयोग करके, पैर धोने के अर्थ को हम पर स्पष्ट किया। शिष्य तो साफ थे क्योंकि वे पूर्णरूप से स्नान (नये जन्म का स्नान) कराये जा चुके थे। किन्तु यदि वे चाहते थे कि उसके साथ उनका पूरा पूरा भाग हो कि वे व्यावहारिक रूप से, पूर्णरूप से उसकी संगति का आनन्द पायें, तो यह आवश्यकता था कि वे अपने दैनिक जीवन में पाये जाने वाली अशुद्धताओं से साफ किए जाते (यूहन्ना 13:8-11)।

पतरस का इन्कार

सुसमाचार हमें बताता है कि वास्तव में प्रभु किस प्रकार यह सेवकाई हमारे तक पहुँचाता है। हम इसे पतरस की कहानी में भी पाते हैं। पतरस प्रभु के साथ अपनी व्यावहारिक संगति खो

चुका था। कोई भारी घटना उसके संग न घटी थी, क्योंकि वह स्वयं अपने विषय में नहीं जानता था, और न तो किसी ने उसे पूर्व चेतावनी दी थी। परन्तु जब प्रभु ने कहा कि सब के सब उसके कारण ठोकर खाएंगे तो यह स्पष्ट हो गया कि वह पतरस अपने को कुछ समझता था। हाँ, वह इस बात का कायल था कि उसका प्रेम और उसकी विश्वासयोग्यता किसी भी अन्य शिष्य से बढ़कर थी। ''यदि सब तेरे विषय में ठोकर खाएं तो खाएं परन्तु मैं कभी भी ठोकर न खाऊँगा'' (मत्ती 26:33)। यदि प्रभु के साथ पतरस की संगति सचमुच रही होती, तो वह यह बात कभी न कह पाता, क्योंकि वहाँ शरीर और अहंकार का कोई भी स्थान नहीं।

प्रभु ने पतरस की इन बातों का उपयोग उसे चेतावनी देने के लिए किया, और इसलिए भी कि वह जान ले कि प्रभु को सब कुछ ज्ञात है। पतरस इसे अवश्य स्मरण करेगा जब वह प्रभु का इन्कार कर चुकेगा। तब इस विचार से पतरस प्रोत्साहित हो सकता है कि यद्यपि प्रभु यह जानता था फिर भी उसने उसे नहीं त्यागा, और न ही अब वह ऐसा करेगा।

कैसी भलाई और कैसा अनुग्रह! कैसा प्रेम! कैसी देखभाल! इसके पूर्व कि पतरस पाप करता, प्रभु उसके लिए प्रार्थना कर रहा था। इसलिए नहीं कि शैतान उसकी परीक्षा करे-नहीं, पतरस को इस पतन की आवश्यका थी कि वह अपने आप को समझ सके। प्रभु के कोमल, दयापूर्ण शब्द इस लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहे थे, और यहाँ तक कि प्रभु के मुख से निकले इस सीधे वक्तव्य का भी कोई परिणाम न निकला। इसलिए प्रभु ने यह प्रार्थना नहीं की कि पतरस परीक्षा में न पड़े, बल्कि यह कि उसका विश्वास न डिगने पाए। और इसलिए कि गिरने के बाद पतरस इतना हतोत्साहित न हो जाए, प्रभु ने उसको सम्भालने के तुरंत बाद उसको एक महान् आज्ञा दी।

परन्तु पतरस अपने आप में इतना भरा हुआ था कि उसके विवेक तक कुछ भी नहीं पहुँचा। निःसन्देह, वह स्वयं व्यक्तिगत रूप से प्रभु यीशु के इन शब्दों से घायल एवं दुखी था कि, ''क्या तुम मेरे साथ एक घड़ी भी न जाग सके'' (मत्ती. 26:40) ? इस पर फिर भी शिष्यों ने उसे अपने आपको जांचने को न कहा और परिणाम स्वरूप वह भी प्रभु को शत्रुओं के हाथ में अकेला छोड़ कर भाग गया। जब वह उसे कोसने और शपथ खा कर कहने लगा कि, ''मैं इस मनुष्य को नहीं जानता''-तो यह वही पतरस था जिसने कहा था, ''तू जीवते परमेश्वर का पुत्र मसीह है''-और उस समय भी पतरस न फिरा। ओह, मानव हृदय कितना पतित है!

किन्तु ओह, क्या ही अद्‌भुत प्रेम उस क्षण में भी जब प्यादे यीशु को कोड़े मार रहे थे, धक्का दे रहे थे, उसके मुँह पर थूक रहे थे (मत्ती. 26:67), प्रभु ने मुड़ कर पतरस की ओर

देखा। उस क्षण प्रभु की दृष्टि और मुर्गे की बांग द्वारा स्मरण आए प्रभु के वचन के मेल ने पतरस की आँखें खोल दीं। ''और वह बाहर निकलकर फूट-फूटकर रोने लगा।''

पुनः स्थापना

किन्तु इसके उपरान्त भी प्रभु की सेवा का अन्त नहीं हुआ। अपने जी उठने के पश्चात् जो प्रथम कार्य प्रभु ने किया वह यह कि उसने एक संदेश भेजा जो विशेष रूप से पतरस के लिए था (मरकुस 16:7), और उसके पश्चात् उसने उसके साथ एक विशेष भेंट की (लूका 24:34)। वहाँ क्या बात हुई यह पवित्रशास्त्र हमें नहीं बतलाता। प्रभु प्रत्येक विशिष्ट जन के लिए कुछ विशेष बातें रखता है, और जिसके लिए यह वचन होता है उससे अकेले में कहा जाता है। परन्तु इसके पश्चात् हम पाते हैं कि यह भेंट पतरस के लिए बड़ी ही कष्टदायक तथा बड़ी ही आशीषमय रही! इस भेंट का वर्णन यूहन्ना 21 अध्याय में किया गया है।

क्या हम होते तो यह नहीं कह देते कि पतरस के इस खुल्लमखुल्ले अपमान की कोई आवश्यकता नहीं थी ? जब वास्तव में हम इस पर विचार करते हैं तो क्या हम नहीं सोचते कि यह कुछ हद तक प्रेम रहित कार्य था ? पतरस तो स्वयं आपे में आ जाता, क्यों नहीं आता ? वह फूट-फूटकर रोया था, क्या नहीं रोया था ?

परन्तु वह जिस में मानव हृदय के पूर्ण ज्ञान के साथ-साथ अपनों के लिए सिद्ध प्रेम भी पाया जाता है। और जो इसे संपूर्ण बुद्धि में प्रकट कर दिखाता है, वह जानता था कि वास्तव में पतरस के लिए सर्वोत्तम क्या था। और जब पतरस वास्तव में आत्म-परख के बिन्दु पर पहुँचा और न केवल अपने कार्यों के, बल्कि अपने अहम् के - तब उसने यह पहचाना कि परमेश्वर की सर्वज्ञानता को उसके भीतर प्रभु के प्रति पाये जाने वाले प्रेम को खोजना पड़ा - तब प्रभु ने उसे पूर्णतया अपने पूर्व सम्बन्ध में पुनः स्थापित कर दिया और आज्ञा दी कि वह उसकी भेड़ों और मेम्नों की चरवाही करे।

यह है हमारे प्रभु की सेवा-पिता-परमेश्वर के संग संरक्षक के रूप में।

यदि आज वह हमारे पास संरक्षक के रूप में न होता तो आज हम कहाँ होते ? प्रत्येक पापमय विचार, प्रत्येक व्यर्थ शब्द, प्रत्येक निरंकुश कार्य हमारी इस संगति को तोड़ता है। और यह संगति तब तक नहीं पुनः स्थापित हो सकती, जब तक कि हम अपनी की हुई बुराई का पश्चात् न करें और अपने स्वयं को न जाचें।

इसके पूर्व कि मैं पाप करूँ हमारा वह संरक्षक मेरे लिए प्रार्थना करता है ताकि मेरा विश्वास न डिगने पाए। इसके पूर्व कि मैं एक भी पाप करूं, वह मुझसे अपने वचन के अनुसार बातचीत

करता है, ताकि मैं आत्म-परख तक लाया जाऊं। **वह ठीक समय पर मेरी तरफ दृष्टि करता है और भाईयों, पुस्तकों तथा परिस्थितियों को भेजता है - हाँ, आवश्यकता पड़ने पर मुर्गे को भी - ताकि मैं उसके वचन का स्मरण कर सकूँ।**

वह मुझे आत्म-परख तथा पश्चाताप् तक ले आता है, ताकि पिता और पुत्र के साथ मेरी संगति पुन:स्थापित हो सके। वह पिता के सामने मेरा संरक्षक तथा मेरा बचाने वाला (अधिवक्ता) है। वह तब तक चैन नहीं लेता जब तक कि मैं पूर्णतया फिर न जाऊँ और मेरा पूर्ण पुन:स्थापन न हो जाए। यहाँ तक कि अभी भी जब तक कि वह महिमा में है वह मेरी सहायता करता है और मेरे पैर धोता है, ताकि मैं उसका सहभागी हो सकूँ और इस पृथ्वी पर मेरा आनन्द पूरा हो जाए।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ आपका मित्र,

एच.एल.एच.

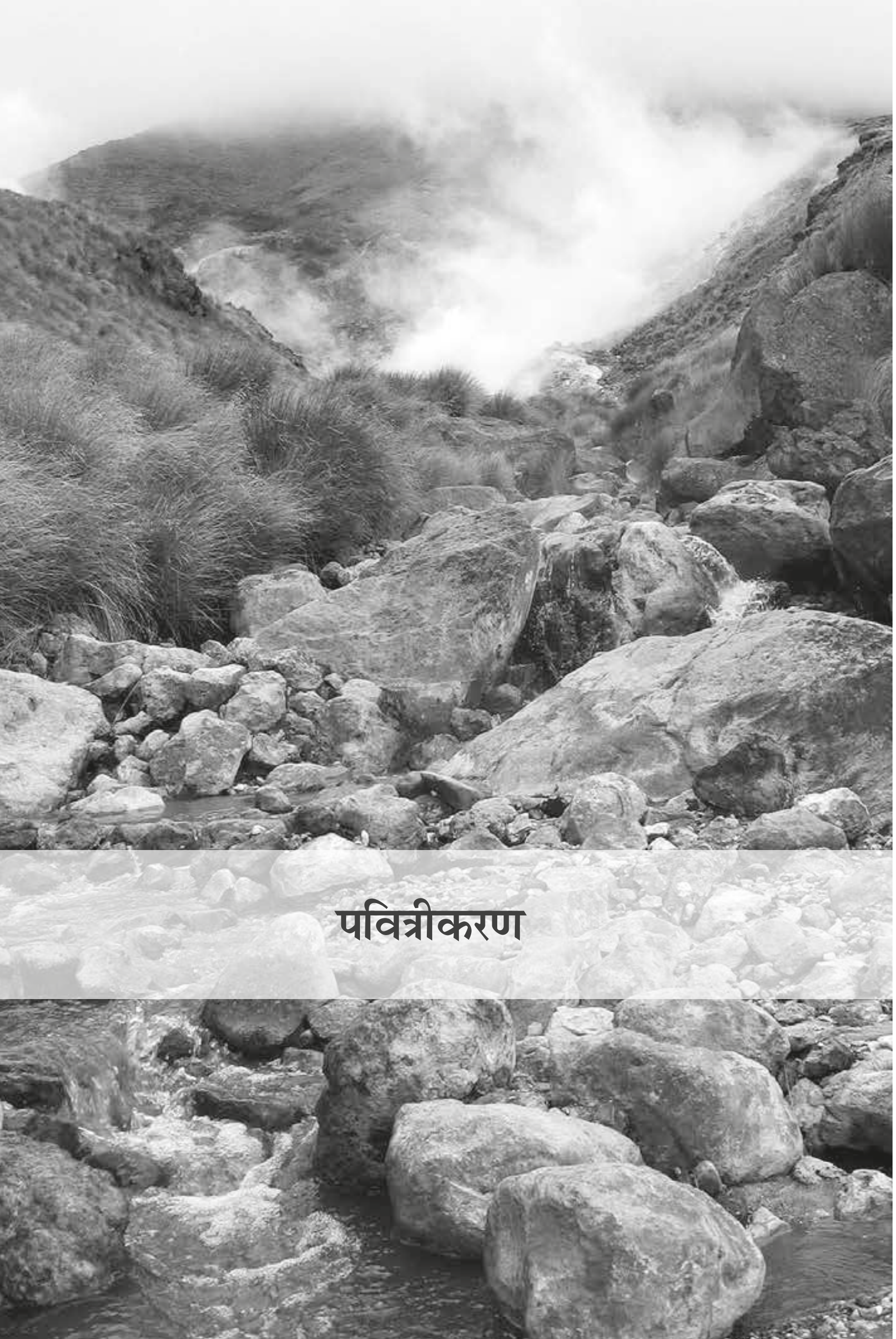

11 पवित्रीकरण

प्रिय मित्र,

अब मैं आपसे बड़ी खुशी के साथ पवित्रीकरण के विषय में बोलूँगा। किन्तु इससे पूर्व कि हम इस विषय पर वार्ता करें, सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि हम इस आश्य को परमेश्वर के वचन से जाँचें। बोलचाल की भाषा में एक सन्त वह व्यक्ति है जिसमें न तो पाप हो और न कोई कमी, या कम से कम कोई ज्ञात पाप अथवा कमजोरी न हो। इस कारण वे विश्वासी जो इस प्रकार की तथाकथित पवित्रता की शिक्षा के कारण भटक जाते हैं, कभी-कभी इस बात का दावा करते हैं कि उन्होंने पवित्रीकरण के क्षेत्र में वास्तविक संगति कर ली है!! क्योंकि वह किसी ज्ञात पाप में नहीं गिरे हैं।

जहाँ तक इस पिछले विचार का सम्बन्ध है, (1 कुरि. 4:4) में पौलुस कहता है कि उसका मन किसी बात में उसे दोषी नहीं ठहराता था, परन्तु इससे वह निर्दोष नहीं ठहरता और भजन 19:12 में दाऊद प्रार्थना करता है कि वह अपने गुप्त पापों से शुद्ध किया जाये। और देखें 1 युहन्ना 3:20 तथा लैव्यव्यवस्था 5 अध्याय। जब प्रभु आएगा तो ''वह अंधकार में छिपी बातें ज्योति में दिखाएगा और मनों की सलाहों को प्रकट करेगा! तब परमेश्वर की ओर से हर एक की प्रशंसा होगी'' (1 कुरि. 4:5)। यदि हम अपने में और अधिक पाप नहीं देखते, तो यह इस बात का कतई प्रमाण नहीं है कि वास्तव में मुझ में अब कोई कमी नहीं। परन्तु ऐसा कौन है जो परमेश्वर की ज्योति में उसके वचन द्वारा जाँचे जाने पर अपने भीतर अनेकानेक पाप नहीं देखता ?

परन्तु इसके अतिरिक्त पवित्र शास्त्र हमें दिखाता है कि शुद्धता और पवित्रता एक ही चीज नहीं है। निर्गमन 28:38 में हम पवित्र वस्तुओं के दोष के विषय में, 1 इतिहास 23:28 में सभी वस्तुओं के शुद्ध किये जाने के विषय में और इफिसियों 1:4 तथा कुलुस्सियों 1:22 में अपने को पवित्र और निर्दोष रखने में पढ़ते हैं। इस प्रकार पवित्रता तथा शुद्धता में पूर्णत: स्पष्ट भेद है।

पवित्रीकरण क्या है ?

यदि हम पवित्र शास्त्र में उन अनेक स्थलों का अनुसरण (अवलोकन) करें जो ''पवित्र'' तथा ''पवित्रीकरण'' के विषय में कहते हैं, तो मेरा विश्वास है कि यह स्पष्ट हो जाएगा कि पवित्रीकरण का अर्थ अलगाव है। यदि हम इसे अपने पर लागू करें तो इसका अर्थ उन चीजों से अलग होना है जिनसे हम पहले बंधे हुए थे कि उनसे छूट कर परमेश्वर के लिए पवित्र ठहरें। इसका अर्थ यह भी है कि हमें परमेश्वर के संग अपने इस सम्बन्ध तथा उसके प्रति

समर्पण के गुण को धारण करने के लिए स्वेच्छापूर्वक तैयार रहना चाहिए। उदाहरणार्थ, देखें, गिनती 6:1-11।

न तो कोई हमारे पास पवित्रता का मानदण्ड है। ''यहोवा के तुल्य कोई पवित्र नहीं, क्योंकि तुझे छोड़ और कोई है ही नहीं'' (1 शमू. 2:2)। ''क्योंकि केवल तू ही पवित्र है'' (प्रकाशितवाक्य 15:4)। ''पवित्र बनो, क्योंकि मैं पवित्र हूँ'' (1 पतरस 1:16)। पवित्रता की योग्यता तो स्वयं परमेश्वर ही एक मात्र है। जो कोई अपने को, स्वयं अपने से नापता है वह मूर्ख है, जैसा कि पवित्रशास्त्र कहता है : ''और अपने आप को आपस में नाप-तौलकर एक दूसरे से मिलान करके मूर्ख ठहरते हैं'' (2 कुरि. 10:12)। यह तो स्पष्ट है कि केवल परमेश्वर ही निर्णय कर सकता है कि ईश्वरीय योग्यता से हम अभी कितने दूर हैं।

यूहन्ना 17:17 में प्रभु यीशु प्रार्थना करता है : ''सत्य के द्वारा उन्हें पवित्र कर: तेरा वचन सत्य है।'' सत्य यह है कि जो परमेश्वर ने अपने विषय में प्रकट किया है और परिणामस्वरूप यह कि - हमारा उसके साथ संबंध क्या है और क्या-क्या होना चाहिए? इसीलिए प्रभु यीशु ने अपने विषय कहा कि सत्य वही है (यूहन्ना 14:6)। उसने अपने को परमेश्वर घोषित किया, क्या नहीं ? (यूह. 1:18) और उसी प्रकार से परमेश्वर का वचन भी, जिसमें उसने अपने आप को प्रकट किया है, सत्य है।

सत्य के द्वारा-जिसके द्वारा परमेश्वर ने अपने आप को तथा मनुष्य पर अपने अधिकार को प्रकट किया - एक व्यक्ति उन सब वस्तुओं से अलग हो जाता है कि वह परमेश्वर का हो जाए जिनसे पहले वह बंधा हुआ था।

पुराने नियम में अभी तक हम परमेश्वर का पूर्ण प्रकाशन नहीं पाते। वहाँ उसने अपने को यहोवा कहकर प्रकट किया, जिसका अपनी प्रजा के लोगों के मध्य एक पार्थिव मन्दिर था, जहाँ पर उसने निवास करने की इच्छा प्रकट की थी। और इसी प्रकार से पुराने नियम के पवित्रीकरण का संबंध भी कुछ ऐसा ही है। पर्वत, यरुशलेम नगर, तम्बू, मंदिर, याजक, लेवीय-हाँ, समस्त लोग, उपयोग में आने वाले पात्र और बलिदान आदि सभी वस्तुएँ पवित्र की गई थीं। सब कुछ यहोवा से संबंधित था जैसा कि वह अपने लोगों के मध्य निवास करता था। ''तेरे भवन को युग युग पवित्रता ही शोभा देती है'' (भजन 93:5)। ''जो मेरे समीप आये, आवश्यक है कि वह मुझे पवित्र जाने'' (लैव्य. 10:3)। परन्तु परमेश्वर ने अब पूर्णतया अपने को प्रभु यीशु में प्रकट किया है - देहधारी परमेश्वर। यद्यपि प्रभु वास्तविक मनुष्य था, फिर भी पृथ्वी पर उसके कार्य की विशेषता यह थी कि उसने परमेश्वर को प्रकट किया। परन्तु जब वह क्रूस पर अपने को पूर्णतया परमेश्वर प्रकट कर चुका और साथ-साथ उसी समय अनन्त छुटकारा दे चुका, तो वह मृतकों में से जीवित होकर परमेश्वर के दाहिने हाथ अपने स्थान पर जा बैठा। और यूहन्ना 17:4,5 कहता है कि उसने यह मनुष्य होकर किया।

परमेश्वर के रूप में अपनी अनंत महिमा में वह संसार की उत्पत्ति से पहले विद्यमान था। परन्तु अब, गुलगुता के क्रूस पर उस कार्य को पूर्ण करने वाले तथा पूर्णत: परमेश्वर को महिमान्वित करने वाले व्यक्ति की हैसियत से उसने यह निवेदन किया कि उसको मनुष्य के रूप में यह महिमा मिले। **और अब वह एक महिमान्वित मनुष्य के रूप में महिमा में परमेश्वर के दाहिने विराजमान है, अर्थात्, स्वर्ग में एक मनुष्य के रूप में।**

यह परमेश्वर का शाश्वत उद्देश्य था कि हम उसके पुत्र की समानता में बदल जाएं जिससे कि वह बहुत से भाईयों में पहिलौठा ठहरे (रोमि. 8:29)। यहाँ पर यूहन्ना 17:17-19 में प्रभु यीशु कहता है कि वह अपने आप को अपनों के लिए पवित्र करता है। वह स्वर्ग में अपने आप को पूर्ण रूप से परमेश्वर के लिए अलग करता है, और वह इसलिए करता है, ''ताकि वे भी सत्य के द्वारा पवित्र किये जाएं।'' यहाँ हम अपने पवित्रीकरण की एक योग्यता पाते हैं और साथ ही साथ वह साधन भी जिसके द्वारा हम पवित्र किये गये हैं। यह मसीह है जो अपनी महिमा में है।

आत्मा का पवित्रीकरण

जैसे ही हम 'नया नियम' पढ़ते हैं, हम पाते हैं कि हमारे पवित्रीकरण के विषय में दो प्रकार से कहा गया है। एक तरफ तो यह कहा गया है कि हम पवित्र किये जा चुके हैं। (1 कुरि. 6:11, 2 थिस्स 2:13, 1 पतरस 1:2 इत्यादि)। इसीलिए अनेक स्थानों पर हमको सन्त भी कहा गया है-उदाहरणार्थ, पत्रियों के आरंभिक शब्द। यह पवित्रीकरण नये जन्म के द्वारा हो चुका है। तब पवित्र आत्मा ने हमें नया जीवन अर्थात् ईश्वरीय स्वभाव प्रदान करके इस संसार से जिसके हम थे, अलग किया (यूहन्ना 3 अध्याय, 2 पतरस 1:4, इफि 4:24)।

दूसरी तरफ यह कहा गया है कि हमें व्यावहारिक रूप में पवित्र होना है (इब्रा 12:14, इफि 5:25-27 आदि)।

प्रकाशितवाक्य 22:11 में दोनों पक्ष मिले हुए हैं। ''जो पवित्र है, वह पवित्र बना रहे।''

हम पवित्रशास्त्र के अनेक अनुच्छेदों में इस नियम को लागू पाते हैं। जैसा कि हम ने रोमियों 7:29 में देखा है कि परमेश्वर ने पहले से ही हमें अपने पुत्र की समानता में बदलने की मन्शा रख छोड़ी है। इफिसियों 1:4-5 में भी हम उसी विचार को दूसरे शब्दों में व्यक्त किया हुआ पाते हैं। 1 कुरिन्थियों 15:49. हमें बतलाता है : ''और जैसे हमने उस (आदम) का रूप जो मिट्टी का था धारण किया, वैसे ही उस स्वर्गीय (प्रभु यीशु) का रूप भी धारण करेंगे।'' और 1 यूहन्ना 3:2 हमें बतलाता है कि जब यह पूरी रीति से पूर्ण हो जाएगा : ''(हम) इतना जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम भी उसके समान होंगे, क्योंकि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है।''

और दूसरी तरफ पवित्रशास्त्र के दूसरे अनुच्छेद में हम पहले से ही प्रभु यीशु की समानता में हो गये हैं। 1 यूहन्ना 3:1 हमें बतलाता है कि संसार हमें नहीं जानता, क्योंकि उसने उसे भी नहीं जाना। और 1 यूहन्ना 4:17 में इस प्रकार कहा गया है कि ''जैसा वह (महिमा में) है, वैसे ही संसार में हम भी हैं।''

इसकी व्याख्या यह है कि हर चीज प्रभु यीशु के कार्य पर निर्भर करती है। जहाँ तक पद, सम्मान का प्रश्न है, अब हमारे पास सब कुछ है (1 कुरि. 1:30)। नये जन्म के द्वारा हम संसार से अलग किए गए हैं और हमें अनंत जीवन प्राप्त है। एक बलिदान के द्वारा हम सिद्ध किये गये हैं, और परमेश्वर के समक्ष हम धर्मी ठहरे हैं। हम परमेश्वर के पुत्र एवं उत्तराधिकारी हैं, और मसीह में हम स्वर्गीय स्थानों में हैं (इफि. 2:6)। जहाँ तक हमारे प्राण का संबंध है, हमें वह सब कुछ प्राप्त है। परन्तु हमारे शरीर अभी विद्यमान है, हमारे शरीरों को वह सब कुछ में हिस्सा प्राप्त नहीं है, और हमारा पुराना स्वभाव अभी भी इस देह में हाजिर है। इसीलिए हमारी व्यावहारिक दशा अभी उस स्थिति के अनुकूल नहीं हो पायी है जिसमें प्रभु यीशु के कार्य के आधार पर लाये गये हैं।

व्यावहारिक पवित्रीकरण

इसके साथ उपदेश स्वयं सब कुछ पर प्रबल हो जाता है, और समस्त सेवाओं का यही उद्देश्य भी है : कि हमें व्यावहारिक रूप से, पहले से ही अनुभव करना चाहिए कि एक दिन हम कौन से लोग होंगे (इफि. 4:11-16; कुलु 1:28)। और हम क्या होंगे ? क्या उसके समान स्वर्ग का एक महिमान्वित मनुष्य। इस प्रकार वही हमारे व्यावहारिक जीवन की एकमात्र योग्यता भी है। इसलिए: ''और कोई उस पर यह आशा रखता है, वह अपने आप को वैसा ही पवित्र करता है, जैसा वह पवित्र है'' (1 यूहन्ना 3:3 और भी देखें 1 थिस्स. 3:12, 13)।

तो हम व्यावहारिक रूप से और अधिक उसके समान कैसे हो सकते हैं ? क्या व्यावहारिक परिश्रम एवं संघर्ष के द्वारा ? क्या जीवन-परिवर्तन और पवित्र जीवन के लिए अपने प्रयास के आधार पर ? रोमियों (7:24) 7 अध्याय में हम किसी को यही करते हुए पाते हैं। निष्कर्ष यह है कि वह चीखता है : ''ओह, मैं कैसा अभागा मनुष्य हूँ! मुझे इस मृत्यु की देह से कौन छुड़ाएगा ?''

परमेश्वर का वचन हमें एक बेहतर मार्ग दिखाता है। ''परन्तु जब हम सबके उघाड़े चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रकट होता है, जिस प्रकार दर्पण में, तो प्रभु के द्वारा जो आत्मा है, हम उसी तेजस्वी रूप में अंश-अंश करके बदलते जाते हैं'' (2 कुरि. 3:18)। प्रभु यीशु जैसा कि वह महिमान्वित स्वर्ग में है, की ओर देखने के द्वारा, उसके विषय में परमेश्वर के वचन में लिखा है उसे पढ़ने के द्वारा तथा उस पर विचार करने के द्वारा हमारे जीवन बदल जाते हैं। इस

प्रकार नैतिक रूप से हम उसकी समानता में बदल जाते हैं। वह जिससे हमारे हृदय लगे हुए हैं, उसकी छाप हमारे जीवनों पर रह जाती है।

इस प्रकार यही बात पवित्रीकरण के साथ भी है। वह यह कि जो एक दिन हम अपने महिमान्वित प्रभु यीशु की समानता में बदल जाएंगे - वही हमारे पवित्रीकरण का पैमाना है। और उसकी ओर ताकते रहना इस पवित्रीकरण को उत्पन्न करता है।

अब पवित्रता अपने गुण एवं स्वभाव में वह है जो हममें उस समय प्रकट होती है, जब मसीह हममें प्रकट होता है।

इसीलिए प्रभु यीशु कहता है : ''और उनके लिए मैं अपने आप को पवित्र करता हूँ, ताकि वे भी सत्य के द्वारा पवित्र किये जाए'' (यूहन्ना 17:19)। अब वह एक महिमान्वित पुरुष के रूप में परमेश्वर के सिंहासन पर विराजमान है, ''जो पवित्र, निष्कपट, निर्मल, पापियों से अलग और स्वर्ग से भी ऊंचा किया हुआ है'' (इब्रा. 7:26), ताकि उसकी ओर देखने से हम पवित्र किये जाएं। सत्य जो परमेश्वर का वचन है वह हमें उसके विषय बतलाता है। यह उसे उसके व्यक्ति की महिमा में प्रस्तुत करता है। उसकी संपूर्ण पराकाष्ठा तथा उन सबको जो उससे संबंधित हैं, हमारे हृदय ओत-प्रोत हो जाते हैं। उसके उपरांत हमारे हृदयों में संसार तथा संसार की वस्तुओं के लिए कोई स्थान शेष नहीं रह जाता। इस प्रकार हमारे जीवन नैतिक रूप से अधिकाधिक उसकी समानता में बदल जाते हैं, तथा इन पार्थिव वस्तुओं से अधिकाधिक अलगाव होता चला जाता है जिससे कि हम केवल परमेश्वर के प्रति समर्पित ठहरें। यही पवित्रीकरण है।

और इस प्रकार चलकर हम परमेश्वर की विश्वासयोग्यता को गिन सकते हैं। ''परन्तु अब जो तुम्हें ठोकर खाने से बचा सकता है, और अपनी महिमा की भरपूरी के सामने मगन और निर्दोष करके खड़ा कर सकता है, उस अद्वैत परमेश्वर हमारे उद्धारकर्त्ता की महिमा और गौरव और पराक्रम और अधिकार हमारे प्रभु यीशु मसीह के द्वारा जैसे सनातनकाल से है, अब भी हो और युगानुयुग रहे। आमीन'' (यहूदा 24, 25 और भी देखें मत्ती 19:26)।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ, आपका मित्र एच.एल.एच.

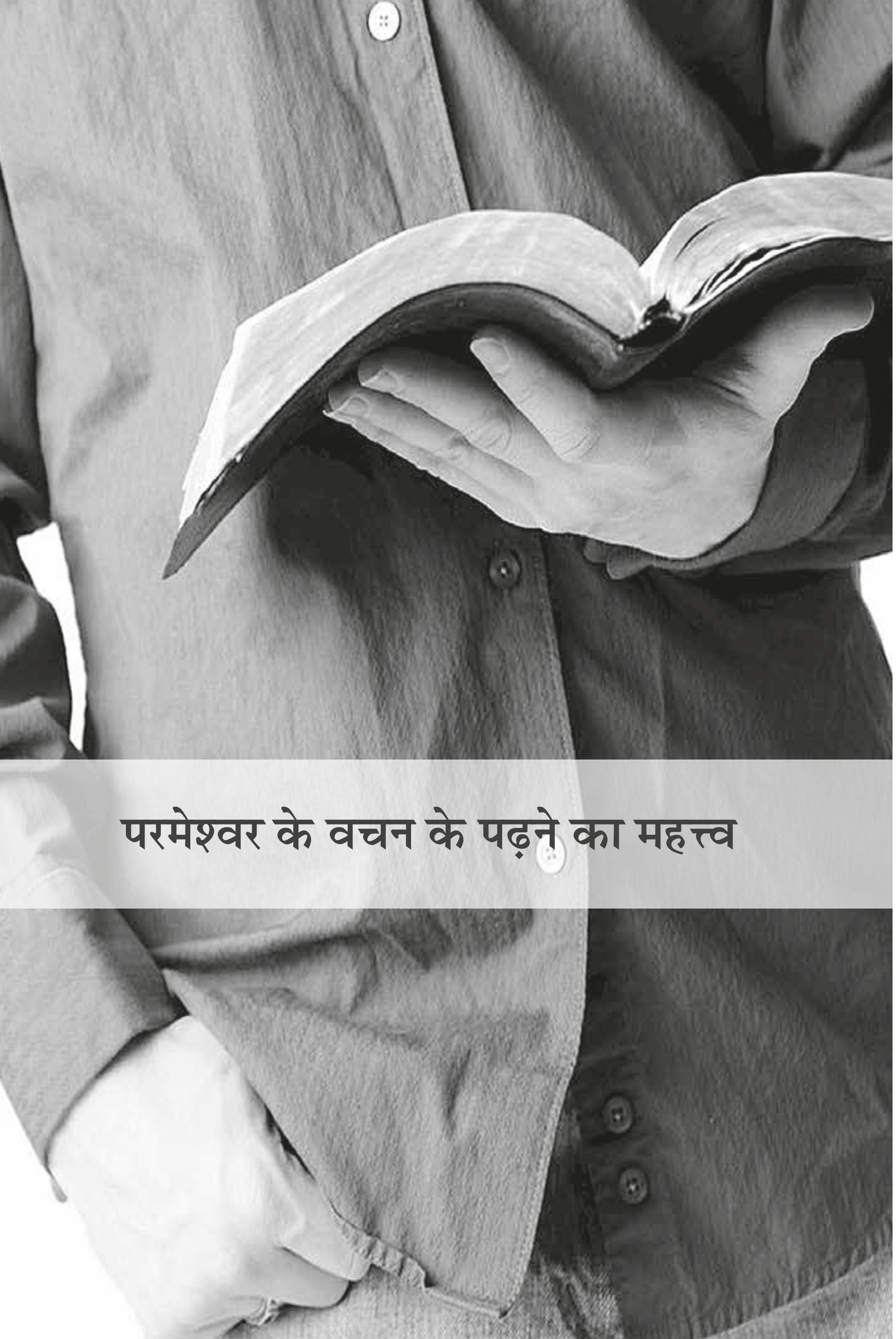

12 परमेश्वर के वचन के पढ़ने का महत्त्व

प्रिय मित्रो,

मैं आपसे यह पूछना चाहूँगा कि क्या आप नियमित रूप से अपनी बाइबल पढ़ते हैं। मेरा उससे कतई मतलब नहीं जो आप भोजन के समय बाइबल पढ़ते हैं जब परिवार के सब लोग एकत्र रहते हैं, परन्तु क्या आप इसे स्वयं अपने लिए भी पढ़ते हैं जब आप अकेले में होते हैं। यह सबसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण है यदि आप ऐसा करते हैं। जब एक विश्वासी ऐसा नहीं करता तो वह प्रभु की निकट-संगति में नहीं रहता है, और वह वास्तव में कभी भी प्रसन्नचित्त नहीं रह सकता।

हम कभी भी बाइबल का मूल्यांकन आवश्यकता से अधिक नहीं कर सकते, क्योंकि यह परमेश्वर का वचन है। केवल इस वचन के द्वारा ही हम परमेश्वर तथा उसके विचारों को समझ सकते हैं। 'पुराना-नियम' में परमेश्वर ने अपने आपको अपने बोले गये वचन के द्वारा प्रकट किया और उन्हें दिखाया। उसमें उसने बतलाया कि वह कौन है, वह क्या-क्या करेगा और मनुष्य को उसकी सेवा किस प्रकार करनी चाहिए। तब पुत्र पृथ्वी पर आया और अपने को परमेश्वर घोषित किया (यूहन्ना 1:18)। किन्तु हम पुत्र के विषय में अन्य सारी बातें भी-उसका जन्म, जीवन तथा मृत्यु, उसके वचन और कार्य-केवल पवित्र वचन के द्वारा ही जानते हैं। और परमेश्वर पवित्र आत्मा, भी तो अब पृथ्वी पर है तथा जो विश्वासियों में निवास करता है। वह सारी बातें हमें पवित्रशास्त्र के द्वारा ही प्रकट करता है।

अत: यदि कोई विश्वासी पवित्रशास्त्र - बाइबल से प्रेम नहीं करता तो यह अस्वाभाविक है। अत: उसका, हमारे प्रभु और उद्धारकर्त्ता के अनुग्रह और ज्ञान का निकट संबध इस बात में पाया जाता है कि कितना अधिक उसके वचन को पढ़ते तथा उस पर चलते हैं।

नया जन्म

उदाहरण के लिए जब हम भजन 119 पढ़ते हैं, तो हम देखते हैं कि भजनकार के आत्मिक जीवन का प्रत्येक पहलू परमेश्वर के वचन से जुड़ा हुआ है। सर्वप्रथम हम देखते हैं कि नया जीवन वचन से है (पद 93): ''मैं तेरे उपदेशों को कभी न भूलूँगा : क्योंकि उन्हीं के द्वारा तूने मुझे जिलाया है''। ये पद भी देखें 25, 37, 40, 50, 88, 107, 116, 144, 149, 154, 156, 159 तथा 175 पद। यह अन्य भागों में भी बड़ी सफाई के साथ दिया गया है। ''उसने अपनी

ही इच्छा से हमें सत्य के वचन के द्वारा उत्पन्न किया'' (याकूब 1:18)?'' क्योंकि हमने नाशमान नहीं पर अविनाशी बीज से परमेश्वर के जीवते और सदा ठहरने वाले वचन के द्वारा नया जन्म पाया है : ''जब तक कोई मनुष्य जल और आत्मा से न जन्मे तो वह परमेश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता।'' इफिसियों 5:26 तथा अन्य स्थलों से यह स्पष्ट है कि पवित्रशास्त्र में जल, परमेश्वर के वचन का उदाहरण है जो पवित्र आत्मा के द्वारा मनुष्य पर लागू होता है। परमेश्वर का वचन, मनुष्य का पापमय विवेक परमेश्वर की ज्योति में ले आता है। इसके द्वारा वह मनुष्य देखता है कि वह कौन है, और परमेश्वर के सामने अपने पापों को मानकर अपने को दोषी ठहराता है। यही मन-परिवर्तन है। किन्तु इस आत्म-परख के कारण मनुष्य का हृदय निर्मल हो जाता है और पवित्र आत्मा, वचन के द्वारा उसके भीतर एक नया ईश्वरीय जीवन उत्पन्न करता है।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब कभी हम अविश्वासियों को सुसमाचार सुनाते हैं, तो यह आवश्यक है कि हमें परमेश्वर के वचन का ज्ञान हो। हमारे अपने शब्द कभी भी एक मनुष्य में मन परिवर्तन नहीं ला सकते। यह तो केवल परमेश्वर का वचन ही कर सकता है। ''अत: विश्वास सुनने से, और सुनना मसीह के वचन से होता है'' (रोमि. 10:17)।

किन्तु परमेश्वर का वचन एक नये जीवन के लिए भोजन भी है।

नये जीवन के लिए भोजन

''तेरे वचन मुझको कैसे मीठे लगते हैं, वे मेरे मुँह में मधु से भी मीठे है''! (भजन 119:103)। ''वे मधु से और टपकने वाले छत्ते से भी बढ़कर मधुर है'' (भजन 19:10)। प्रभु यीशु कहता है : ''मनुष्य केवल रोटी ही से नहीं, परन्तु हर एक वचन से जो परमेश्वर के मुँह से निकलता है जीवित रहेगा'' (मत्ती 4:4)। इब्रा. 5:12-14, तथा 1 पतरस 1:25, 2:2 भी देखें।

वह नया जीवन जिसका अस्तित्व वचन पर आधारित है, उसे ऐसे ही भोजन की आवश्यकता पड़ती है जो इस जीवन के अनुकूल हो। यह जीवन उद्धारकर्त्ता प्रभु यीशु है जो मरा (यूहन्ना 6:56), वह जो इस धरती पर एक पवित्र और सच्चे मनुष्य की भांति रहा (यूह. 6:33-35), तथा जो स्वर्ग में एक महिमान्वित प्रभु की भाँति जीवित है, अर्थात् वही भुना हुआ दाना (यहोशू 5:11)! किन्तु हम उसे केवल वचन में ही पा सकते हैं। 'पुराने नियम' में हम उसे प्रत्येक भाँति, हर प्रतीक में तथा भविष्यवक्ताओं की भविष्यवाणियों में पाते हैं। 'नये नियम' में हम उसे उसके पार्थिव जीवन, सुसमाचारों, प्रेरितों के कार्य एवं पत्रियों में उसकी मृत्यु, तथा साथ ही

प्रेरितों के कार्य, पत्रियों एवं प्रकाशितवाक्य में एक महिमान्वित प्रभु रूप में उसके पूर्ण प्रकटीकरण को देखते हैं।

क्या इसमें कोई आश्चर्य की बात है कि आज बहुतों के आत्मिक जीवन निर्बल एवं रोगग्रस्त हैं, और वे केवल दूध ही पचा सकते हैं और ठोस आहार नहीं (इब्रा. 5:12-14), जब वे वचन की सेवा के समय बाइबल अध्ययन में नहीं आते और न ही स्वयं नियमित रूप से वचन में खोज-बीन करते हैं ?

हम अपने आत्मिक जीवन में तभी बढ़ सकते तथा उसे स्वस्थ बनाये रख सकते हैं जब हम नियमित रूप से भोजन करें।

परमेश्वर का वचन हमारा मार्गदर्शक है

''जवान अपनी चाल को किस उपाय से शुद्ध रखे ? तेरे वचन के अनुसार सावधान रहने से - मैंने तेरे वचन को अपने हृदय में रख छोड़ा है, कि तेरे विरुद्ध पाप न करूँ - तेरा वचन मेरे पांव के लिए दीपक, और मेरे मार्ग के लिए उजियाला है'' (भजन 119:9, 11, 105)।

यहोवा ने यहोशू से कहा, ''इतना हो कि तू हियाव बांधकर और बहुत दृढ़ होकर, जो व्यवस्था मेरे दास मूसा ने तुझे दी है उन सबके अनुसार करने में चौकसी करना; और उससे न तो दाहिने मुड़ना है और न बाएं, तब जहाँ-जहाँ तू जाएगा, वहाँ वहाँ तेरा काम सफल होगा। व्यवस्था की यह पुस्तक तेरे चित्त से कभी न उतरने पाए, इसी में दिन-रात ध्यान दिये रहना, इसलिए कि जो कुछ उसमें लिखा है उसके अनुसार करने की तू चौकसी करे; क्योंकि ऐसा ही करने से तेरे सब काम सफल होंगे, और तू प्रभावशाली होगा'' (यहोशू 1:7,8)।

वहां बड़े जोखिमों को देखते हुए, प्रेरितों 20:32 में पौलुस इफिसुस के प्राचीनों को ''परमेश्वर को और उसके अनुग्रह के वचन को सौंप देता है।'' तीमुथियुस को लिखते हुए वह कहता है कि ''पवित्रशास्त्र उसे उद्धार प्राप्त करने के लिए बुद्धिमान बना सकता है'' (2 तीमु. 3:15)।

यदि हम परमेश्वर का वचन ही नहीं जानते, तो यह कैसे जान सकते हैं कि पाप है क्या ? **अज्ञानता हमें निर्दोष नहीं ठहरा सकती** (लैव्य. 5:17)। यदि हम परमेश्वर के वचन में न ढूँढें जिसके द्वारा वह हमसे सब कुछ कहता है, तो हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमें क्या करना चाहिए अथवा कौन-सी बात परमेश्वर की इच्छानुसार है ? हम यह कैसे पता कर सकते हैं कि अमुक विशेष मामले में हम क्या निर्णय लें अथवा किस मार्ग पर हमें चलना चाहिए, यदि हम परमेश्वर के वचन को न जानें!

"तो बातों के खुलने से प्रकाश होता है, उससे भोले लोग समझ प्राप्त करते हैं - तू अपनी आज्ञाओं के द्वारा मुझे अपने शत्रुओं से अधिक बुद्धिमान करता है, क्योंकि मेरा ध्यान तेरी चितौनियों पर लगा है। मैं पुरनियों से भी समझदार हूँ, क्योंकि मैं तेरे उपदेशों को पकड़े हुए हूँ" (भजन 119:130, 98-100)।

वचन हमारा हथियार है

"आत्मा की तलवार जो परमेश्वर का वचन है" (इफि. 6:17), "तब मैं अपनी नामधराई करने वालों को कुछ उत्तर दे सकूँगा" (भजन 119:42)। प्रभु यीशु ने किस प्रकार इस तलवार को चलाया ? शैतान के प्रत्येक आक्रमण का सामना यह कह कर किया कि "लिखा है" (मत्ती 4:4, 7, 10)। और परिणाम यह हुआ कि शैतान को भागना पड़ा। परमेश्वर के वचन के सामने शैतान का सारा पराक्रम जाता रहा।

परन्तु प्रभु ने परमेश्वर के वचन को मनुष्यों के विरुद्ध भी उपयोग किया, "क्या-नहीं लिखा है" (यूहन्ना 10:34) ? "फिर यह क्या लिखा है" (लूका 20:17) ?

"क्योंकि परमेश्वर का वचन जीवित और प्रबल, और हर एक दोधारी तलवार से भी बहुत चोखा है। और जीव और आत्मा को, और गांठ-गांठ और गूदे गूदे को अलग करके आर-पार छेदता है, और मन की भावनाओं और विचारों को जांचता है। और सृष्टि की कोई वस्तु उससे छिपी नहीं है वरन जिससे हमें काम है, उसकी आँखों के सामने सब वस्तुएं खुली और बेपरद हैं" (इब्रा. 4:12, 13)।

हमारे पास यह एक मात्र ऐसा हथियार है जो शैतान एवं संसार से हमारी सुरक्षा तथा उन पर आक्रमण-दोनों के काम आता है। हमें यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि यह जीवित परमेश्वर का वचन है, अतः इसमें स्वयं सामर्थ्य है। जब हम इसका उपयोग करेंगे, तो इस ईश्वरीय अस्त्र का प्रभाव उन सभी लोगों पर पड़ेगा जिनके विरुद्ध इन्हें हम चलाएंगे। यहाँ तक कि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध हम बोल रहे हैं, वह इसे स्वीकार न करता हो किन्तु बह्य रूप से बिना किसी प्रभाव के या विरोधी जान पड़ता हो, फिर भी उसका विवेक उसे दोषी ठहरायेगा कि जो कुछ कहा गया है वह सब सत्य है।

एक बार की बात है कि जब मैं बहुत छोटा ही था, मैंने इस बात को स्वयं देखा। मैं रेलगाड़ी पर पर्चे बांट रहा था कि एक सज्जन मसीहियत को लेकर मुझ पर आक्रमण करने लग गये। मैंने अपनी बाइबल निकाली और उसमें से एक स्थल, जिसमें उनके दृढ़-कथन का उत्तर था, जोर-जोर से पढ़ने लगा। जब मैंने ऐसा ही दो या तीन बार किया, वह चिल्ला पड़ा : "महाशय मैं तो बाइबल के विरुद्ध तर्क नहीं कर रहा हूँ, मैं तो आपके विरुद्ध कह रहा हूँ।"

मैंने उत्तर दिया कि बाइबल ही मेरी एकमात्र प्रामाणिकता है। उसने पुनः एक या दो बार प्रयास किया फिर क्रोध में आकर मुड़ गया और पढ़ने लगा। किसी में भी साहस नहीं कि वह परमेश्वर के वचन का विरोध कर सके।

फिर लगभग उसी समय के आस पास एक और घटना घटी। किसी प्रकार से उस समय मेरे पास बाइबल नहीं थी, किन्तु उस मनुष्य से वाद-विवाद करने लगा। अभी थोड़ा ही समय हुआ था कि मुझे अनुभव होने लगा कि मैं हार गया हूँ।

कुछ वर्ष पूर्व मैं एक भीड़ भरी रेलगाड़ी के 'प्लेटफार्म' पर खड़ा था। उनमें से एक यात्री कठिनाइयों और समस्याओं का वर्णन कर रहा था और सुधार के विषय में कह रहा था कि यह तो आ नहीं सकता। मैंने भी उसकी बातचीत में भाग लेते हुए कहा कि हाँ, मैं जानता हूँ कि एक दिन, वह दिन आने वाला है और हम एक दिन उसका अनुभव करेंगे। उसी के बाद मैंने पवित्रशास्त्र से कुछ-एक पद पढ़कर उसे सुनाये। वह मुझ पर हँसने लगा और वहीं मेरा ठट्टा करने लगा। मैंने मनुष्य की दशा और संसार से संबंधित कुछ स्थल और पढ़े, किन्तु इसी के साथ-साथ मसीह के द्वारा प्राप्त होने वाले उद्धार के विषय में भी पढ़ा। वह मेरी ओर पीठ फेरकर किसी दूसरे से बात करने लगा। बहरहाल, पन्द्रह मिनट के बाद उसने मुझे अपने साथ चलने को कहा। एक कोने में अनुपूरित नेत्रों से उसने मुझसे एक बाइबल मांगी-क्योंकि जो मैं पढ़ गया था, उसको भी अपने साथ रखने के लिए वह व्याकुल था।

शुद्धि का साधन

परमेश्वर का वचन हमें शुद्ध एवं पवित्र करने का भी एक मात्र एक साधन है। "जैसा मसीह ने भी कलीसिया से प्रेम करके अपने आप को उसके लिए दे दिया, कि उसको वचन के द्वारा जल के स्नान से शुद्ध करके पवित्र बनाए" (इफ. 5:26, 27)। "सत्य के द्वारा उन्हें पवित्र कर : तेरा वचन सत्य है" (यूहन्ना 17:17)।

हमारे जीवन, केवल परमेश्वर के वचन को अपने जीवन तथा क्रिया-कलापों में लागू करने से शुद्ध होते हैं। और केवल इसी प्रकार हम सब प्रकार की बुराइयों से अलग रह सकते हैं। हमारा अधिवक्ता पिता के साथ अपने वचन (1 यूहन्ना 2:2, यूहन्ना 13:5-10) के द्वारा हमारा पैर धोता है : परन्तु यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसे अपने पैर धोने दें।

"मैंने तेरे वचन को अपने हृदय में रख छोड़ा है, कि तेरे विरुद्ध पाप न करूँ" (भजन 119:11)। "और उन्हीं से तेरा दास चिताया जाता है : उनके पालन करने से बड़ा प्रतिफल मिलता है। अपनी भूल-चूक को कौन समझ सकता है ?" (भजन 19:11,12)। उसके बाद वचन एक मात्र कसौटी भी है।

शिक्षा एवं व्यावहारिकता की कसौटी

''मैं तेरे उपदेशों और चितौनियों को मानता आया हूँ, क्योंकि मेरा सारा चालचलन तेरे सन्मुख प्रकट है'' (भजन 119:168)।

''जिसके कान हों, वह सुन ले कि आत्मा कलीसियाओं से क्या कहता है'' (प्रकाशित 2 तथा 3)। **जो कुछ कलीसिया में होता है, हमें प्रत्येक को परखते रहना चाहिए, दोनों प्रकार से कि वहाँ क्या शिक्षा दी जाती है और क्या आचरण किया जाता है।** और यह वचन के द्वारा होना चाहिए जैसा कि आत्मा कलीसिया से कहता है। ''भविष्यवक्ताओं में से दो या तीन बोलें, और शेष लोग उनके वचन को परखें'' (1 कुरि. 14:29)।

परन्तु हमें अपनी चाल और अपने विचार भी परमेश्वर के वचन के आधार पर परखना चाहिए। हमारे अपने विचार भी कीमत नहीं रखते। जो कुछ परमेश्वर का वचन कहता है वही अधिकारपूर्ण है। उदाहरण के रूप में देखें, (लैव्य 5:14,19)।

प्रेरितों के काम 17:11 में बिरीया के यहूदियों को, थिस्सलुनीके के यहूदियों से भला कहा गया है, क्योंकि वे पौलुस प्रेरित के वचनों को परमेश्वर के वचन के आधार पर परखते थे कि ये बातें यों ही हैं कि नहीं। 1 कुरिन्थियों 15:3, 4 में प्रेरित स्वयं भी पवित्रशास्त्र को अपनी शिक्षा का स्त्रोत बतलाता है।

'हर एक पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, और समझाने और सुधारने के और धर्म की शिक्षा के लिए लाभदायक है। ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिए तत्पर हो जाए' (2 तीमु. 3:16, 17)।

आज्ञकारिता एवं समर्पण

'तू ने अपने उपदेश इसलिए दिये हैं, कि वे यत्न से माने जाए' (भजन 119:4), 'उसके पालन करने से बड़ा ही प्रतिफल मिलता है' (भजन 19:11)। 'यदि तुम मेरी आज्ञा को मानोगे, तो मेरे प्रेम में बने रहोगे : जैसा कि मैंने अपने पिता की आज्ञाओं को माना है, और उसके प्रेम में बना रहता हूँ' (यूहन्ना 15:10)। 'यदि कोई मुझ से प्रेम रखे, तो वह मेरे वचन को मानेगा और मेरा पिता उससे प्रेम रखेगा, और हम उसके पास आएंगे और उसके साथ वास करेंगे' (यूहन्ना 14:23)।

'और परमेश्वर का प्रेम यह है कि हम उसकी आज्ञाओं को मानें, और उसकी आज्ञाएं कठिन नहीं' – (1 यूहन्ना 5:3)।

प्रथम पाप परमेश्वर के वचन का उल्लंघन था। हाँ, परमेश्वर को हमारे ऊपर संपूर्ण अधिकार है, इस सच्चाई को मन में रखे बिना किया गया कोई भी कार्य या कोई कार्य करने में निष्फलता, ये सब पाप है। यह तो 'व्यवस्था का विरोध' है (1 यूहन्ना 3:4)। इस प्रकार वह सब जो हम बिना परमेश्वर की इच्छा जाने और अपनी खुद की ही इच्छा के अधीन किया करते हैं, वह पाप है।

प्रभु यीशु में हम आज्ञाकारिता का क्या ही सुन्दर जीवन पाते हैं ? वह इस पृथ्वी पर परमेश्वर की इच्छा पूरी करने आया (इब्रा. 10:7)। इसके लिए उसे आज्ञाकारिता सीखनी पड़ी (इब्रा 5:7), उस जैसे अनंत परमेश्वर के लिए आज्ञाकारिता एक अजीब चीज थी। किन्तु यहाँ पृथ्वी पर भी वह यह कह सका – 'मैं सर्वदा वही काम करता हूँ, जिससे वह प्रसन्न होता है' (यूहन्ना 7:29)। 'मेरा भोजन यह है कि अपने भेजने वाले की इच्छा के अनुसार चलूँ और उसका काम पूरा करूँ (यूहन्ना 4:34)।

इस पृथ्वी पर केवल परमेश्वर की इच्छा पूरी करने वाले इस मनुष्य, अर्थात् परमेश्वर को यह देखकर कैसा लगा होगा, जहाँ मनुष्य अपनी ही इच्छा पूरी करता रहता है, यद्यपि उसकी अपनी इच्छा सिद्ध और पवित्र थी ?

परमेश्वर को कैसा लगता होगा, जबकि आज भी उसे ऐसे मनुष्य, मिलते हैं जिनकी लालसा और जिनकी खुशी यही रहती है कि वे परमेश्वर की सेवा (उपासना) करें और उसकी इच्छा को जानने के लिए उसके वचन पवित्रशास्त्र में परिश्रम के साथ ढूँढें!!

हमारे लिए आज भी परमेश्वर के वचन को पढ़ने तथा उसका स्मरण रखने का कितना बड़ा व्यावहारिक महत्व है। उस सब बातों के साथ जो परमेश्वर के प्रेम ने हमारे लिए तैयार रखा है, जब हम इसमें प्रभु की महिमा को देखते हैं तो हमारे हृदय आनन्द विभोर हो उठते हैं। इसके साथ हम और भी अधिक परिचित हो जाते हैं और परमेश्वर की इच्छा को और भी भली प्रकार समझना सीख जाते हैं। इसी के साथ जब हम किसी के साथ उसकी आत्मा के उद्धार की बात कर रहे होते हैं-हथियारों से भरा हुआ एक शस्त्रगार प्राप्त करते हैं जिसका उपयोग हम शैतान के आक्रमण के विरुद्ध अपनी सुरक्षा के लिए तथा स्वयं आक्रमण के लिए कर सकते हैं।

क्या अभी भी किसी के पास यह शिकायत हो सकती है कि उसका दिमाग एक छलनी के समान है जिसमें कुछ भी नहीं रुकने पाता-ठीक है, यद्यपि छलनी अपने आप में पानी को नहीं रख सकती, फिर भी जल प्रवाह के कारण यह स्वच्छ हो जाती है। पानी इसकी प्रत्येक गंदगी को निकाल बाहर करता है। यही बात परमेश्वर के वचन के साथ भी है। किन्तु आप केवल वचन के पढ़ने वाले ही न बनें, बल्कि इस पर विचार करने वाले भी बनें। यदि कोई अच्छी

व्याख्या मिल सकती है तो कृतज्ञता के साथ उसका उपयोग कीजिए। किन्तु प्रत्येक को स्वयं वचन से जांचिए। परन्तु कभी भी वचन का स्थान स्वयं, टीका न लेने पाये। यदि ऐसा होता है, तो वास्तव में यह एक खराब आदत होगी।

"हे मेरे पुत्र, यदि तू मेरे वचन ग्रहण करे और मेरी आज्ञाओं को अपने हृदय में रख छोड़े, और बुद्धि की बात ध्यान से सुने, और समझ की बात मन लगाकर सोचे, और प्रवीणता और समझ के लिए अति यत्न से पुकारे, और उसको चाँदी की नाई ढूँढे, और गुप्त धन के समान उसकी खोज में लगा रहे; तो तू यहोवा के भय को समझेगा, और परमेश्वर का ज्ञान तुझे प्राप्त होगा" (नीति वचन 2:1-5)।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,

आपका मित्र,

एच.एल.एच.

13 प्रार्थना

प्रिय मित्र,

मैंने अपने पिछले पत्र में आपको परमेश्वर के वचन को पढ़ने का संकेत किया था। अब मैं आपसे यह पूछना चाहूँगा कि आपका प्रार्थना का जीवन कैसा है ? ये दो चीजें ऐसी हैं जिनके महत्व का आकलन नहीं किया जा सकता, विशेषकर उस समय जबकि इन दोनों का आपसी घनिष्ठ संबंध हो। यदि कोई केवल वचन का पढ़ने वाला हो और प्रार्थना के प्रति लापरवाही बरतता हो तो परिणाम झूठ, घमंड एवं मिथ्याभिमान होगा। यदि कोई केवल प्रार्थना ही करता हो और वचन की अवहेलना करता हो तो, परिणाम दुराग्रह एवं पूर्ण अंधापन होगा, जो स्वयं भी यहाँ जुड़ा हुआ पाया जाता है, क्योंकि इससे परमेश्वर के विचार का पता नहीं लगाया जा सकता। निस्संदेह सत्य यह है कि जो परमेश्वर के वचन को नहीं पढ़ता वह इस बात का प्रमाण है कि परमेश्वर के विचारों अथवा उसकी रुचि से उसका कोई सरोकार नहीं है। जब प्रार्थना के जीवन पर हठ का अधिकार हो जाता है, और सब चीजों का केन्द्र बिन्दु ''मैं'' बन जाता है– तो हो सकता है कि वह ''मैं'' धोखे के वेश में पवित्रता का आवरण ओढ़े हुए हो, उदाहरणार्थ, सुसमाचार-प्रचार तथा अन्य कार्यों में वह बड़ा उत्साह दिखलाता हो। प्रार्थना आत्मिक जीवन के लिए तभी आशीष का कारण हो सकती है जब यह परमेश्वर के वचन के गंभीर अध्ययन के साथ की जाती है।

पवित्रशास्त्र में भी अधिक बल प्रार्थना पर दिया गया है। प्रभु यीशु ने अपनी सेवा प्रार्थना के साथ आरंभ की थी (लूका 3:21)। कलीसिया की स्थापना तथा तीन हज़ार लोगों का मन-परिवर्तित होना, दस दिनों की लंबी प्रार्थना सभा का परिणाम था (प्रेरितों 1:13, 14)। मूर्तिपूजकों के मध्य किये गये अधिकांश कार्य प्रार्थना से ही आरंभ हुए (प्रेरितों 13:2,3)। और परमेश्वर के वचनानुसार यूरोप में सुसमाचार का प्रवेश भी उसी प्रकार अत्याधिक प्रार्थना से संबंधित रहने के कारण हुआ (प्रेरितों 16:9-13)। बारह प्रेरितों ने अपने उस कार्य को छोड़ दिया जो वे उस समय कर रहे थे कि वे अपने आपको ''प्रार्थना तथा वचन की सेवा हेतु दे सकें''. (प्रेरितों. 6:4)। जब हम प्रेरितों के कार्य-कलाप को पढ़ते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि पौलुस ने अपना सम्पूर्ण जीवन सुसमाचार-प्रचार में लगा दिया, परन्तु जब हम पत्रियों को पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि उसने प्रार्थना करने के अतिरिक्त कुछ किया ही नहीं। उदाहरण के लिए देखें, रोमि. 1:9, 10, 1 कुरि. 1:4, इफि. 1:16, 3:14, फिलि 1:4, कुलू. 1:3, 9, 1 थिस्स. 1:2 इत्यादि। और परमेश्वर का वचन हमें कहता है कि हम ''हर समय प्रार्थना करें'' (इफि

6:18), और ''निरंतर प्रार्थना में लगे रहें'' (1 थिस्स. 5:17)। अतिरिक्त इसके कि जो कुछ बीसियों अन्य स्थलों पर हमसे करने को कहा गया है।

प्रार्थना–नये जन्म का प्रतीक

प्रार्थना करने का तात्पर्य मात्र ''किसी प्रार्थना के उच्चारण करने' से नहीं है। वैसे तो प्रतिदिन हजारों प्रार्थनाएं की जाती हैं – जैसा कि एक बार एक अमरीकी अखबार में वहाँ की एक प्रार्थना सभा का विवरण कुछ इस प्रकार छपा था – ''अब तक बोस्टन की मण्डली में की जाने वाली आडम्बरी प्रार्थनाओं में उसकी प्रार्थना सबसे अच्छी रही''। यही बात तो प्रभु यीशु ने भी फरीसियों के विषय में कही ''कि दिखाने के लिए वे बड़ी देर तक प्रार्थना करते रहते हैं'' (मरकुस 12:40)।

वास्तव में तो केवल विश्वासी ही प्रार्थना कर सकते हैं। प्रार्थना उस नये जीवन की अभिव्यक्ति है जो परमेश्वर से है, और जो अपने जीवन के स्रोत पर आश्रित रहने के प्रति सजग रहती है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि परमेश्वर एक अविश्वासी की प्रार्थना कभी सुनता ही नहीं ? जैसे परमेश्वर कौवे के बच्चे की काँव काँव सुनकर उन्हें उनका भोजन देता है, उसी प्रकार कभी कभी परमेश्वर अविश्वासियों की प्रार्थना भी सुनता है, यदि वे खराई से करते हैं। हमें तो केवल उत्पत्ति 21:17 तथा योना 1:14 के विषय में ही सोचना है।

यद्यपि नि:संदेह फरीसी होने के नाते पौलुस ने सैकड़ों प्रार्थनाएं की थीं, और बिना किसी संदेह के उन्हें पूरी खराई के साथ की थी, जब उसका मन-परिवर्तन हुआ तो प्रभु ने हनन्याह से कहा। ''क्योंकि देख, वह प्रार्थना कर रहा है'' (प्रेरितों 9:11)। यह इस बात का प्रमाण था कि उसका जीवन परिवर्तन हो चुका था अर्थात् इस बात का चिन्ह था कि उसने एक नया जीवन पा लिया था और परमेश्वर पर निर्भर था।

नया जीवन अपनी निर्भरता का अनुभव करता है तथा ठीक एक नवजात शिशु की भाँति व्यवहार करता है – कभी कभी यह ऐसी रुलाई रोता है जो उसके माता-पिता के लिए दुरुह एवं अनाकर्ष होती है। किन्तु परमेश्वर प्राय: हमारी असंगत एवं अविवेकपूर्ण प्रार्थनाओं को समझता है। वे उसके पितृवत (पिता तुल्य) हृदय के लिए इस बात के प्रतीक हैं कि यह नया जीवन अपने परावलम्बन के प्रति सचेत हैं, और अपने पितृवत प्रेम के बहुतायत के कारण वह अपने प्रार्थना करने वाले को भली वस्तुएं देता है।

प्रार्थना केवल अनुभवी विश्वासियों के लिए नहीं है

किन्तु यदि नये विश्वासी अभी नहीं जानते कि प्रार्थना कैसे करें अथवा यह कि जो वे प्रार्थना में मांग रहे हैं क्या वे भली हैं अथवा नहीं, तो क्या उनको प्रार्थना करने के पूर्व कुछ ठहरना नहीं चाहिए ?

अभी थिस्सलुनीकि के लोगों ने कुछ ही माह पहले प्रभु को ग्रहण किया था, जब पौलुस ने उनको अपनी पहली पत्री लिखी। फिर भी वह उसमें कहता है : ''निरंतर प्रार्थना में लगे रहो।'' (1 थिस्स. 5:17)। इससे भी बढ़कर वह महान प्रेरित जिसके प्रचार से वे विश्वास लाए थे, और जो परमेश्वर की इच्छानुसार उनको शिक्षा दे रहा था, उसने उनकी प्रार्थनाओं को पर्याप्त महत्व दिया। ''हे भाईयो, हमारे लिए प्रार्थना करो'' (1 थिस्स. 5:25)!

इसी से हम जान सकते हैं कि प्रार्थना का कितना बड़ा महत्व है और यह परमेश्वर की दृष्टि में कितना अधिक सराहनीय है। क्या कोई ऐसे माता-पिता हो सकते हैं जो चाहेंगे कि उनके बच्चे उनसे न बोलें या कोई भी वस्तु उनसे न मांगे, मात्र इसलिए कि अभी बच्चों ने ठीक से बोलना नहीं सीखा है, या वे कोई ऐसी वस्तु न मांगे जो माता-पिता होने के नाते उसे देने में असमर्थ हैं, क्योंकि ये वस्तुएँ बच्चों के लिए हानिकारक हैं? और इसी प्रकार से परमेश्वर को बड़ी खुशी होती है जब उसके नवजात शिशु (नये विश्वासी) बड़े विश्वास के साथ उसके निकट जाकर अपनी सारी आवश्यकताओं से उसे अवगत कराते हैं। वह सहर्ष इन प्रार्थनाओं का उत्तर देता है, और यद्यपि कि उसका प्रेम सदैव ही उसे इस बात की आज्ञा नहीं देता कि वह प्रत्येक प्रार्थना को स्वीकार करे-क्योंकि संभव है कि प्रार्थी ने हानिकारक वस्तुओं की विनती की हो – फिर भी वह प्रार्थी के हृदय में शांति देता है। ''किसी भी बात की चिंता मत करो : परन्तु हर एक बात में तुम्हारे निवेदन प्रार्थना और विनती के द्वारा धन्यवाद के साथ परमेश्वर के सम्मुख उपस्थित किये जाएं। तब परमेश्वर की शांति जो समझ से बिल्कुल परे है, तुम्हारे हृदय और तुम्हारे विचारों को मसीह यीशु में सुरक्षित रखेगी'' (फिलि. 4:6, 7)।

प्रार्थना के उत्तर की निश्चिंतता

रोमियों 8:31, 32 हमें यह बतलाता है कि परमेश्वर हमारी ओर है, जिसने अपने निज पुत्र को भी न रख छोड़ा परन्तु उसे हम सबके लिए दे दिया, तो वह उसके साथ हमें सब कुछ क्योंकर न देगा। यूहन्ना 16:27 में प्रभु यीशु कहता है, ''क्योंकि पिता तो आप ही तुमसे प्रीति रखता है।'' यदि वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर हमारी ओर है और हमसे प्रेम करता तथा हमें सब कुछ देना चाहता है, तब प्रार्थना क्या ही बड़ी शक्ति है।

परन्तु यही सब कुछ नहीं! यूहन्ना 14:13, 14 में प्रभु यीशु हमें यह अधिकार देता है कि हम उसके नाम में प्रार्थना करें और यह भी प्रतिज्ञा करता है कि वह ऐसी प्रार्थना को सुनेगा। यूहन्ना 16:23 में वह आगे कहता है : ''यदि पिता से कुछ मांगोगे, तो वह मेरे नाम से तुम्हें देगा।'' यहाँ न तो एक भी शर्त दिखाई देती है, और न अनिश्चितता।

यह तब भी स्पष्ट है जब हम पवित्रशास्त्र में प्रभु यीशु के जीवन को देखते हैं। भजन संहिता 109:4 में प्रभु यीशु ने कहा कि उसका पार्थिव जीवन अपने आप में स्वयं एक प्रार्थना

था। इससे उसका चरित्र-चित्रण होता था। वह सच्चा मानव था, और सच्ची मानवता परमेश्वर पर आधारित होती है। सृष्टिकर्ता परमेश्वर ने मनुष्य को एक स्वतंत्र जीव करके नहीं सृजा है। इस प्रकार यदि मनुष्य, परमेश्वर के ऊपर निर्भर नहीं करता, तो वह शैतान पर निर्भर करता है।

प्रभु यीशु में हम सच्ची एवं पूर्ण मानवता पाते हैं और इसलिए हम उसमें पूर्ण अधीनता भी पाते हैं। यशायाह 50:4 में वह परमेश्वर के विषय में कहता है ''भोर को वह नित्य मुझे जगाता और मेरा कान खोलता है कि मैं शिष्य समान सुनूँ।'' और सुसमाचारों में हम उसके प्रार्थना के जीवन को देखते हैं।

लुका में विशेष रूप से प्रभु सच्चे मनुष्य, अर्थात् मनुष्य के पुत्र के रूप में दिखाया गया है। इस सुसमाचार में हम प्रभु को आठ बार प्रार्थना करते हुए पाते हैं, कभी कभी तो पूरी-पूरी रात (अध्याय 3:21, 5:16, 6:12, 9:18, 29, 11:1, 22:41 तथा 23:34)। सात बार क्रूस पर मरते समय, प्रार्थना करते पाते हैं। उन परिस्थितियों पर विचार करना बड़ा ही अद्‌भुत है जिसमें उसने प्रार्थना की। वे हमारे लिए महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं से भरपूर है। परन्तु मैं अभी इस विषय पर नहीं बोलना चाहता हूँ। मैं केवल यह बताना चाहता हूँ कि ''तू सदा मेरी सुनता है'' (यूहन्ना 11:42)। उसकी प्रत्येक प्रार्थना सुनी गयी - यहाँ तक, जबकि चार दिन से मरे हुए व्यक्ति को जीवित करने का प्रश्न था - तब भी प्रभु इसे पहले से ही जानता था।

परमेश्वर ने उसके विषय दो बार यह शिक्षा दी : ''तू मेरा प्रिय पुत्र है, मैं तुझसे प्रसन्न हूँ'', और. दोनों ही घटनाएं प्रभु यीशु के प्रार्थना करने से संबंधित हैं (लूका 3:21, 22, 9:35) तुलना करें मत्ती 17:5 से। प्रभु यीशु ने कहा ''मेरा भोजन यह है कि मैं अपने भेजने वाले की इच्छा के अनुसार चलूँ और उसका काम करूँ'' (यूहन्ना 4:34), और ''मैं सर्वदा वही काम करता हूँ जिससे वह प्रसन्न होता है'' (यूहन्ना 8:29)। यही कारण है उसकी प्रत्येक प्रार्थना सुनी गयी, क्योंकि जो कुछ उसने मांगा, वह पूर्णतया परमेश्वर की इच्छानुसार तथा परमेश्वर की महिमा के लिए था।

अत: जब कभी हम प्रभु यीशु के नाम से प्रार्थना करते हैं, तो यह निश्चित है कि वह प्रार्थना सुनी जाएगी! क्योंकि हमारी प्रार्थना परमेश्वर के निकट इस प्रकार पहुँचती है, मानो स्वयं प्रभु यीशु की प्रार्थना हो, और यह सदैव सुनी जाती है।

प्रभु यीशु के नाम में की गयी प्रार्थना क्या है ?

निश्चित रूप से अब हम यह अपने आप देख सकते हैं कि ऐसी प्रार्थना का क्या परिणाम होता है। क्या इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ हम चाहें वह प्रार्थना में मांगे, और अन्त में कहें, ''हम सब कुछ प्रभु यीशु के नाम में माँगते हैं'' ? बहुधा बहुत से लोग ऐसा ही समझते और कहते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। प्रभु यीशु के नाम में प्रार्थना करने का अर्थ होता है, उसके अधिकार को लेकर उसके स्थान पर प्रार्थना करना। परन्तु हमारी प्रार्थना में प्रभु यीशु की प्रार्थना के गुण भी परिलक्षित होने चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति किसी पुस्तक विक्रेता के पास जाकर किसी ऐसे व्यक्ति के नाम में एक बाइबल मांगे, जो उस पुस्तक विक्रेता की दृष्टि में एक धर्मपरायण मसीही हो, तो वह विक्रेता तुरन्त उसका विश्वास करने को तैयार हो जाएगा। परन्तु यदि वह उसके नाम में एक गड्डी ताश अथवा कुछ रद्दी उपन्यास मांगे, तो वह पुस्तक विक्रेता उसका विश्वास नहीं करेगा। क्यों ? क्योंकि वह पुस्तक विक्रेता उस धर्मी व्यक्ति को जानता है, वह जानता है कि वह व्यक्ति कभी भी ऐसी वस्तु लाने की आज्ञा नहीं दे सकता, और इस प्रकार से वह व्यक्ति जो उस वस्तु की मांग कर रहा है, वह धर्मी के नाम से नहीं कर रहा है।

अत: यह आवश्यक है कि प्रभु यीशु के नाम में की गयी प्रार्थना में, स्वयं प्रभु द्वारा की गयी प्रार्थना के गुण दिखायी देने चाहिए - पूर्ण अधीनता - ऐसी प्रार्थना जिसमें परमेश्वर की महिमा दिखलाई दे और वह पूर्णत: परमेश्वर की इच्छा में हो।

सुनी जाने वाली प्रार्थना की शर्तें

यूहन्ना 15:7 में प्रभु कहता है : ''यदि तुम मुझमें बने रहो, और मेरी बातें तुममें बनी रहें तो जो चाहो मांगो, और वह तुम्हारे लिए हो जाएगा।'' यहाँ पर हमें सबसे बड़ा आश्वासन मिलता है कि हम जो चाहें, परमेश्वर हमें देगा। यहाँ पर किसी प्रकार का कोई अपवाद नहीं। क्या इससे भी अधिक कोई चीज हो सकती है कि ''जो चाहो ?'' ''तुम मुझसे जो चाहो मांगो, और वह तुम्हारे लिए हो जाएगा!'' किन्तु इस आश्वासन के साथ एक शर्त भी है कि ''यदि तुम मुझमें बने रहो और मेरी बातें तुममें बनी रहें।'' यदि हम चाहते हैं कि हमारी प्रार्थनाएं अवश्य सुनी जाएं तो यह वह शर्त है जिसे हमें पूरी करनी होगी। यदि हम प्रभु यीशु में बने रहते हैं तो हम अधिकाधिक उसकी समरूपता में बदलते जाएंगे।

यदि उसके वचन हममें बने रहें, तो हमारी भावनाएं, जिसमें हम रुचि रखते हैं वे प्रभु की भावनाओं, उसकी रूचि और उसकी इच्छा के अनुसार होगी। और हम जानते हैं कि ये परमेश्वर की सिद्ध इच्छा के अनुसार है। और ठीक यही प्रतिज्ञा यूहन्ना 16:23-27 में दी गयी है, ''इसलिए कि तुमने मुझसे प्रीति रखी है और यह भी प्रतीति की है, कि मैं पिता की ओर से निकल आया।''

इब्रानियों 11:6 हमारे सामने एक और शर्त रखता है। ''परमेश्वर के पास आने वाले को विश्वास करना चाहिए कि वह है।'' ''पर विश्वास से मांगें और कुछ सन्देह न करें। क्योंकि संदेह करने वाला समुद्र की लहर के समान है जो हवा से बहती और उछलती है। ऐसा मनुष्य यह न समझे कि मुझे प्रभु से कुछ मिलेगा'' (याकूब 1:6, 7)। परमेश्वर हमारे विश्वास के

अनुसार उत्तर देता है। वह उस प्रार्थना का उत्तर कैसे दे सकता है जबकि प्रार्थी को यही भरोसा न हो कि जो कुछ उसने मांगा है परमेश्वर उसे करेगा ?

मत्ती 21:21, 22 में प्रभु यही बात कहता है। किन्तु वह इसमें आगे कहता है कि प्रार्थना में विश्वास दिखलाई देना चाहिए। एक बार रस्से पर चलने वाले एक कलाकार ने कसे हुए एक रस्से पर चलकर नायग्रा प्रपात को पार किया। उसने पुन: एक पहिया गाड़ी पर चढ़कर तथा आदम-कद एक गुड़िया को लेकर उसे पार किया। तब उसने दर्शकों से पूछा कि क्या उनको यह विश्वास है कि वह एक जीवित व्यक्ति को भी लेकर पार कर सकता है। वे सभी एक स्वर में चिल्लाए-'हाँ, विश्वास है!' - किन्तु जब उसने उनमें से किसी एक को स्वेच्छा से आने को कहा कि वह उसे लेकर पार करे, तो इसके लिए किसी में भी साहस न रहा।

इसीलिए प्रभु यीशु, न केवल विश्वास रखने के विषय में कहता है बल्कि विश्वास के प्रमाण के विषय में भी कि उसमें विश्वास है - वह प्रमाण जो इसमें दिखलाई दे कि जब वह पर्वतों से कहे कि ''जा, तू उखड़कर समुद्र में जा गिर'' तो वह जा गिरे।

प्रार्थना के उत्तर में बाधाएं

ऐसी क्या बात है कि बहुत सी प्रार्थनाओं के उत्तर हमें नहीं मिलते ? पवित्रशास्त्र हमें इसके बहुत से कारण बतलाता है।

दानिय्येल 10 अध्याय ने हमें बतलाया है कि कभी कभी अच्छी प्रार्थनाओं के उत्तर भी तुरन्त नहीं मिलते। शैतान अपना पूरा प्रयास करता है कि वे प्रार्थनाएं अनुत्तरित (बिना उत्तर) रहें। अन्त में वह ऐसा नहीं कर सकता, किन्तु जब परमेश्वर स्वयं ऐसा होने देता है तो शैतान सीधा उत्तर मिलने में विलंब करवाता है। ऐसा कभी कभी इसलिए होता है, क्योंकि परमेश्वर कभी कभी ऐसा होने देता है कि वह हमारे विश्वास और धैर्य की परख करे।

इसके अतिरिक्त हमारे साथ कुछ अन्य कारण भी हो सकते हैं जिनके कारण परमेश्वर हमारी प्रार्थनाओं के उत्तर नहीं देता। यशायाह 59:2 में इस्राएल से कहा गया है: ''तुम्हारे पापों के कारण उसका मुँह तुमसे ऐसे छिपा है कि वह नहीं सुनता।'' भजनकार कहता है, ''यदि मैं मन में अनर्थ बात सोचता, तो प्रभु मेरी न सुनता।'' और 1 यूहन्ना 3:21, 22 में हम पढ़ते हैं : 'यदि हमारा मन हमें दोष न दे, तो हमें परमेश्वर के सामने हियाव होता है। और जो कुछ हम मांगते हैं, वह हमें उससे मिलता है, क्योंकि हम उसकी आज्ञाओं को मानते हैं, और जो उसे भाता है वही करते हैं।''

पवित्रशास्त्र ऐसी बहुत सी चीजों के नाम लेकर हमें बतलाता है जो हमारी प्रार्थनाओं के उत्तर मिलने में बाधक होती हैं।

मरकुस 11:22-26 में क्षमा न करने की प्रवृत्ति का वर्णन पाया जाता है (इफिसियों 4:32 भी देखें)। परमेश्वर के पास हमारी पहुँच इस तथ्य पर आधारित है कि परमेश्वर ने प्रभु यीशु में हमारे सभी पापों को क्षमा कर दिया है। यदि हमने अपने विरोधी को हृदय से क्षमा नहीं किया, तो फिर हमें कैसे हियाव हो सकता कि हम परमेश्वर के पास जा सकें ?

याकूब 4:3 कहता है : ''तुम मांगते हो और पाते नहीं, इसलिए कि बुरी इच्छा से मांगते हो ताकि अपने भोग-विलास में उड़ा दो।''

यदि हम परमेश्वर से ऐसी चीजें मांगे जो हमारी शारीरिक अभिलाषा एवं पुराने स्वभाव को तृप्त करने के लिए हो - तो परमेश्वर भला ये चीजें हमें कैसे दे सकता है ? परमेश्वर को हमारे पुराने मनुष्यत्व (स्वभाव) से घृणा है, और वह उसको क्रूस पर दण्डित कर चुका है (रोमि. 8:3)। वह हमसे अनुरोध करता है कि हम अपने आप को पाप के लिए मरा हुआ समझें (रोमि. 6:11), तथा अपने उन अंगों को मार डालें जो पृथ्वी पर है (कुलु. 3:5-17)। ''परन्तु वे जो मसीह यीशु के हैं, उन्होने शरीर को उसकी लालसाओं और अभिलाषाओं समेत क्रूस पर चढ़ा दिया है'' (गल. 5:24)। इन चीजों की मांग करना क्या इन बातों की ओर संकेत नहीं करता कि हममें प्रभु यीशु के वचन बने हुए नहीं हैं (यूहन्ना 15:7) ? और क्या यह इस बात का संकेत नहीं कि हमारा झुकाव पूर्णरूप से प्रभु यीशु तथा परमेश्वर की इच्छा के विपरीत है ?

1 पतरस 3:1-7 एक अन्य रुचि प्रस्तुत करता है। पारिवारिक जीवन में हमारे आपसी संबंध (पति तथा पत्नी के बीच, माता तथा बच्चों के बीच, एक बच्चे तथा दूसरे बच्चे के बीच) ऐसे हो सकते हैं जो हमारी प्रार्थना के उत्तर में बाधक हो सकते हैं। जबकि हमारे परिवारों में कुछ भी ठीक नहीं, जबकि अभी भी कुछ ऐसे प्रश्न रह गये हैं जो हल नहीं किये जा सके हैं!

उसकी इच्छानुसार प्रार्थना करना

हाँ, सर्वप्रथम हमें परमेश्वर के प्रकाश में अपने आप को जांचना चाहिए, और जो कुछ प्रभु की दृष्टि में उचित नहीं, उन सबके लिए पश्चाताप करना चाहिए और जहाँ तक मनुष्यों का संबंध है, उनके समक्ष भी उनको मानते हुए आत्म-परख के द्वारा अपने आप को शुद्ध करना चाहिए। तभी हमें परमेश्वर के सामने जाने का हियाव हो सकता है।

यदि हम चाहते हैं कि जो कुछ हम प्रार्थना में मांगे वह निश्चित रूप से हमें मिल जाए तो हमें उसकी इच्छानुसार मांगना चाहिए। और हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारे पिता की इच्छा क्या है ? उसने अपनी इच्छा अपने वचन के द्वारा हम पर प्रकट की है, और जब हम पवित्रशास्त्र के द्वारा प्रतिदिन उसकी संगति में बने रहते हैं तो हम उसके वचन से उसकी इच्छा को जान सकते हैं। इसलिए प्रतिदिन उसके वचन को पढ़ना अति-आवश्यक है। उदाहरण के लिए परमेश्वर ऐसी प्रार्थना का उत्तर कैसे दे सकता है जिसमें कि मांगी गयी वस्तु उसने बहुत

पहले से दे रखी है, जैसे पवित्र आत्मा का उण्डेला जाना, जबकि पवित्रशास्त्र स्पष्ट रूप से दिखाता है कि। पवित्र आत्मा उण्डेला जा चुका है और अब वह पृथ्वी पर मण्डली (कलीसिया) में तथा व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक विश्वासी में निवास करता है! अथवा हम यह प्रार्थना करें कि वह हमें हमारे भीतर बसे पाप से छुटकारा दे, जबकि वह उसे पहले ही प्रभु यीशु में क्रूस पर दण्ड की आज्ञा दे चुका है (रोमि. 8:3, 2 कुरि 5:21)।

वचन के द्वारा प्रतिदिन उसके साथ संगति रखने के द्वारा हम परमेश्वर की इच्छा को जानना सीखते हैं। और इस प्रकार हम उसी इच्छानुसार प्रार्थना कर सकते हैं ताकि हमें यह भरोसा हो सके कि जो कुछ हमने प्रार्थना में मांगा है वह हमें मिलेगा।

निरन्तर प्रार्थना

परन्तु, क्या केवल वही परिपक्व विश्वासी प्रार्थना कर सकता है जिसने परमेश्वर के वचन का पर्याप्त अध्ययन कर रखा है ?

सौभाग्य से ऐसा नहीं है! क्या माता-पिता अपने बच्चे से यह कह सकते हैं कि वह उनसे कोई चीज न मांगे जब तक कि वह समझदार न हो जाए, क्योंकि बच्चा अभी बेतुकी और मूर्खतापूर्ण वस्तुएं मांगता है ? ओह, नहीं! वे तो खुश होते हैं जब उनका बच्चा उनके पास आकर कुछ मांगता है। बच्चे का विश्वास करना ही प्रमाण है कि वे उसके माता-पिता हैं, जिनके बगैर वह रह नहीं सकता और उनमें उसका भरोसा भी है तथा उसे विश्वास है कि वे उससे प्रेम करते हैं तथा उसकी चिंता करते हैं - यद्यपि प्राय: वह इन सभी चीजों पर पूर्ण ध्यान नहीं देता।

जब हम अपने पिता परमेश्वर के पास आते हैं तो वह बड़े ही आनन्द के साथ इसे सुनता है। क्या हम उसके बच्चे नहीं ? पौलुस जिसका अभी हाल ही में मन-परिवर्तन हुआ था, उसके विषय में परमेश्वर ने कहा, "देखो, वह प्रार्थना कर रहा है।" यही तार्किक बात ने थिस्सलुनीके के नये विश्वासियों को पौलुस प्रेरित से यह लिखवाया कि "निरन्तर प्रार्थना में लगे रहो।" और यह महान् प्रेरित जिसके प्रचार से उस समय तक लाखों लोग मसीह के पास आ चुके थे, और उसको एक विशेष प्रकाशन मिला था जिसके अन्तर्गत उस पर परमेश्वर की सम्पूर्ण मनसा प्रकट थी, और जो तीसरे स्वर्ग तक उठा लिया गया था और स्वर्गलोक में ऐसी बातें सुनी थीं जो कहने की नहीं (2 कुरि. 12:2-4)। वही प्रेरित इन नये विश्वासियों की प्रार्थनाओं के सामर्थ्य का इतना कायल था कि उसने यह निवेदन किया : 'हे भाईयो हमारे लिए प्रार्थना करो" (1 थिस्स. 5:25)। किसी भी विश्वासी के स्पष्ट वृद्धि का प्रमाण यह कि वह अपने लिए प्रार्थना के अधिकाधिक महत्व को देखने लगे - हाँ, यह कि प्रार्थना बिना सब कुछ व्यर्थ है।

हमारा पिता परमेश्वर हमसे कहता है। "हर एक बात में तुम्हारे निवेदन, प्रार्थना और विनती के द्वारा धन्यवाद के साथ परमेश्वर के सम्मुख उपस्थित किये जाएं।" और यदि हम उससे ऐसी मूर्खतापूर्ण चीज़ें मांगे कि उसका प्रेम हमें वह वस्तु न देने के लिए विवश हो जाए, तब "परमेश्वर की शांति जो समझ से बिल्कुल परे है तुम्हारे हृदय और तुम्हारे विचारों को मसीह यीशु में सुरक्षित रखेगी" (फिलि. 4:6, 7)।

काश, परमेश्वर करे कि मैं और आप, और भी अधिक प्रार्थना के महत्त्व को देख सकें और हम इस असीमित सौभाग्य का अधिक उपयोग कर सकें। तब हमारे हृदय कितने अधिक प्रसन्न होंगे और हमारे जीवनों से कैसी साक्षी प्रवाहित होगी।

हार्दिक अभिवादन के साथ प्रभु में आपका मित्र - एच.एल.एच.

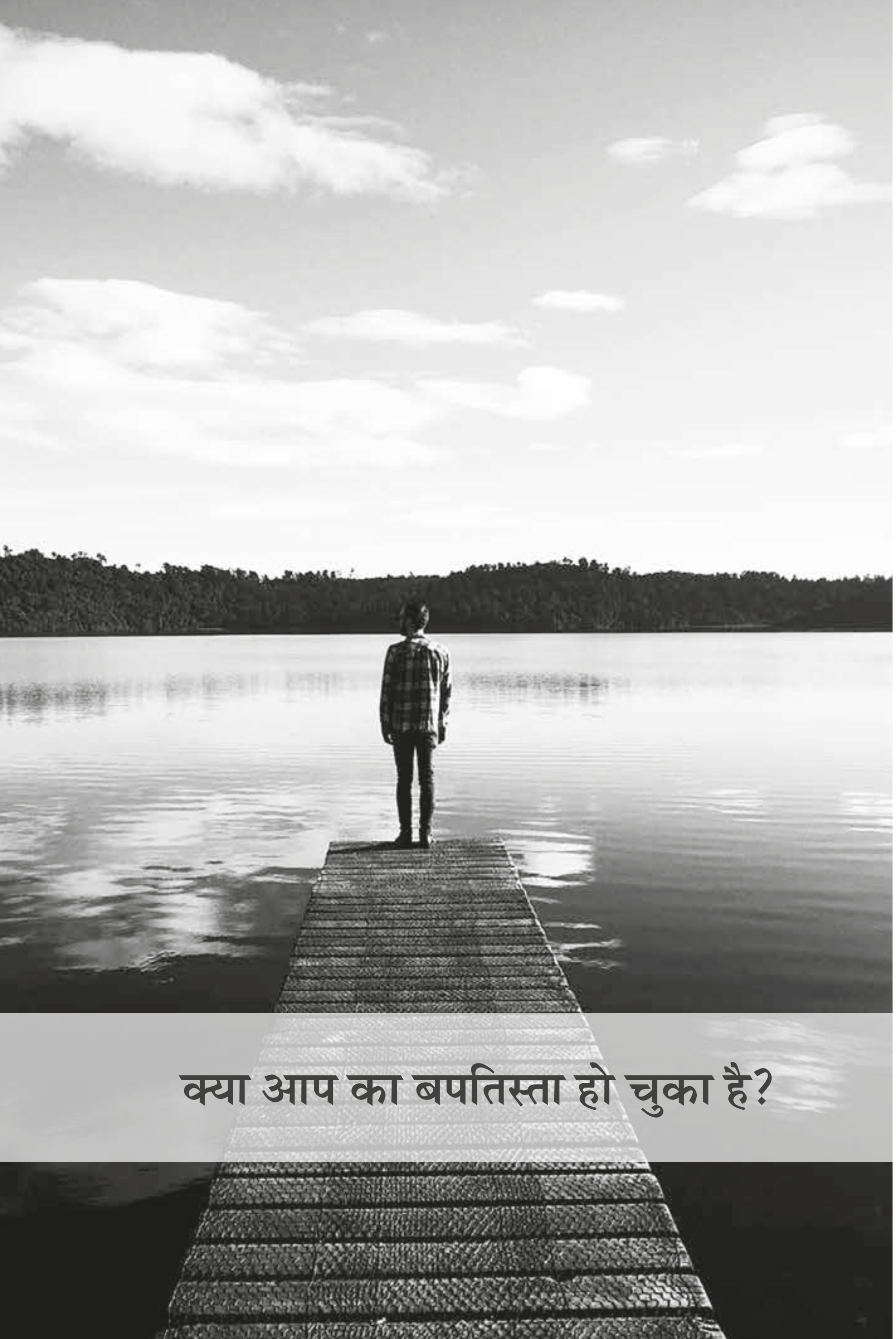

14 क्या आप का बपतिस्ता हो चुका है?

प्रिय मित्र,

मैंने कहा था कि इस समय मैं आप को प्रभु-भोज के विषय में लिखूँ, किन्तु अब कुछ और सोच रहा हूँ जो प्रभु-भोज से पहले आना चाहिए : क्या आप का बपतिस्मा हो चुका है ?

यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ? परमेश्वर का वचन कहता है : ''जो विश्वास करे और बपतिस्मा ले, उसी का उद्धार होगा'' (मरकुस 16:16)। इस प्रकार वह जिसने बपतिस्मा नहीं लिया, उसका उद्धार नहीं हुआ! यही बात पवित्रशास्त्र के अन्य स्थलों पर भी कही गयी है। अत: उदाहरण के लिए 1 पतरस 3:21 में यह कहा गया है : ''और उसी पानी का दृष्टान्त अर्थात् बपतिस्मा अब तुम्हें बचाता हैं।''

यह विचार संभवत: आप को कुछ अजीब और जो कुछ मैंने अपने पहले पत्र में लिखा है, उसके विपरीत जान पड़ता है। यह ऐसा इसलिए है कि लोग ''उद्धार'' का अर्थ प्राय: ''स्वर्ग प्राप्त करने'' या ''मन फिराने और पापों की क्षमा प्राप्त करने'' से लगाते हैं। किन्तु पवित्रशास्त्र में 'उद्धार' शब्द का अर्थ एक अन्य विचार से भी जुड़ा हुआ है। यह प्रेरितों के कार्य 2:40 में बहुत ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है : ''अपने आपको इस टेढ़ी जाती से बचाओ।'' यहाँ इसका अर्थ ''स्वर्ग जाने'' अथवा ''पापों की क्षमा-प्राप्ति'' से कदापि नहीं है। कृपया रोमियों 10:9, 10 भी देखें।

बपतिस्मा का स्वर्ग-प्राप्ति से कोई संबंध नहीं है। परमेश्वर के साथ हमारा शाश्वत संबंध तथा अनन्त निवास की प्राप्ति इस बात पर निर्भर करती है कि क्या हमने परमेश्वर के समक्ष तथा प्रभु यीशु के विश्वासियों के समक्ष अपने पापों को स्वीकार कर लिया है अथवा नहीं। क्रूस पर चढ़ाये गये डाकू ने भी कभी बपतिस्मा नहीं लिया था, फिर भी प्रभु ने उससे कहा तू आज ही मेरे साथ स्वर्गलोक में होगा।

और उसके बाद भी हजारों लोगों ने अपनी मृत्यु-समय पर पश्चाताप करके अपना मन-परिवर्तन किया है, और बिना कोई बपतिस्मा लिये प्रभु यीशु के पास चले गये। परन्तु इस संसार में हमारे दृष्टिकोण से बपतिस्मा एक असाधारण महत्व रखता है।

बपतिस्मा क्या महत्व रखता है।

बपतिस्मा एक ऐसी चीज थी जिसे साधारणतया यहूदी लोग जानते थे। इसके द्वारा, जो कि ''धर्मान्तरित बपतिस्मा'' कहलाता था, एक गैरयहूदी अपने आप को अपने निज लोगों में से

अलग करके इस्राएल में अपना स्थान ग्रहण कर लेता था। यही विचार हम यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के साथ भी पाते हैं। उसने यह प्रचार किया कि यहूदियों पर परमेश्वर का क्रोध निकट आने वाला है (लूका 3:7-9, 16-21)। वे जो उसके वचन को ग्रहण करते थे, बपतिस्मा लेकर अपने आप को अविश्वासियों में से अलग कर लेते थे। प्रभु यीशु ने स्वयं भी अपना बपतिस्मा होने दिया ताकि वह शेष रह गये विश्वासियों के संग अपने को एक करे। वह तो द्वार से भेड़शाले में प्रवेश हुआ (यूहन्ना 10:1-3)।

स्पष्टतया यही विचार हम तथाकथित मसीही बपतिस्मा में भी पाते हैं। मत्ती की पुस्तक में हम पाते हैं कि प्रभु ने अपने को इस्राएल के रूप में प्रस्तुत किया। जब उसने अपने शिष्यों को सुसमाचार-प्रचार हेतु भेजा तो उनसे कहा : ''अन्य जातियों की ओर न जाना, और समारियों के किसी नगर में प्रवेश न करना, परन्तु इस्राएल के घराने ही की खोई हुई भेड़ों के पास जाना'' (मत्ती 10:5, 6)।

परन्तु इस्राएल ने अपने राजा को अस्वीकार कर दिया। तब प्रभु यीशु ने यह प्रकट कर दिया कि स्वर्ग का राज्य प्रकट रूप से अपनी महिमा में स्थापित नहीं होगा, किन्तु असामान्य रूप से - जैसे, कि राजा अनुपस्थित होगा और शत्रु प्रबल हो कर कार्यशील रहेगा (मत्ती 13)। किन्तु उसी समय प्रभु ने यह भी दिखा दिया कि यह राज्य केवल यहूदियों तक ही सीमित नहीं रहेगा। खेत, संसार है और बोने वाला इस खेत में बीज बोता है (पद 37 तथा 38)। तब, जबकि प्रभु निश्चित रूप से अस्वीकार किया गया और उसे ले जाकर क्रूस पर चढ़ा दिया गया, तब उसने अपने शिष्यों को यरुशलेम से दूर गलील में बुलाया। वहाँ उसने उन्हें समस्त जातियों को सुसमाचार सुनाने का अधिकार दिया। वे जो सुसमाचार को ग्रहण करते हैं उन्हें अब इस्राएल में शामिल न किया जाए, बल्कि उन्हें पिता-पुत्र एवं पवित्र आत्मा के नाम में एक बपतिस्मा दिया जाए। क्योंकि अब से परमेश्वर का राज्य उस राजा के व्यक्तित्व में और राजा के चरित्र में आया हुआ है अर्थात् राजा, जो त्रिएक परमेश्वर है, वह संपूर्ण रीति से प्रकट हुआ है और उसके पास -त्रिएक परमेश्वर के पास आने के सिवाय अब अन्य कोई चारा या मार्ग नहीं हो सकता। चूँकि इस पृथ्वी पर परमेश्वर केवल प्रभु यीशु के द्वारा ही जाना जाता है जैसा कि पवित्रशास्त्र भी बतलाता है, अत: विश्वासी लोग उसके नाम में बपतिस्मा लेते हैं।

क्रूसित प्रभु यीशु का बपतिस्मा

1 कुरिंथियों 10:2 स्पष्ट कर देता है कि ''किसी के नाम का'' बपतिस्मा लेने का क्या अर्थ है। इसका अर्थ होता है, किसी के साथ एक होना, अर्थात् उस व्यक्ति का स्थान लेना। इस्राएलियों ने बादल में और समुद्र में मूसा का बपतिस्मा लिया था। इसी प्रकार हमने भी प्रभु यीशु के नाम

का बपतिस्मा लिया है (प्रेरि. 19:5, आदि)। किन्तु हमने जीवित एवं महिमान्वित प्रभु का स्वर्ग में बपतिस्मा नहीं पाया। निश्चित रूप से हम उस प्रभु से जुड़ चुके हैं। हम उसकी संगति अभी भी प्राप्त कर सकते हैं, और अनन्त में हम उसकी उस महिमा में भी सहभागी होंगे जो उसको, क्रूस पर किये गये अपने कार्य के दवारा प्राप्त है। परन्तु यह संसार उसे, उसके जी उठे और महिमान्वित रूप में नहीं देखता। इसने तो उसका अन्तिम दर्शन केवल उसके क्रूस पर, तथा उसके गाड़े जाते समय किया था। संसार के लिए तो वह एक ऐसा व्यक्ति है जो क्रूस की एक घृणित मृत्यु मरा और गाड़ दिया गया हाँ, वह जिसे इस संसार ने मार डाला।

हमने अब उसी क्रूसित मनुष्य को ग्रहण किया है! परमेश्वर ने उसको पहचानने में हमारी सहायता की है, कि उद्धार केवल उसी के नाम, अर्थात् उसी तिरस्कृत नाम से मिल सकता है (प्रेरि. 4:11, 12)। हमने उसी के द्वारा पापों की क्षमा और अनन्त जीवन पाया है। अनन्त में हम उसके स्थान और उसकी महिमा के भागीदार होंगे। अत: अब हम उसके साथ उसके उस स्थान को इस संसार में भी लेना चाहते हैं - उसी तिरस्कृत स्थान को।

यह परमेश्वर की पूर्व मनसा के अनुसार है। ''जबकि हम उसके साथ दु:ख भी उठाएं कि उसके साथ महिमा भी पाएं'' (रोमि. 8:17)।

सारा संसार उस दुष्ट के वश में पड़ा है

(1 यूहन्ना 5:19)

परमेश्वर ने आदम को दोषरहित शुद्ध रूप से रचा। परन्तु आदम, परमेश्वर की आज्ञा न मानकर पापी ठहरा। **उसकी सन्तानें आपस में संगठित हो गयी कि वे परमेश्वर के विरुद्ध शक्तिशाली होकर पृथ्वी पर पड़े शाप को और उस बुराई के परिणाम को निष्फल कर दें।** कैन के प्रथम नगर का निर्माण किया। उसकी सन्तानें आविष्कारक निकली और अपने जीवन को और भी सुखद बनाया। **अन्त में मनुष्य एक साथ इस प्रकार से संगठित हो गये कि वे मिलकर शक्तिशाली एवं सामर्थी बन सकें** (उत्पत्ति 11:4)। और इसी प्रकार से संसार अर्थात् मानव-संगठित समाज का उदय हुआ।

परन्तु परमेश्वर को इस संसार का ध्यान था। उसने नूह के द्वारा चेतावनी दी। जल-प्रलय के पश्चात् इस शुद्ध की गयी धरती पर उसने एक नया आरंभ किया। और जब यह नयी मानवता परमेश्वर से फिर कर मूर्तिपूजा में लग गयी, तब उसने इब्राहीम को अलग करके उससे बातें की तथा अन्य जातियों से उसकी सन्तान को अलग करके उन्हें अपनी व्यवस्था एवं विधान प्रदान किया, और उनके साथ वाचा बांधकर उन्हें अपने देश, अर्थात् इम्मानुएल के देश में ले आया।

हम इसके परिणाम को जानते हैं। वे भी परमेश्वर से दूर हो गये, यद्यपि परमेश्वर उनसे ताड़ना के द्वारा, न्यायियों के द्वारा, राजाओं के द्वारा और नबियों के द्वारा बातें करता रहा।

तब परमेश्वर ने अपने पुत्र को भेजा। उसने चाहा कि वह उनके पापों को क्षमा करें और प्रभु यीशु में होकर उनसे मेल कर ले। ''परमेश्वर ने मसीह में होकर अपने साथ संसार का मेल-मिलाप कर लिया और उनके अपराधों का दोष उन पर नहीं लगाया'' (2 कुरि. 5:19)। परन्तु बजाए इसके कि संसार परमेश्वर के बढ़े हुए इन हाथों को स्वीकार करता, उसने प्रभु यीशु को अस्वीकार कर दिया। ''हम कभी नहीं चाहते कि यह मनुष्य हम पर शासन करें।'' उसको इसलिए दोषी ठहराया गया, क्योंकि वह परमेश्वर का पुत्र था। उन्होंने उसे क्रूस पर चढ़ाया, और जहाँ तक उनकी जिम्मेदारी का प्रश्न है, उन्होंने उसको कायरतापूर्वक मार डाला।

क्रूस दिये जाने के समय सम्पूर्ण विश्व संगठित होकर प्रभु के विरुद्ध हो गया था। हेरोदेस और पिलातुस मित्र बन गये। महायाजक और शास्त्री जो तत्कालीन संसार की सबसे बड़ी धार्मिक शक्ति थे, रोमी साम्राज्य से, जो कि उस समय का सबसे बड़ा नागरिक एवं राजनैतिक शक्ति-केन्द्र था, मिल गये। क्रूस के ऊपर लिखा गया अभिलेख संसार की तीन प्रमुख भाषाओं में लिखा गया था। और सभी ने परमेश्वर के विरुद्ध अपने इस युद्ध में शैतान के निर्देश का पालन किया। क्रूस के समीप आकर संसार की पूरी कलई खुल गयी – न केवल उन मनुष्यों की जो वहाँ उपस्थित थे, अपितु मानवता (मनुष्यत्व) की, उस मानव-संगठित-समाज की भी। इस समाज के पास जो भी साधन था उसने उसे परमेश्वर के विरुद्ध युद्ध में लगा दिया। इस संसार के लिए अब और अनुग्रह शेष नहीं है। इस क्रूस के पश्चात् परमेश्वर अब और कोई छूट नहीं देगा। अब तो इस संसार के हिस्से में मात्र न्याय (दण्ड) शेष रह गया है, और अब तो परमेश्वर इसका निष्पादन बड़ी कठोरता के साथ करेगा। इसका वर्णन प्रकाशितवाक्य 6 से लेकर 22 अध्यायों में करता है।

यदि परमेश्वर अभी तक दण्ड को कार्यरूप नहीं दे सका है तो इसका कारण यह है कि वह अभी भी कुछ लोगों पर अनुग्रह किये हुए है। वह इन व्यक्तियों को **आज्ञा देता है** कि वे मन फिरायें और उनसे **कहता है**, ''आओ, मुझ से मेल कर लो।''

मसीह का क्रूस

क्रूस के निकट परमेश्वर ने इस संसार को क्रोध भरी दृष्टि से देखा था। वह करता ही क्या, जबकि उसके पुत्र की निन्दा और उसका अपमान इस प्रकार से किया जा रहा था! किन्तु उस समय इस पृथ्वी पर एक ऐसा स्थान भी था जिसे परमेश्वर ने बड़े प्यार और बड़ी प्रसन्नता के

साथ देखा। वह स्थान तो वह क्रूस था जिस पर एक व्यक्ति टंगा हुआ था। **और उस समय समस्त संसार और उसका प्रत्येक भाग उस क्रूस पर लटके हुए व्यक्ति के विरुद्ध संगठित था, और इसमें कोई दो राय नहीं कि परमेश्वर उस क्रूस पर लटके हुए की ओर था।**

ऐसी स्थिति रही है पृथ्वी पर क्रूस के बाद : एक ओर तो संसार है जिसने मसीह को मार डाला और जोकि उसके क्रूस पर चढ़ाये जाने और उसके गाड़े जाने के अतिरिक्त और कुछ जानता ही नहीं; दूसरी ओर वह क्रूस, वे लोग हैं जो उसके साथ एक हो गये हैं।

परमेश्वर अभी भी व्यक्तिगत रूप से लोगों को अपना अनुग्रह प्रदान करता है – किन्तु केवल प्रभु यीशु ही के द्वारा। परमेश्वर ने उसी यीशु को...प्रभु भी ठहराया और मसीह भी (प्रेरि. 2:36)। केवल उस क्रूसित पर विश्वास लाने और उसे प्रभु करके स्वीकार करने के द्वारा ही उद्धार है, और इस प्रकार से उसने न्याय (दण्ड) से बचने का मार्ग सम्भव कर दिया है। ''परन्तु हम तो उस क्रूस पर चढ़ाए हुए मसीह का प्रचार करते हैं जो यहूदियों के निकट ठोकर का कारण, और अन्य जातियों के निकट मूर्खता है। परन्तु जो बुलाए हुए है क्या यहूदी, क्या यूनानी, उनके निकट मसीह परमेश्वर की सामर्थ्य, और परमेश्वर का ज्ञान है'' (1 कुरि. 1:23, 24)।

अब आप ने प्रभु यीशु को एकमात्र ऐसा आधार मानकर स्वीकार किया है जिसके द्वारा एक पापी मनुष्य परमेश्वर के निकट जा सकता है और अपने पापों से क्षमा प्राप्त कर सकता है। परन्तु आपने उसे अपना प्रभु करके भी स्वीकार किया है। और आप सदाकाल के लिए उसके साथ एक रहेंगे तथा **उसके क्रूस पर किये गये सभी कार्यों के भागीदार होंगे।**

परन्तु यह आप के पार्थिव जीवन के लिए क्या अर्थ रखता है ? निश्चित रूप से इसका अर्थ यह है कि आप यह मानते हैं कि प्रभु को क्रूस पर चढ़ाकर समस्त संसार ने गलती की। और इसका अर्थ यह है कि यदि मैं इसे इस प्रकार से प्रस्तुत करूँ तो आप संसार की ओर से निकलकर प्रभु यीशु की तरफ अर्थात् परमेश्वर के परिवार में आ जाएं। परन्तु यह अंगीकार खुलेआम होना चाहिए। केवल इतना ही काफी नहीं है कि आप इसे अपने हृदय में चुपके से कर ले! बाहरी रूप से भी यह प्रकट होना चाहिए कि अब आप खुले आम डंके की चोट पर संसार से अलग हो गये हैं। इसीलिए इस्राएल को मेम्ने के लहू की शरण लेना पर्याप्त न था। उनको तो मिस्र भी छोड़ना था। और उनको लाल सागर पार कर लेने के पश्चात् ही परमेश्वर का वचन 'उन्हें छुड़ाये हुए' अथवा बचे हुए लोगों की संज्ञा प्रदान करता है। हमने 1 कुरिन्थियों 10 में देखा है कि लाल सागर से होकर पार होने वाला अनुच्छेद बपतिस्मे का चित्रण है। अत: बपतिस्मे के द्वारा हम सार्वजनिक रूप से प्रभु यीशु के पक्ष में खड़े होते हैं जिसे इस संसार ने

तिरस्कृत करके क्रूस पर चढ़ा दिया। यह व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति के लिए उसके विश्वास का सच्चा अंगीकार है। क्योंकि उसके द्वारा हम सार्वजनिक रूप से यह कहने लगते हैं कि हम उस क्रूसित यीशु को अपना प्रभु स्वीकार करते हैं तथा संसार के विरुद्ध यीशु के पक्ष में आना चुन लेते हैं। ''क्या तुम नहीं जानते कि हम जितनों ने मसीह यीशु का बपतिस्मा लिया, तो उसकी मृत्यु का बपतिस्मा लिया'' (रोमियों 6:3) ?

तब परमेश्वर अपने राज्य में हमें इस प्रकार से देखता है कि हम इस पापी संसार, जो न्यायशासन के तले पड़ा हुआ है-उसको छोड़ कर मसीह की ओर आ गये जो हमारा मुक्तिदाता है, जो मारा गया और जिसने हमारे दण्ड को अपने ऊपर झेल लिया। अब यहाँ किसी प्रकार की दण्डाज्ञा नहीं! परन्तु छुटकारा : पाप, संसार तथा शैतान की शक्ति एवं व्यवस्था से छुटकारा है। यही कारण है कि हनन्याह ने शाऊल से कहा, ''उठ, बपतिस्मा ले और उसका नाम लेकर अपने पापों को धो डाल'' (प्रेरि. 22:16)।

तो क्या उस समय तक शाऊल के पाप धुले नहीं थे ? जहाँ तक परमेश्वर के साथ उसका अनन्त काल का संबंध का प्रश्न है, वे पाप धुल गये थे। यदि वह अपने बपतिस्मे से पूर्व इस संसार से चल बसा होता, फिर भी वह स्वर्ग में अवश्य होता। हनन्याह उसे भाई कहता है, क्या नहीं कहता ? परन्तु जहाँ तक कि इस पृथ्वी पर परमेश्वर की राज्य-सत्ता का संबंध है, अभी वे अलग नहीं हुए थे। सार्वजनिक रूप से अभी भी वह इस संसार का भागीदार था, जो संसार न्याय (दण्ड) के तले है। इसीलिए 1 पतरस 3 में कहा गया है कि उसी पानी का दृष्टान्त भी अब तुम्हें बचाता है। जैसा कि नूह उस प्रलय रूपी दण्ड के स्थान से निकलकर परमेश्वर की इच्छानुसार एक उत्तमस्थान, अर्थात् शुद्ध भूमि पर पहुँचा (उत्पत्ति 8:21)। इस प्रकार से हम बपतिस्मे के जल से होकर जोकि क्रूस के पास पाप पर परमेश्वर के दण्ड को दर्शाता है, हम उस स्थान पर जाते हैं जहाँ प्रसन्नतापूर्वक परमेश्वर की आँखें लगी रहती हैं, अर्थात् यीशु, जो मरा वह स्थान! इसीलिए प्रेरितों 2:40 में पतरस कहता है ''अपने-आप को इस टेढ़ी जाति से बचाओ'', और यह कि क्यों जिन्होंने वचन को ग्रहण किया था, बपतिस्मा लिया।

और अब मैं पुनः पूछूँगा कि क्या आप ने बपतिस्मा लिया है ? यदि नहीं तो अभी आप इस संसार में मसीही नहीं ठहरे, क्योंकि अभी आपने सार्वजनिक रूप से उस मसीही दृष्टिकोण को नहीं अपनाया जिसके लिए परमेश्वर का वचन मान्यता प्रदान करता है। चूँकि आपने प्रभु यीशु के विषय में यह जान लिया है कि उसकी मृत्यु से आपने, पापों की क्षमा और अनंत जीवन प्राप्त किया है और जिसके संग आप सदाकाल के लिए उसकी अनंत महिमा में एक रहेंगे, तो क्या

आप इस पृथ्वी पर सार्वजनिक रूप से अंगीकार नहीं करेंगे कि आप उससे सम्बद्ध हैं ? यद्यपि इसे भी संसार तुच्छ जानता और घृणा करता है ?

जिस बात को मैं स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ, उसमें मैने बपतिस्मा के प्रत्येक पहलू को नहीं लिया है। मैंने इसके प्राथमिक अर्थ तक ही अपने आप को सीमित रखा है जोकि निश्चित रूप से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,
प्रभु में आपका भाई,
-एच.एल.एच.

प्रभु-भोज

15 प्रभु-भोज

प्रिय मित्र,

जैसा कि मैंने आपको पिछली बार बतलाया था कि मैं आपको प्रभु-भोज के विषय में लिखना चाहता था।

यह बड़ा ही महत्वपूर्ण है कि मसीहियत के दो बड़े चिरस्थायी विधान, अर्थात् बपतिस्मा और प्रभु भोज दोनों ही हमारी सहभागिता को उस प्रभु के साथ दर्शाते हैं जिसने हमारे लिए अपना प्राण दे दिया। जैसा कि हमने पहले ही देख लिया है कि बपतिस्मे का संबंध हमारी सांसारिक बाहरी स्थितियों से है इसलिए यह पूर्णत: एक व्यक्तिगत मामला है। यद्यपि, जैसा कि प्रेरितों 2 अध्याय में तीन हजार लोगों ने तत्काल बपतिस्मा लिया था, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह उसका व्यक्तिगत मामला है। इसमें किसी की एक दूसरे के साथ संगति नहीं होती। दूसरे तरफ प्रभु भोज, जो स्वयं भी इस पृथ्वी पर तक के लिए ही है, मसीह की देह के रूप में हमारी आन्तरिक स्थिति से संबंध रखता है। इसलिए यहाँ पर संगति अथवा सहभागिता का एक विशेष महत्व है। यदि कोई व्यक्ति रोटी और प्याला में भाग लेकर प्रभु भोज की रस्म को अकेले पूरा करे तो यह पूर्णरूप से परमेश्वर के वचन के विरुद्ध होगा। तब प्रेरित पौलुस ने भी जिसको मण्डलियों और उनकी एकता को प्रकट करने का विशेष अधिकार दिया गया था, कहा : ''क्योंकि मसीह ने मुझे बपतिस्मा देने के लिए नहीं भेजा है'' (1 कुरिन्थियो 1:17), यद्यपि उसने स्वयं भी बपतिस्मा लिया था और यदा-कदा दूसरों को भी बपतिस्मा दिया था। किन्तु उसी पत्री में वह आगे कहता है कि प्रभु-भोज के सन्दर्भ में प्रभु की ओर से उसे विशेष प्रकाशन मिला है (1 कुरिन्थियों 11:23), और इस विषय के लिए वह अपने को दो अध्यायों के लिए समर्पित कर देता है।

जो व्यक्तिगत संबंध रखने वाली बात है, पवित्रशास्त्र में उसका मुख्य स्थान है। प्रत्येक मनुष्य को व्यक्तिगत रूप से परमेश्वर के पास आना चाहिए, व्यक्तिगत रूप से प्रभु यीशु तथा उसके लहू पर विश्वास करना चाहिए और उस क्रूसित प्रभु के साथ उसके तिरस्कृत स्थान को भी (बपतिस्में में) व्यक्तिगत रूप से लेना चाहिए। रोमन कैथोलिक चर्च की बड़ी भूलों में से यह एक है कि वह उस व्यक्तिगत पहलू को अस्वीकार कर प्रत्येक चीज को चर्च का मामला बना देता है - '' 'चर्च' (कलीसिया) से अलग होकर मनुष्य का उद्धार नहीं।'' दूसरी ओर 'प्रोटेस्टैण्ट चर्च' (कलीसिया) की बड़ी त्रुटियों में से एक यह है कि वह व्यावहारिक रूप से सामूहिक पहलू की उपेक्षा करता है : यह हर चीज को व्यक्तिगत रूप से देखता है और

परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार उसके साथ मिलकर कार्य करता है, जिसके विचार उससे मेल खाते हैं। परन्तु पवित्रशास्त्र के अनुसार संगति के साथ एक बड़ी आशीष भी जुड़ी हुई है।

यह मात्र एक संयोग की बात नहीं थी कि प्रभु के शिष्य एक स्थान पर इकट्ठे थे, और प्रभु यीशु ने प्रभु-भोज का संस्थापन कर दिया। इसका एक खास कारण था। प्रभु-भोज का उद्देश्य प्रभु के स्मरण में उसकी मृत्यु की घोषणा करना है। परन्तु इससे भी खास और महत्व की बात है, वह यह कि यह मसीह की देह के साथ किया जाना चाहिए (1 कुरि. 10:16, 17)। इसका सम्पन्न कराये जाने का वह प्रत्येक प्रयास, जिसमें मसीह की देह के प्रत्येक सदस्य के भाग लेने का स्थान न हो, प्रभु-भोज के महत्व को नष्ट करता है। इसके संस्थापन के समय प्रभु ने शिष्यों से बार-बार सामूहिक रूप में बहुवचन में बातें कीं। और इसी को हम 1 कुरिन्थियों 10 तथा 17 अध्यायों में भी पाते हैं जो कि सुसमाचारों से बाहर प्रभु-भोज के संबंध में वहीं एक मात्र स्थान देखने को मिलता है।

प्रभु भोज-विधि का संस्थापन

हम इसका वर्णन मत्ती 26, मरकुस 14 तथा लूका 22 में पाते हैं। इनमें से पहले दो स्थलों में हमें यह दर्शाया गया है कि इसका संस्थापन प्रभु के यह कहने के तुरन्त बाद हुआ कि किस प्रकार से यहूदा उसके साथ विश्वासघात करेगा और उसके तुरन्त बाद वह उठकर बाहर चला भी गया था। परन्तु लूका के विवरण से हम यह पाते हैं कि यहूदा प्रभु के भोज के बाद ही बाहर गया। किन्तु लूका हमें कोई कालानुक्रमिक क्रम नहीं बतलाता। उसके पूरे सुसमाचार में हम प्रत्येक वस्तु को उसके नैतिक संबंध में पाते हैं।

इन सभी स्थलों से यह प्रमाणित है कि प्रभु ने इसे फसह के भोज के अंत में ही संस्थापित किया। फसह उस मेम्ने का स्मरण था जो कि एक बार वध हो चुका था (निर्ग. 12), और जिसके द्वारा लोगों को परमेश्वर के दण्ड से छुटकारा मिला था। अब वह क्षण आ पहुँचा था कि वास्तविक फसह का मेम्ना वध हो (1 कुरिन्थियों 5:7), जबकि उसका लहू ''बहुतों के लिए पापों की क्षमा के निमित्त बहाया जाने को था'' (मत्ती 26:27)। प्रभु यीशु को ज्ञात था कि वह इसी रात गिरफ्तार किया जाएगा और तब क्रूस पर चढ़ा दिया जाएगा। उसे ज्ञात था कि ''वह आप ही हमारे पापों को अपनी देह पर लिए हुए क्रूस पर चढ़ जाएगा'' (1 पत. 2:24) और यह कि वह ''हमारे लिए पाप ठहराया जाएगा'' (2 कुरिन्थियों 5:21)। वह इस अर्थ को भी जानता था कि परमेश्वर निश्चय ही त्याग देगा। उसको यह भली प्रकार ज्ञात था कि उसे हमारे छुटकारे के लिए किस प्रकार से पूरी-पूरी कीमत चुकानी है। और हम देखते हैं कि उसके लिए यह क्या अर्थ रखता था, जबकि कुछ ही घंटे बाद शैतान ने गतसमनी के बाग में इन सभी चीजों को

उसकी आँखों के सामने रख दिया, जिससे कि यदि सम्भव हो तो वह ऐसे समय में भी उसे प्रलोभन के द्वारा अनाज्ञाकारिता के पाप में गिरा दे।

ऐसे क्षणों में प्रभु ने अपने मित्रों की संगति चाही। कुछ ही देर बाद वह गतसमनी में उनसे विनती करने लगा है कि, ''तुम यहीं ठहरो और मेरे साथ जागते रहो।'' और उनको सोते हुए पाकर वह दु:खी होकर कहने लगा, ''क्या तुम मेरे साथ एक घड़ी भी न जाग सके ?'' (मत्ती 26:38-40)। अत: ''जिस रात वह पकड़वाया गया'' (1 कुरि. 11:23), उसने प्रभु के भोज का संस्थापन किया।

शिष्यों के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। प्रभु ने बपतिस्में के समान एक प्राचीन रीति विधि को लेकर उसे एक नया तथा गहरा अर्थ इस प्रकार दे दिया कि उसका संबंध स्वयं उससे तथा मृत्यु से हो गया। यिर्मयाह 16:5-7 के अनुसार हम पाते हैं कि यहूदियों में मृत्यु-भोज की प्रथा प्रचलित थी, और इन भोजों में उपस्थित लोग उस मृतक के स्मरण में जो उनका प्रिय था, खाते-पीते थे। परमेश्वर ने स्वयं भी फसह के पर्व का संस्थापन किया था जिसमें लोग उस बलिदान किये गये मेम्ने और परमेश्वर के दण्ड और फिरौन तथा मिस्र से इस्राएलियों के अद्‌भुत छुटकारे को स्मरण रखते थे, जो मेम्ने के लहू के द्वारा संभव हुआ था, ठीक है न ? पुराने नियम में फसह के पर्व के अवसर पर हम प्याले को नहीं पातें, किन्तु प्रभु ने इसे भी उसमें जोड़ दिया (लूका 22:17)। जब वह प्रतीक को समर्पित कर चुका तो उसे उसने एक तरफ रख दिया (लूका 22:18), और प्रतीकात्मक रूप से इसे लेकर नयी रचना के रूप में देता है। ''यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिए दी जाती है : मेरे स्मरण के लिए यही किया करो। इसी रिति...कटोरा भी दिया...'' (पद 19, 20)।

प्रभु भोज का अर्थ

''मेरे स्मरण के लिए यही किया करो।'' इस प्रकार यह प्रभु का एक अनुस्मारक है। किन्तु यह उसके मनुष्य बनने से पहले की महिमा का अनुस्मारक नहीं है, और न ही उसके पार्थिव जीवन का - और यहाँ तक कि न ही उसके क्रूस पर मरने का, और दु:ख भोग का। ''क्योंकि जब कभी तुम यह रोटी खाते, और इस कटोरे में से पीते हो, तो प्रभु की मृत्यु को जब तक वह न आए, प्रचार करते हो'' (1 कुरिन्थियों 11:26)। इसमें प्रयुक्त प्रतीक भी इस बात को पूर्णरूप से सिद्ध करते हैं। जब उसने वह रोटी जो प्रभु के वचनानुसार उसकी देह को दर्शाती है, शिष्यों को दी तो वह तोड़ी गयी। तत्पश्चात् रोटी के अतिरिक्त, प्रभु ने अपने रक्त के प्रतीक के रूप में उन्हें दाखरस दिया। देह और रक्त अलग अलग, मात्र एक ऐसे उद्धारकर्त्ता को बतलाते हैं जिसने अपने को बलिदान कर दिया।

हाँ, प्रभु के भोज का यह महत्त्व है। यह उसके स्मरण में एक संगति का भोज है जो एक बार मर गया था। प्रभु भोज के अवयव कितने मामूली हैं। क्या प्रतिदिन खायी जाने वाली रोटी से बढ़कर कोई और भी साधारण वस्तु हो सकती है जिसे हर कोई खाता है? क्या पश्चिमी देशों में पी जाने वाली दाखरस से बढ़कर कोई और भी साधारण पेय हो सकता है जैसे हमारे यहाँ चाय अथवा कहवा पीते हैं ? किन्तु प्रभु ने इस भोज के साथ क्या अर्थ छिपा रखा है ?

यह वास्तव में एक भोज है। हम उस रोटी में से खाते तथा दाखरस में से पीते हैं। यह अच्छा है कि हम इसे जाने जिससे कि वास्तव में हम खाएं और पीएं कि हम एक छोटा सा रोटी का टुकड़ा और एक बूंद दाखरस ही न लें! इसकी रोटी, एक मामूली रोटी तथा दाखरस, एक मामूली दाखरस होता है और वे यथा रहते हैं। रोटी तथा प्याले के लिए धन्यवाद करने के पश्चात् वे बदल नहीं जाते। यह 1 कुरिन्थियों 11:24 तथा लूका 22:19 से सुस्पष्ट है कि मत्ती 26:26 तथा मरकुस 14:22 में ''आशीष मांगी'' का अर्थ स्तुति एवं धन्यवाद करना होता है। (देखें, डारबी अनुवाद का नोट भी)। हम इसे इफिसियों 1:3 आदि स्थलों से भी देख सकते हैं, यहाँ पौलुस प्रेरित परमेश्वर का धन्यवाद करता है। प्रभु ने मत्ती 14:19 में भी धन्यवाद किया, और निश्चय ही कोई भी यह दावा नहीं कर सकता कि पांच रोटी और दो मछलियां, रोटी तथा मछली नहीं थीं।

तत्त्वपरिवर्तन का रोमन कैथोलिक मत (यह कि याजक (पुरोहित) के सांस्कारिक प्रार्थना से रोटी तथा दाखरस, वास्तव में प्रभु के वास्तविक देह और रुधिर में बदल जाते हैं), तथा द्वितत्त्ववाद का लूथरनमत (यह कि मसीह रोटी के अन्दर, रोटी के साथ तथा रोटी के नीचे सदेह उपस्थित है), ये दोनों ही पवित्रशास्त्र के बिल्कुल विरुद्ध हैं, और वास्तव में ये उस कार्य को जो एक बार पूरा किया जा चुका है, नकारते हैं। अपने विषय में कहते हुए प्रभु बार-बार किसी न किसी दृष्टान्त का उपयोग करता है। यूहन्ना 10 में वह कहता है कि वह ''भेड़ों का द्वार'' तथा ''अच्छा चरवाहा'' है, और यूहन्ना 14 में कि : ''मार्ग और सच्चाई और जीवन में ही हूँ'', इत्यादि। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रभु यहाँ पर दृष्टान्तों का उपयोग कर रहा है।

प्रभु की मृत्यु

इन थोड़े से शब्दों के महत्त्व को कौन समझ सकता है ? उस प्रभु ने मृत्यु को सह लिया। कैसा अनुग्रह, कैसा प्रेम और कैसी दया! कैसा परामर्श दाता! जीवन का राजकुमार, जीवन का स्रोत, मर गया और गाड़ा गया था। कैसा बड़ा साक्ष्य कि उसने पूर्णरूप से हमारा स्थान ले लिया। न केवल हमारे पापों को अपनी देह में ले लिया, बल्कि वह स्वयं भी पाप बन गया।

हाँ, धन्यवाद एवं स्तुति अर्थात् आराधना की कैसी भावना हमारे हृदयों में जागृत हो जाती है, जब हम उसे इस प्रकार देखते हैं। वह हमारे ही लिए मृत्यु तक गया। हमारे प्रति उसका इतना अगाध प्रेम था कि उसने हमारे उद्धार के लिए यह कीमत स्वयं चुकानी चाही। ''क्योंकि प्रेम मृत्यु के तुल्य सामर्थी है, और ईर्ष्या कब्र के समान निर्दयी है। उसकी ज्वाला अग्नि की दमक है, वरन परमेश्वर ही की ज्वाला है। पानी की बाढ़ से भी प्रेम नहीं बुझ सकता, और न महानदी में डूब सकता है। यदि कोई अपने घर की सारी सम्पत्ति प्रेम के बदले दे दे, तो भी वह अत्यन्त तुच्छ ठहरेगी'' (श्रेष्टगीत 8:6, 7; देखें भजन 69:1,2)।

परमेश्वर के प्रति कैसी बड़ी आज्ञाकारिता कि, परमेश्वर की इच्छा पूरी न करने की बजाय मरना बेहतर समझा और कैसी विस्मयकारक एक मृत्यु!! कैसी मनसा कि वह इस स्थान को ले ले। ''यहाँ तक कि वह मृत्यु, हाँ, क्रूस की मृत्यु तक आज्ञाकारी रहा!''

इस सीमा तक प्रभु यीशु मेजबान बनकर हमें अपनी मेज पर आमंत्रित करता है कि हम उसके स्मरण में उसकी मृत्यु का प्रचार कर सकें। नहीं, हम वहाँ इसलिए नहीं आते कि हमें कुछ प्राप्त हो। प्रभु का भोज कोई संस्कार अर्थात् अनुग्रह-प्राप्ति का साधन नहीं है। और न यहाँ पवित्रशास्त्र ही कोई ऐसी बात कहता है। (प्राय: यूहन्ना 6 का उपयोग प्रभु भोज को एक संस्कार प्रमाणित करने के रूप में किया जाता है, और यह कि इसके द्वारा अनुग्रह प्राप्त होता है, फिर भी यूहन्ना 6 प्रभु भोज के विषय में बिल्कुल नहीं कहता, क्योंकि इस समय तक प्रभुभोज का संस्थापन हुआ ही नहीं था। जैसा कि प्राय: प्रभु अनेक स्थानों पर प्रभु भोज के अवसर पर कहता रहा है उस प्रकार से वह यहाँ पर अपनी देह तथा प्याले के विषय में नहीं कहता, बल्कि केवल अपने मांस और लहू के विषय में बात करता है। पूर्ण रूप से यह एक अलग विचार है।) वह महिमान्वित प्रभु हमें अपनी मेज के पास बुलाता है कि हम उसकी उस दुखद मृत्यु को पुन: विचार कर सकें। अनन्त में हम यह भी करेंगे। प्रकाशितवाक्य 5 में हम मेम्ने को उसी प्रकार स्वर्ग में ''वध किया हुआ'' खड़ा देखते हैं जैसे किसी समय प्रभु इस पृथ्वी पर था। और जिस प्रकार से वध किए हुए मेम्ने की दृष्टि से, संपूर्ण स्वर्ग स्तुति एवम् धन्यवाद से भर जाएगा, उसी प्रकार अब वही चीज हमारे मध्य उस समय उत्पन्न हो जाती है जब हम उसकी मृत्यु का प्रचार इस पृथ्वी पर करने लगते है; उसकी ओर देखने से हमारा हृदय प्रेम की गरमाहट से भर जाता है। और गीतों, धन्यवाद की प्रार्थनाओं और शान्त क्षणों के मध्य हमारी धन्यवाद की भावना, आश्चर्य तथा आराधना उस तक पहुँचने लगती है।

यह सुस्पष्ट है कि वहाँ हम एक मसीही के रूप में ही इकट्ठे हो सकते हैं। उस स्थान को केवल वे ही लोग ग्रहण कर सकते हैं जिनको इस बात का पूर्ण निश्चय है कि उनके पाप क्षमा हो चुके हैं और परमेश्वर से उनका मेल हो चुका है। क्या इसमें भाग लेने के द्वारा वे यह एलान नहीं करते कि वे उसके तथा उसके कार्य में उसके साथ सहभागिता रखते हैं (1 कुरिन्थियों 10:16) ? विशेषकर इस स्थान पर, किसी के जीवन में पाया जाने वाला पाप क्या उस पूर्ण किये गये कार्य का इन्कार नहीं है जो उसने एक ही चढ़ावे के द्वारा सर्वदा के लिए सिद्ध कर दिया (इब्रानियों 10:14) ?

और क्या ऐसा नहीं कि इस स्थान पर हमें कोई अन्य भेंट चढ़ाने की आवश्यकता नहीं, परन्तु केवल इसके कि हम स्वयं याजकों के समान एक साथ मिलकर व्यक्तिगत रूप से अपनी स्तुति एवं धन्यवाद की भेंटें–''उन होंठों का फल जो उसके नाम का अंगीकार करते हैं''–(इब्रा. 13:15) चढ़ाएं ? एक साधारण विश्वासी के रूप में आया हुआ प्रेरित और कलीसिया में मुख्य स्थान रखने वाले और वह जिसमें वचन की सेवकाई करने का बहुत बड़ा दान हो, आकर एक साथ अपने संगी आराधकों के साथ आराधना करें।

क्या आपने पहले से प्रभु के निमंत्रण को सुन रखा है ? क्या आप उसके पास गये ?

कब और कितनी बार हमें प्रभु भोज की विधि सम्पन्न करनी चाहिए?

अनन्त में तो हम निरंतर मेम्ने की स्तुति और आराधना करते रहेंगे। कलीसिया के उन प्रथम धन्य दिनों में तो वे प्रतिदिन यरूशलेम में रोटी तोड़ते थे (प्रेरि. 2:46)। किन्तु जब बाद में चलकर परिस्थितियां बदल गयीं, तो वे बजाए प्रतिदिन इकट्ठे होने के, सप्ताह के प्रथम दिन इकट्ठा होने लगे। और परमेश्वर जो इन सब बातों के विषय अपनी इच्छा हम पर प्रकट करना चाहता हैं, अपने वचन में लिखवाता रहा जिससे कि हम उनके विषय में जान सकें। प्रेरितों 20:7 बतलाता है कि भाई लोग रोटी तोड़ने इकट्ठा हुए। यद्यपि पौलुस प्रेरित वहां था, वे पौलुस को सुनने वहां नहीं आये थे। तो भी वे तो एक बड़े उद्देश्य को लेकर वहाँ एकत्र हुए थे; फिर भी पौलुस के लिए यह अवसर था कि वह सभा में बोले। जिस ढंग से ये बातें हमें बतायी गयी हैं उनसे यही प्रतीत होता है कि इस कार्य विशेष के लिए इकट्ठा होने का उनका यही तरीका था।

जब हमने इस अद्‌भुत सौभाग्य को सीमा तक समझ लिया है और हमें यह आज्ञा मिली है कि हम इसमें भाग लें तथा इस सेवा को जारी रखें कि ''जब तक प्रभु न आ जाए हम उसकी मृत्यु का प्रचार करते हैं'' और जब हम अपने प्रिय प्रभु के निमंत्रण को सुनें कि परमेश्वर का पुत्र जिसने मुझसे प्रेम किया और स्वयं को मेरे लिए दे दिया, और जो निवेदन करके कहता है : ''मेरे स्मरण के लिए तुम यही किया करो'', तो क्या हमारे हृदय यथा सम्भव इसे नहीं करेंगे ?

तब फिर ''प्रभु के दिन'' से बढ़कर और कौन सा दिन इसके लिए उपयुक्त हो सकता है जिस दिन वह जीवित हो उठा और जिस दिन लगातार दो सप्ताह तक वह अपने शिष्यों के मध्य प्रकट हुआ जब वे एक साथ एकत्र थे (यूहन्ना 20) ?

अपने को प्रमाणित करना

किन्तु इस संबंध में पवित्रशास्त्र हमसे कहता है कि हम अपने आप को स्वयं जांचें और परखें। वह हमसे यह नहीं कहता कि हम अपने को जांचें कि हम उस स्थान के लिए योग्य है

या नहीं। प्रत्येक मसीही उसके योग्य है। इस पर शक करना प्रभु यीशु के क्रूस पर किये गये कार्य पर शक करना है।

परन्तु यहाँ प्रश्न इस बात का है कि क्या हम इसमें योग्य रीति से भाग लेते हैं। यह सत्य है कि 'प्रभु भोज' एक भोज है, और हम यहाँ मामूली रोटी और मामूली दाखरस में भाग लेते हैं। परन्तु यह प्रभु की मेज है और प्रभु ही इसका मेजबान है। तोड़ी गयी रोटी उसकी देह का प्रतीक है जो हमारे लिए दे दी गयी, और उण्डेला गया दाखरस उसके लहू का प्रतीक है जो हमारे लिए बहाया गया। यदि हम इस सेवा में अपने को अर्पित करते हैं तो हमें इन बातों के प्रति सचेत रहना आवश्यक है। इसके लिए आत्म परीक्षण तथा आत्मनिर्णय आवश्यक है। वह सब कुछ जो पृथ्वी पर इस महापवित्र स्थान के अनुकूल नहीं, तो पहले वह आत्मनिर्णय के समय दूर किया जाना चाहिए।

कुरिन्थियों के लोग इसे भूल गये थे। उन्होंने इसे प्रभु की देह के रूप में अलग नहीं समझा, क्योंकि वे इसके प्रति ऐसा व्यवहार करते जैसे उनका अपना भोजन हो। इसीलिए प्रभु उन्हें ताड़ना देकर उसमें हस्तक्षेप किया। ''इसी कारण तुममें बहुतेरे निर्बल और रोगी हैं, और बहुत से सो भी गये'' (1 कुरिन्थियों 11:30)। जब हम प्रभु के आदर का स्थान नहीं रखते, तो उसे स्वयं ही अपना ध्यान रखना पड़ता है। यह एक गंभीर विचार है ?

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,
हमारे शीघ्र आने वाले प्रभु में आपका भाई,
–एच.एल.एच.

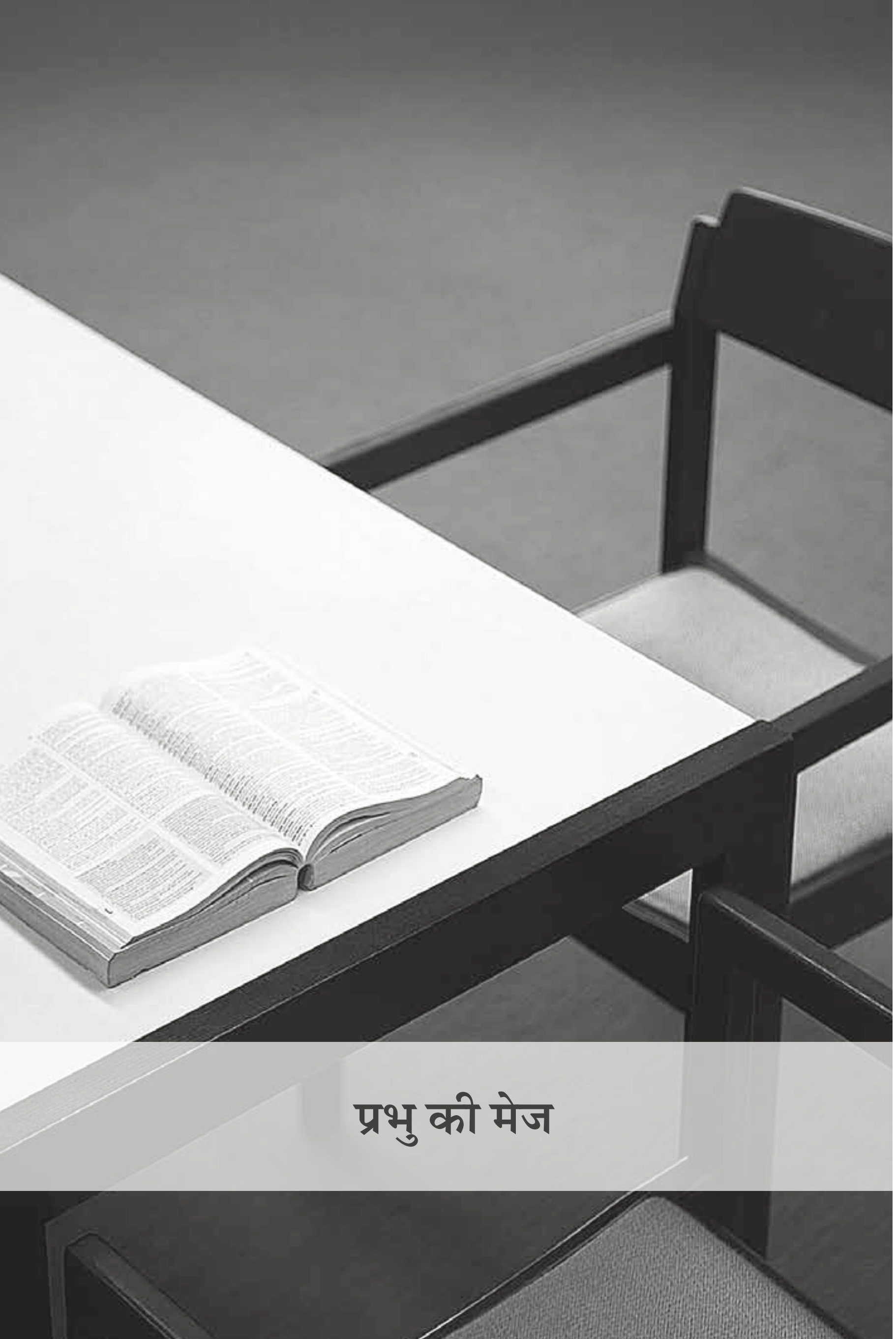

16 प्रभु की मेज

प्रिय मित्रो,

मेरे पिछले पत्र में आपने देखा कि प्रभु भोज के विषय में परमेश्वर का वचन क्या कहता है–विशेषकर सुसमाचारों तथा 1 कुरिन्थियों 11 अध्याय में। हमने देखा कि यह प्रभु यीशु की मृत्यु के स्मरण में दिया जाने वाला एक भोज है। अब मैं प्रभु भोज के एक अन्य पहलू के विषय में कहना चाहूँगा, जो कि 1 कुरिन्थियों 10 अध्याय में पाया जाता है, अर्थात् संगति अथवा सहभागिता के विषय में।

कुरिन्थियों के नाम लिखी गयी अपनी प्रथम पत्री में पौलुस उन अनेक प्रश्नों का उत्तर देता है जो उसे पूछे गये। ऐसा ही एक प्रश्न जो उससे पूछा गया, यह था–कि क्या एक मसीही को मूर्तियों के सामने चढ़ाये गये जानवर के मांस को खाना चाहिए अथवा नहीं। प्रेरित इस प्रश्न का उत्तर अध्याय 8 में देता है और उसी के साथ वह इसे अध्याय 10 में क्रमश: जारी रखता है।

यूनान के कुरिन्थिस नाम नगर में कुछ विश्वासी थे जिनका तर्क यह था : ''एक मूर्ति लकड़ी अथवा पत्थर के अतिरिक्त और कुछ नहीं, अत: मूर्तियों के आगे अर्पित की हुई वस्तुओं को खाने में कोई भी हर्ज नहीं। अत: क्यों न फिर मूर्ति वाले मन्दिर में जाकर खाएं ? परमेश्वर तो केवल एक है, ठीक है न, अत: मूर्तियों का कोई अस्तित्व भी नहीं।'' अथवा ''यहाँ पर जो विवादास्पद बात है, वह है केवल इसका निरर्थक बाहरी रूप। तो फिर क्यों न हम वैसा ही करें, जिससे कि इन मूर्तियों में आस्था रखने वालों को किसी प्रकार की ठोकर न लगे ?''

प्रेरित ने इस बात को माना कि मूर्ति कुछ भी नहीं। परन्तु उसने इस बात की ओर संकेत भी दिया कि मूर्तियों के पीछे दुष्ट आत्माओं का वास है जैसा कि परमेश्वर ने व्यवस्थाविवरण 32:17 में पहले से बतलाया है। अत: इस प्रकार अर्पित किये जाने वाले बलिदान दुष्ट आत्माओं के लिए लाये जाते थे। और तब वह मूर्तिपूजकों तथा साथ ही साथ यहूदियों के बलिदान से यह स्पष्ट करता है कि जिस वेदी पर कोई व्यक्ति बलि चढ़ाता है, अथवा जिस वेदी पर चढ़ाई गयी में से वह खाता है, उससे वह सहभागिता रखता है। व्यक्तिगत रूप से यह कार्य न करते हुए भी कोई व्यक्ति इस बुराई का भागीदार हो सकता है। ऐसे में बुद्धिमत्ता यही है कि हम इनसे दूर ही रहें। ऐसी चीज़ों में भाग लेना अथवा उनमें भाग लेने हेतु मात्र उपस्थित होना जोकि धार्मिक क्षेत्र में अनुचित है, अपने ज्ञान का दुरुपयोग करना है। यह दलील बेकार की है कि जो कार्य अमुक व्यक्ति कर रहा है वह तो मात्र दिखावा है, और उससे उसके हृदय का कोई लगाव

नहीं। न केवल नैतिक कारणों से हमें उससे अलग रहना है, बल्कि इसलिए भी कि इससे मसीह का अनादर होता है, अथवा शैतान की चालों की उपेक्षा होती है। क्या एक मसीही व्यक्ति शैतान की शक्ति से छुड़ाया हुआ नहीं है कि वह जीवित और सच्चे परमेश्वर की सेवा (उपासना) करे ? क्या वह मूल्य चुकाकर खरीदा नहीं गया है कि परमेश्वर की महिमा करे ?

प्रभु की ब्यारी (प्रभु-भोज) के विषय में कुछ कहने तथा इसके उस पहलू को प्रकट करने के पूर्व जो सुसमाचारों में नहीं पाया जाता, पवित्र आत्मा इसे भूमिका के रूप में उपयोग करता है। उस समय यह प्रकट भी नहीं किया जा सकता था, क्योंकि तब न तो कलीसिया अभी अस्तित्व में आयी थी, और न कलीसिया के विषय में शिक्षा का प्रकाशन ही मिला था।

यहाँ कही गयी बातों का महत्त्व इस तथ्य से प्रकट है कि उनका वर्णन पहले किया जा चुका है और तब इसके बाद ही अध्याय 11 में प्रभु-भोज सम्पन्न कराने का वर्णन पाया जाता है। पवित्रशास्त्र किसी बात को जिस क्रम में लेता है, वह सदैव ही बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। यदि कोई 1 कुरिन्थियों 10:15-22 की शिक्षा को नहीं जानता, तो सच्चे अर्थों में उसका प्रभु भोज मनाना असंभव है।

मसीह का लहू और उसकी देह की सहभागिता

''मैं बुद्धिमान जानकर तुमसे कहता हूँ : जो मैं करता हूँ उसे तुम परखो। वह धन्यवाद का कटोरा जिस पर हम धन्यवाद करते हैं, क्या वह मसीह की लहू की सहभागिता नहीं ? वह रोटी जिसे हम तोड़ते हैं, क्या वह मसीह की देह की सहभागिता नहीं'' (1 कुरिन्थियों 10:15, 16) ?

सर्वप्रथम पवित्रशास्त्र हमारे आत्मिक ज्ञान को चाहता है। हमें एक नया जीवन तथा उस पवित्र का अभिषेक मिला है (1 यूहन्ना 2:20), अर्थात् वह पवित्र आत्मा जो हमारे सभी सत्य के मार्ग में अगुवाई करेगा (यूहन्ना 16:13,1 कुरि. 2:9-15)। पवित्रशास्त्र प्रत्येक मसीही से यह अपेक्षा करता है कि वह बुद्धिमानी से चले-अर्थात् यह कि जो कुछ वह करता है उसे वह जाने। यह मसीहियत की भावना के बिल्कुल विपरीत है कि एक मसीही कोई ऐसा कार्य करे जिसे वह न समझता हो, अथवा वह अंधे आवेश में आकर करे।

अब प्रत्येक व्यक्ति जो प्रभु-भोज में भाग लेता है, वह यही कहता है कि वह प्रभु की देह और उसके लहू में सहभागिता रखता है जिसका कि वह रोटी और दाखरस प्रतीक है। परन्तु इतना ही नहीं। उसी समय वह उन सब लोगों के साथ एक हो जाता है जो उसी की भांति उस तत्त्व में भाग ले रहे हैं। इन पदों के अनुसार सहभागिता का अर्थ है भाग लेना-उन सभी विशेषाधिकारों तथा दायित्वों में भाग लेना जो विचाराधीन हैं।

लहू और देह अलग अलग हैं जो उस उद्धारकर्त्ता को दर्शाती हैं जिसने अपना प्राण दे दिया। और इस अनुष्ठान में जिस क्रम में प्रभु-भोज दिया जाता है, उसमें लहू का वर्णन पहले आता है, क्योंकि प्रभु यीशु का लहू प्रत्येक चीज की बुनियाद है।

इस प्रकार यहाँ एक सहभागिता देखने में आती है जिसका निर्माण उन सब लोगों से मिलकर हुआ है जिनका साझा उस उद्धारकर्त्ता में है जो हमारे लिए मर गया। वे उसके लहू में सहभागी हैं। कैसा बड़ा विशेषाधिकार! उसके लहू के द्वारा हम धोये गये (प्रकाशित 1:5), छुड़ाए गये (इफि. 1:7), धर्मी ठहराये गये (रोमि. 5:9), पवित्र किये गए (इब्रा. 13:12), परमेश्वर के लिए मोल लिए गए (प्रकाशित 5:9) और निकट लाये गए (इफि. 2:13)। उसका लहू ''हमें सब पापों से शुद्ध करता है'' (1 यूहन्ना 1:7)। उसके लहू के द्वारा हमें ''परमपवित्र स्थान में प्रवेश करने का हियाव होता है'' (इब्रा. 10:19)। अपने लहू के द्वारा परमेश्वर ने मण्डली को मोल लिया है (प्रेरितों 20:28)।

''मसीह की देह'' नामक अभिव्यक्ति का प्रयोग 1 कुरिन्थियों 10:16; 12:27 तथा इफिसियों 4:12 में मण्डली के पद-नाम के रूप में हुआ है। इसका उपयोग आगे भी रोमियों 7:4 तथा इब्रानियों 10:10 में हुआ है। इन अन्तिम दो अनुच्छेदों में यह स्पष्ट है कि यह मसीह के साथ हमारे मर जाने से संबंधित है, जैसे कि एक मनुष्य ने सदेह क्रूस पर चढ़कर मृत्यु को सह लिया। जो कुछ हम स्वभाव से थे, उन सब का मसीह की मृत्यु के साथ अंत हो गया, जैसा कि कुलुस्सियों 1:21, 22 भी हमसे कहता है : ''और उसने अब उसकी शारीरिक देह में मृत्यु के द्वारा तुम्हारा भी मेल कर लिया जो पहले निकाले हुए थे और बुरे कामों के कारण मन से बैरी थे।''

इस प्रकार यह ऐसे लोगों की एक सहभागिता है जिसमें सभी लोग प्रभु यीशु के कार्य के महिमामय परिणाम के भागी हैं, परन्तु इसी के साथ वे सब मसीह के साथ मरे भी हैं, और अब नये मनुष्य के रूप में एक साथ संगठित हैं। यद्यपि यह सहभागिता इस पृथ्वी पर है, फिर भी पुराने मनुष्यत्व-जो कि हम स्वभाव से हैं-का इसमें पूर्णत: कोई स्थान नहीं।

मसीह की आध्यात्मिक देह : कलीसिया

''इसलिए कि एक ही रोटी है सो हम भी जो बहुत हैं, एक देह'' अथवा, जैसा कि यह अनुवाद भी संभव है, ''इसलिए कि रोटी एक ही है, हम अनेक होते हुए भी एक देह हैं, क्योंकि हम सब उसी एक रोटी में से खाते हैं।'' (1 कुरि. 10:17)। वह जो हम 16 पद में पहले ही पा चुके हैं, उसे यहाँ पर स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है। वे सब जो प्रभु यीशु के लहू और उसकी देह में जो हमें दी गयी है, भाग लेते हैं, मिलकर एक कलीसिया-एक देह का निर्माण करते हैं। इस भाग में एक देह का सिद्धान्त आगे पुन: प्रस्तुत नहीं किया गया है, क्योंकि

यहाँ जो विषय है वह है सहभागिता और इसका एकमात्र स्वरूप। 1 कुरिन्थियों का 12 अध्याय, इफिसियों की पत्री तथा अन्य स्थल एक देह के विषय में और भी स्पष्ट रूप से कहते हैं।

1 कुरिन्थियों 12:13 में हमें यह बतलाया गया है कि इस सहभागिता का आरंभ किस प्रकार हुआ। इसका आधार प्रभु यीशु का क्रूस पर पूरा किया गया कार्य है। परन्तु इसका निर्माण पवित्र आत्मा के बपतिस्मे के द्वारा हुआ है। इस घटना का वर्णन पवित्रशास्त्र स्पष्ट रूप से करता है। यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने यह घोषणा की थी कि प्रभु यीशु पवित्र आत्मा से बपतिस्मा देगा। और प्रेरितों के कार्य 1:4,5 में प्रभु यीशु ने प्रेरितों से कहा कि पवित्र आत्मा के उण्डेले जाने के तुरन्त बाद तुम इसका बपतिस्मा पाओगे। पवित्रशास्त्र मसीह की देह के रूप में कलीसिया के विषय दो प्रकार से कहता है। कभी-कभी यह कलीसिया को इस दृष्टि से देखता है जैसे कि वह परमेश्वर की मंशा में है, और इसके बाद जैसा कि वह स्वर्ग में होगी। इस दृष्टि से देखता है, उदाहरण के लिए इफिसियों 1:22 देखें। इस प्रकार इसमें वे सब विश्वासी आ जाते हैं जिन्होंने पिन्तेकुस के दिन एक देह के रूप में बपतिस्मा लिया था (प्रेरितों. 2), और वे सब जो उसके बाद उससे मिल गये (प्रेरितों, 2:47), जब तक कि कलीसिया महिमा में न उठा ली जाए। उस समय कुछ क्षणों के लिए संपूर्ण कलीसिया इस पृथ्वी पर पूर्ण हो जाएगी। मसीह में मरे हुए लोग जी उठेंग और हम बदल जाएंगे। परन्तु यह सब पलक मारते ही एक क्षण में हो जाएगा। 1 थिस्सलुनीकियों 4:15-17 तथा 1 कुरिन्थियों 15:51-54 देखिए।।

साधारणतया, जब कभी भी इस पृथ्वी पर हमारे कर्त्तव्य और हमारे आचरण का प्रश्न उठता है, तो पवित्रशास्त्र कलीसिया को किसी दिये हुए समय पर पृथ्वी पर रह रहे सम्पूर्ण विश्वासियों के योगफल के रूप में देखता है। वे जो कूच कर गये हैं, अर्थात् जो प्रभु में सो गये हैं और उनको अब किसी प्रकार की चेतावनी की आवश्यकता नहीं, वे अब पृथ्वी पर नहीं हैं।

1 कुरिन्थियों 12:27 बड़े ही स्पष्ट रूप से मसीह की देह के महत्त्व को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। कुरिन्थियों को कहा गया था : ''तुम सब मिलकर मसीह की देह हो, और अलग अलग उनके अंग हो।'' इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि किसी भी स्थान पर रह रहे विश्वासी एक साथ मिलकर मसीह की देह का निर्माण करते हैं। तब तो मसीह की उतनी देह होती जितने कि विश्वासियों के रहने के स्थान हैं। जो कुछ हमने 1 कुरि. 10:16, 17 से देखा है, उससे यह स्पष्ट है कि ऐसा ठीक नहीं हो सकता। पद 28 तथा अध्याय 12 के शेष पद हमें यह भी स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि कलीसिया में परमेश्वर ने अनेक वरदान दिये हैं। यहाँ पहली बार प्रेरितों का वर्णन आया है, और हम यह जानते हैं कि कुरिन्थिस में प्रेरित नहीं थे। अत: कुरिन्थिस में पायी जाने वाली कलीसिया एक देह की केवल स्थानीय अभिव्यक्ति थी जो मात्र कुरिंथ में दृष्टिगोचर मसीह की देह अर्थात् कलीसिया का एक अंग थी।

परन्तु आइए, हम पुन: 1 कुरिन्थियों 10:16 में लौट जाएं।

प्रभु भोज मसीह की देह की एकता की अभिव्यक्ति है

हमने देख लिया है कि देह की एकता प्रभु भोज में लेने के द्वारा नहीं, बल्कि पवित्र आत्मा के बपतिस्मे के द्वारा थी। क्या इसका बिल्कुल उल्टा नहीं, कि कलीसिया पूर्ण रूप से उनसे बनती है जो प्रभु भोज में भाग लेते हैं। यह पवित्रशास्त्र की संपूर्ण शिक्षा के पूर्णतया विपरीत है। किन्तु जिस पद पर हम अभी विचार कर रहे हैं, वह ऐसा नहीं कहता।

जिस प्रकार से प्रभु यीशु ने रोटी देकर कहा, ''यह मेरी देह है'', और उसके द्वारा उसने, हमें प्रदान की गयी अपनी देह के प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व का प्रत्यक्ष प्रतीक प्रदान किया, उसमें यहाँ पवित्रशास्त्र आगे इतना और जोड़ देता है कि रोटी और दाखरस मसीह की आध्यात्मिक देह, अर्थात् कलीसिया के प्रतीक हैं। वह प्रत्येक व्यक्ति जो इस दाखरस में से पीता और इस रोटी में से खाता है, इसके द्वारा वह इस बात को प्रकट करता है कि वह इस मण्डली का अंग है, जिसे प्रभु यीशु के बहाये गये लहू और तोड़ी गयी देह के परिणामस्वरूप सभी महिमामय परिणाम प्राप्त हैं। वह मसीह की देह का एक सदस्य है। इस प्रकार पवित्रशास्त्र प्रभु भोज के विषय में हमें यहाँ यह सिखाता है कि हम क्या हैं, जबकि अध्याय 11 तथा सुसमाचारों में हम पाते हैं, कि हम क्या करते हैं।

इस प्रकार हम व्यक्तिगत रूप से प्रभु भोज का आयोजन नहीं करते, बल्कि एक देह के सदस्य के रूप में सामूहिक तौर से करते हैं। यद्यपि यहाँ हम बार-बार इस संदर्भ में 'मैं' के विषय में पढ़ते हैं। फिर भी देखा जाए तो वास्तव में रोटी तोड़ते समय हम इसी बात, अर्थात् मसीह की देह के प्रत्येक अंग के साथ एकता को प्रकट करते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि प्रभु-भोज में प्रत्येक अंग का भाग लेना अति-आवश्यक है-परन्तु केवल वे ही जो प्रभु की देह के अंग हों। परन्तु यदि इसमें अविश्वासी लोग भी सम्मिलित होते (किये जाते) हैं - सिद्धांतत: ऐसे लोग सम्मिलित होते हैं जिनके विषय में किसी को कुछ पता नहीं कि वे प्रभु की देह के अंग हैं-तो यह प्रभु का भोज नहीं बल्कि ऐस लोगों के समूह का भोज है जिन्होंने इसकी स्थापना की है। यही बात उस समय भी लागू होती है जब कोई विश्वासियों को प्रभु भोज में सम्मिलित करने से इन्कार करे जो कि वास्तव में वे मसीह की देह के अंग है, और जबकि स्वयं भी परमेश्वर उन्हें किसी बुरी चाल, गलत शिक्षा अथवा अशुद्ध बात का सहभागी होने का दोषी न पाए। ज्योंही हम कुछ अन्य शर्तें लागू कर देते हैं - जैसे कुछ ऐसे सत्य से सहमत होना जो कि मूलभूत न हो - हम प्रभु भोज को अपना भोज बना लेते हैं और प्रभु भोज के उस स्वरूप को बिगाड़ देते हैं जिसमें पवित्रशास्त्र इसे देखता है।

इसके विपरीत, जैसे कि हमने देखा भी है, पवित्रशास्त्र बड़ी सफाई के साथ प्रभु भोज के स्वरूप को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। यह प्रभु तथा उसके अपनों के संग सहभागिता का

एक भोज है। इसमें सम्मिलित होने वाले सभी के सब मसीह के साथ मरे हुए लोग हैं। वे नये लोग हैं जिन्होंने एक नया जीवन पाया है जिसे पवित्रशास्त्र ''आत्मा'' कहता है (यूहन्ना 3:6), और जिनमें पवित्र आत्मा निवास करता है। ''सो यदि कोई मसीह में है तो वह नयी सृष्टि है : पुरानी बातें बीत गयी हैं, देखो, वे सब नयी हो गयी'' (2 कुरि. 5:17)।

प्रभु भोज की रस्म आदिम मनुष्य की रीति पर या पुराने मनुष्य के भिन्न-भिन्न स्वरूपों तथा रीति-रिवाजों के साथ नहीं मनाई जाती। यह प्रभु अर्थात् उसका भोज है जो मरकर पुनर्जीवित हो उठा और जिसे परमेश्वर ने ''प्रभु भी ठहराया और मसीह भी'' (प्रेरि. 2:36)। हमारा जी उठा प्रभु अपने निज लोगों को अपने भोज में अतिथि के रूप में आमंत्रित करता है। वह हमारा मेजबान है, और वह भी ऐसा जो हमसे कुछ भी घृणा नहीं करता है। **तब क्या ऐसा प्रभु भोज, जो खुद प्रभु के द्वारा न दिया गया हो, बल्कि मूलरूप से मनुष्य की अपनी इच्छा से और विभिन्न प्रकार की शिक्षाओं के आधार से तैयार किया गया हो, क्या प्रभु भोज हो सकता है ?**

प्रभु भोज की अनन्यता

हमने देखा कि केवल सच्चे विश्वासी ही प्रभु भोज में भाग ले सकते हैं। 1 कुरिन्थियों 5, तथा 2 यूहन्ना आदि अन्य दूसरे स्थलों पर ऐसे भी वर्णन पाये जाते हैं जिसके अनुसार सच्चे विश्वासी के रूप जाने हुए लोगों को भी इसमें भाग नहीं लेने दिया जाता था।

किन्तु हमारे इस अध्याय के पद 18-22 में पवित्र आत्मा इस बात पर जोर देता है कि अपवित्रों की संगति करना भी पूर्णतया इसके लिए बाधक है, यद्यपि व्यक्तिगत रूप से अमुक व्यक्ति किसी बुराई में भाग नहीं लेता।

हमने देखा कि कुरिन्थस में रहने वाले कुछ भाई किस प्रकार से यह तर्क प्रस्तुत कर रहे थे कि, ''मूर्तियाँ लकड़ी अथवा धातु के टुकड़ों के अतिरिक्त और कुछ नहीं-क्योंकि परमेश्वर तो केवल एक है-इसलिए चाहे हम मूर्तियों के आगे चढ़ायी हुई बलि को खायें, अथवा मन्दिर में जाकर मूर्तियों के आगे चढ़ायी हुई वस्तुओं को।'' परन्तु पवित्र शास्त्र बड़े स्पष्ट रूप से बतलाता है कि उनका यह तर्क बिल्कुल गलत था। परमेश्वर के आराधक तो साधारणतया उस चीज में भाग लेते हैं जो कि उनका प्रत्येक वस्तु से अलग ही भेद कराती है। जहाँ तक कि कलीसिया का सम्बन्ध है, यह उसके लिए मसीह का लहू और उसकी देह है। इन तत्वों में भाग लेना, उस किसी भी सहभागिता के साथ, जो प्रभु के लहू और उसकी देह के प्रति विरोधाभास प्रकट करते हैं, परस्पर विरोध में है।

पवित्रशास्त्र इस बात को इस्राएलियों तथा अन्य जातियों के बलिदानों के उदाहरणों से स्पष्ट कर देता है। लैव्यव्यवस्था 3 तथा 7 की धन्यवाद-बलि ही एकमात्र एक ऐसी बलि थी जिसे

एक साधारण इस्राएलि खा सकता था। इस प्रकार यही वह बलि है जिसकी ओर पवित्र शास्त्र संकेत देता है और यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि मात्र यही एक बलि, प्रभु भोज की तथा कलीसिया के आराधान की, जो इसका अभिन्न अंग है, पूरी तस्वीर प्रस्तुत करती है।

यह एक स्वेच्छा बलि थी-कोई भी देने के लिए बाध्य नहीं था। परन्तु यदि किसी इस्राएली के हृदय में स्तुति एवं धन्यवाद रहता (लैव्य 7:11) तथा उसके लिए वह बलिदान चढ़ाना चाहता था, तब वहाँ पर कुछ ईश्वरीय निर्देश थे कि वह कौन सी बलि चढ़ाए कि वह परमेश्वर के लिए ग्रहण योग्य हो। फिर भी इसके लिए बल देकर बतलाया गया था कि वह उसे कहाँ पर ले जाए-जैसे, यहोवा के सम्मुख मिलाप-तम्बू के द्वार पर वेदी के पास जहाँ परमेश्वर की उपस्थिति रहा करती थी और जहाँ लोग उससे मिल सकते थे। **और हम देखते हैं कि किस प्रकार से इस सेवा को वेदी से हटकर कहीं अलग नहीं की जा सकती थी।** हाँ, उसे वहीं पर की जानी थी। बलिदान का लहू ''वेदी के चारों अलंगों पर छिड़का जाता था'' (लैव्य. 3:2)। जबकि बलि चढ़ाने वाला व्यक्ति बलिदान के छाती को, छाती हिलाने वाली भेंट के रूप में हिलाने के लिए यहोवा के सामने लाता था तो उसकी चर्बी और गुर्दे वेदी पर जलाये जाते थे, जो परमेश्वर के लिए भोजन ठहरता था (लैव्य. 7:29-31; 3:3-5, 11, 16)। बलिदान सम्पन्न कराने वाला याजक बलि का दाहिना कंधा प्राप्त करता था; हारुन और उसके बेटे छाती का भाग प्राप्त करते थे; और बलि चढ़ाने वाला व्यक्ति तथा उसके संग जो शुद्ध थे, बलि का शेष मांस खाते थे।

लैव्यव्यवस्था 7:19-21 में हम महत्त्वपूर्ण चेतावनी पाते हैं जो अशुद्ध होने के सम्बन्ध में हैं। वह मांस जो किसी अशुद्ध वस्तु से छू जाए वह आग में जला दीया जाए। संभव है कि जिस स्थान पर हम अपनी भेंट चढ़ाने को लाते हैं, वहाँ कोई अशुद्ध वस्तु हो और उसके द्वारा वह शुद्ध भेंट अशुद्ध हो जाए-ऐसी दशा में वह वस्तु न खायी जाए। परन्तु इसके अतिरिक्त चढ़ायी हुई वस्तु में से खाना उनके लिए भी पूर्ण रूप से निषिद्ध था, जो व्यक्तिगत रूप से अशुद्ध हों। यही बात उस व्यक्ति पर भी लागू होती थी जो व्यक्तिगत रूप से तो शुद्ध हो, परन्तु जाने अथवा अनजाने में किसी दूसरे अशुद्ध व्यक्ति को छू दिया हो। कृपया गिनती 19 तथा लैव्यव्यवस्था 5:17 भी देखें। दोनों ही के लिए एक ही दण्ड है, जैसे कि मानों दोनों ने ही यह कार्य किया हो : ''वह व्यक्ति अपने लोगों में से नाश किया जाए।'' मनुष्य के इस दावे के लिए कैसा विध्वंसक दण्ड है, जो वह कहता है कि झूठी शिक्षाओं तथा नैतिक बुराइयों के साथ सम्बन्ध होना, मनुष्य को अशुद्ध नहीं बनाता, जब तक कि वह स्वयं उसे आत्मसात न करे।

परन्तु वेदी के सम्बन्ध में अभी और भी कुछ है। लैव्यव्यस्था 7:15-18 में कहा गया है कि उस धन्यवाद वाले मेलबलि का मांस (वेदी पर) बलिदान चढ़ाने के ही दिन खाया जाए। वेदी

का सम्बन्ध, भेंट के महत्त्व को खोये बिना पृथक नहीं किया जा सकता। उत्साह और हृदय की भक्ति-भावना के अनुसार स्वेच्छा बलि तथा मन्नत मानी गयी बलि, दूसरे दिन भी खाया जा सकता था, जिससे कि वेदी से दीर्घ सम्बन्ध और भी अधिक बना रहता था। और लैव्यव्यवस्था 17 में धन्यवाद वाले मेलबलि को बिना मिलाप वाले तम्बू में लाये और उसके लहू तथा चर्बी को वेदी पर बिना अर्पित किये, मेलबलि चढ़ाना स्पष्ट रूप से वर्जित है। इसका उल्लंघन करने वालों को नाश कर दिया जाता था।

'नया नियम' में इस विषय पर हम और भी स्पष्ट भाषा में संकेत पाते हैं। मत्ती 23:19 में प्रभु यीशु कहता है कि वेदी के द्वारा भेंट पवित्र होती है। अत: न केवल भेंट से वेदी अधिक महत्त्वपूर्ण है, बल्कि भेंट अपने अस्तित्व में तभी आती है, जब यह वेदी के सम्पर्क में आती है।

प्रभु की मेज

वह वेदी जिस पर धन्यवाद-बलि लायी जाती थी, मलाकी 1:7 तथा यहेजकेल 41:22 के अनुसार वह यहोवा की मेज कहलाती है। इन दोनों ही पदों से हम देखते हैं कि ''मेज'' तथा ''वेदी'' शब्द उस बलिदान की ओर संकेत करता है जो उसके ऊपर चढ़ाया जाता है, जबकि 'मेज' शब्द का सम्बन्ध भोजन एवं सहभागिता से जुड़ा हुआ है। धन्यवाद-बलि एक सहभागिता होती थी। परमेश्वर अपना भाग लेता था : हारुन और उसका घराना (जो कि हमेशा ही मसीह तथा कलीसिया का प्रतीक है, और याजक-परिवार के रूप में देखा जाता है) अपना भाग ले लेता था और लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति जो शुद्ध होता था, वह अपना भाग पाता था।

ऐसा ही हम 'नया नियम' में भी पाते हैं। इब्रानियों 13:10 कहता है : ''हमारी एक ऐसी वेदी है, जिसपर से खाने का अधिकार उन लोगों को नहीं, जो तम्बू की सेवा करते हैं'' (अर्थात् वे जो यहूदी हैं)। और 1 कुरिन्थियों 10:18-21 में ''वेदी'' तथा ''मेज'' सब आपस में अदल-बदलकर प्रयुक्त हुए हैं।

पवित्र आत्मा यहाँ उसी शब्द को लेता है जिसे उसने स्वयं 'पुराने नियम' में धन्यवाद-भेंट की वेदी के लिए दिया था, और उसको प्रभु-भोज से इस प्रकार जोड़ता है कि उससे सहभागिता के भोज का पहलू सम्बद्ध हो जाता है।

'प्रभु की मेज' और 'प्रभु-भोज' का क्या भावार्थ है ? यह उसकी मेज है जहाँ पर वह अपने लोगों को अपने साथ अपना भोज मनाने के लिए आमंत्रित करता है। सचमुच, यह लकड़ी की मेज नहीं जिस पर रोटी और दाखरस रखा जाता है। यह उस प्रभु की मेज है जो मरकर पुन: जीवित हो उठा और जहाँ पर वह अपने साथ अपने उन लोगों को खाने पर आमंत्रित करता है जो उसके साथ मर चुके हैं। यह एक आत्मिक मेज है-उसके आत्मिक भवन

का वह स्थान जहाँ वह अपने लोगों को आमंत्रित करता है कि वे आकर इसके साथ रहें। जहाँ उसका भोज है, वह यही है।

क्या अभी भी कोई व्यक्ति हो सकता है जिसे अभी तक स्पष्ट न हुआ हो कि प्रभु की मेज पर केवल एक ही व्यक्ति है जिसे संपूर्ण अधिकार है ? केवल एक ही है जिसे यह निर्णय लेने का अधिकार है कि कौन मेज में भाग ले। केवल एक ही है जो यह कह सकता है कि आराधना सभा कैसे चलाई जाए। केवल एक ही है जो किसी को नियुक्त करे कि कौन वचन की सेवा करेगा। यहाँ पर केवल प्रभु को ही सब कुछ का अधिकार है, और केवल वही अपनी आत्मा के द्वारा सब कुछ का संचालन करना चाहता है। यहाँ किसी को कुछ नहीं कहना है। और किसी को कुछ करने की भी आवश्यकता नहीं जब तक कि प्रभु उसका उपयोग करना न चाहे।

केवल इसी स्थान पर पवित्रआत्मा प्रभु-भोज के अनन्य महत्त्व पर बल देता है। कोई भी जन प्रभु की मेज और दुष्ट आत्माओं की मेज, दोनों में भाग नहीं ले सकता! प्रभु में जलन होती है। प्रभु आवेशी है, जो अपना मान-महिमा दूसरे किसी को नहीं लेने देता। प्रभु अपने लोगों से इतना प्रेम करता है कि उसने उनकी मृत्यु भी सह ली, हाँ, परमेश्वर के दण्ड-स्वरूप क्रूस की मृत्यु भी। वह उनसे इतना प्रेम करता है कि वह उनके लिए विनती एवं निवेदन करने के लिए अब जीवित है (इब्रा. 7:25)। वह उनसे इतना प्रेम करता है कि उसने उनके लिए एक स्थान-अपनी मेज तैयार कर रखी है, जहाँ व उनको अपने पास बुलाता, अपने भोज में बुलाता है। **वह अपने प्रति, अपने प्रेम के प्रति अथवा अपनी पवित्र संगति के प्रति किसी प्रकार की उदासीनता सहन नहीं कर सकता।** उसने अपने लोगों को शैतान तथा इस संसार से छुड़ा लिया है। वह उनके लिए पाप बना कि शरीर के भाव से वह मनुष्य, पवित्र तथा धर्मी परमेश्वर के न्याय के अन्तर्गत मारा जाए। तो **फिर भला कैसे वह अपने साथ शैतान या संसार या आदिम मनुष्य के सिद्धान्तों के संबंध को सहन कर सकता है ?** और विशेषकर इस स्थान पर जहाँ वे उसके अद्‌भुत प्रेम के कार्य, उसके क्रूस पर किये गये अपने बलिदान पर विचार करने के लिए उसके साथ है, और जहां तोड़ी गयी रोटी और उण्डेला गया दाखरस उसके द्वारा उन्हें दिया जाता है कि-''यह मेरा लहू है जो तुम्हारे लिए बहाया गया। यह मेरी देह है जो तुम्हारे लिए दी जाती है। मेरे स्मरण में तुम यही किया करो।''

क्या कोई भी हृदय जो वास्तव में उससे प्रेम करता है, इस स्थान पर उसके अधिकार के प्रति उदासीन रह सकता है ? क्या वह बिना इस प्रकार से प्रार्थना किये हुए कि : ''प्रभु,

मेरे लिए तेरी क्या इच्छा है'', कार्य कर सकता है ? वह स्थान कहाँ है जहाँ तू मुझे आमंत्रित करता है ? तेरी मेज कहाँ है कि मैं तेरे भोज में भाग ले सकूँ ?

परन्तु यदि परमेश्वर की एक संतान ऐसा करे भी, फिर भी प्रभु वैसा ही है। अपनी मेज पर सहभागिता करने में वह उनसे इनकार करता है जो उसके अधिकार के प्रति उदासीन हैं। ''जो मेरे साथ नहीं, वह मेरे विरोध में है'' (मत्ती 12:30)।

''क्या हम प्रभु को रिस दिलाते हैं ? क्या हम उससे शक्तिमान हैं ? (1 कुरिं. 10:22)।

क्या आप प्रभु-भोज में भाग उसी स्थान पर लेते हैं, जहाँ वास्तव में प्रभु-भोज मनाया जाता है ?

शुभकामनाओं के साथ,
प्रभु के प्यार में आपका भाई
-एच.एल.एच.

17 आराधना

प्रिय मित्रो,

पिछले पत्र में प्रभु–भोज के विषय में विचार कर लेने के पश्चात् अब मैं चाहूँगा कि आपको आराधना के विषय में लिखूँ। यद्यपि आराधना का गहरा संबंध प्रभु भोज से है, किन्तु फिर भी यह वही चीज नहीं है। प्रभु भोज का मनाया जाना–जैसे कि पवित्रशास्त्र में प्रस्तुत है–आराधना की ओर अग्रसर तो करेगा, **किन्तु स्वयं में यह कोई आराधना नहीं है।**

आराधना क्या है ? संभवत: हम इसको इस प्रकार वर्णित कर सकते हैं कि यह परमेश्वर को दिया जाने वाला वह सम्मान है जो उसे इस आधार पर दिया जाता है कि वह क्या है तथा उसके उपासक उसके लिए क्या अर्थ रखते हैं। इब्रानी शब्द जो पुराने नियम में प्राय: आराधना के लिए उपयोग में आया है, उसका वास्तविक अर्थ है : ''अपने आपको झुका देना।'' उदाहरण के लिए इसका उपयोग उत्पत्ति 18:2 में पाया जाता है। यूनानी का 'फ्रॉसकूनियों' शब्द जिसका उपयोग 'नये नियम' में प्राय: हुआ है, उसका अर्थ : परमेश्वर तथा मनुष्य दोनों को सम्मान प्रदान करना है।

स्पष्ट है कि यह प्रत्येक बुद्धिमान का कर्त्तव्य है कि वह परमेश्वर की उपासना करे। स्वर्गदूत उसकी उपासना करते हैं (नहेम्याह 9:6)। उसके संत उसकी उपासना करते हैं। अनन्त में सुसमाचार के मानने वाले मनुष्यों से कहा गया है कि वे परमेश्वर की महिमा करें और उसकी उपासना करे (प्रकाशित 14:7)। शनै: शनै: (धीरे धीरे) पृथ्वी पर की प्रत्येक वस्तु उसकी उपासना करने लगेगी (सपन्याह 2:11; जकर्याह 14:16, भजन 86:9 इत्यादि)। इसलिए कि परमेश्वर कौन है, स्वर्गदूत उसकी उपासना करते हैं, तो वे मनुष्य भी जिन्हें नये जन्म का अनुभव नहीं है शीघ्र ही उसकी उपासना करेंगे, क्योंकि उन्होंने उसके न्याय के समय उसके सामर्थ्य का अनुभव कर लिया है, अथवा इसलिए भी कि वे प्रभु यीशु मसीह के राज्य के अधीन रहना चाहते हैं। किन्तु परमेश्वर इस बह्य और दिखाई देनेवाली आराधना से कहीं और उत्तम की इच्छा रखता है। परमेश्वर मनुष्य के हृदय की आराधना की लालसा करता है, अर्थात् वह आदर जो मनुष्य के उस प्रेम के कारण उत्पन्न होते हैं, जो परमेश्वर के प्रति उसके हृदय में प्रेम है। इसके विषय में उसने हमसे बातें की हैं, और उसने अपने वचन में उपासना के गुण, सामर्थ्य और उसके उचित स्थान के विषय में बतलाया है। उदाहरण के लिए यूहन्ना 4 में प्रभु इस विषय में स्पष्ट रूप से बातें करता है।

आराधना का उचित स्थान

उस सामरी स्त्री ने प्रभु से कहा : ''प्रभु, मुझे ज्ञात होता है कि तू भविष्यवक्ता है। हमारे बाप-दादों ने इसी पहाड़ पर भजन किया : और तुम कहते हो कि वह जगह जहाँ भजन करना चाहिए यरुशलेम में है'' (यूहन्ना 4:19, 20)। वर्तमान समय के बहुत से लोगों के समान ही उस स्त्री ने भी लोगों की राय जाननी चाही। ''तुम कहते हो!'' इस विषय में वह परमेश्वर की इच्छा के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहती। यहाँ तक कि उसको कभी यह तक नहीं सूझा कि, वह कुछ पूछे कि क्या कभी यहोवा ने भी अपनी इच्छा प्रकट की थी, कि वह इसके लिए यह अथवा वह स्थान पसन्द करता है। क्या उसने यरुशलेम के लिए बल देकर इशारा नहीं किया था ? दाउद ने इसे तब जाना जबकि यहोवा ने ओर्नान के खलिहान में उसके बलिदान को स्वीकार कर लिया था (1 इति 21:28)। सुलेमान ने परमेश्वर की पसन्द जब जानी तब उसने मंदिर बनाना आरम्भ कर दिया (2 इति. 3:1)। और जब वह उसे बना कर पूर्ण कर चुका तब परमेश्वर ने उसे निश्चय दिलाया कि उसने सही काम किया है, और परमेश्वर ने उसे अपनाया और पवित्र किया है कि उसका नाम सदा के लिए उसमें बना रहे (2 इति. 7:16)।

ऊपरी तौर से यह स्त्री पवित्रशास्त्र के स्पष्ट कथन से पूर्णत: अन्जान थी! परन्तु यह किसका दोष था ? शायद उसकी वह स्थिति जिसमें वह जन्म से ही और जिसमें वह जन्म के द्वारा आयी थी, उसकी अज्ञानता पर प्रकाश डालती है। परन्तु यह वास्तविक बहाना नहीं था! वह याकूब के परमेश्वर से संबद्ध होने का दावा करती है, किन्तु नहीं जानती थी और न कभी जानने की कोशिश की, कि क्या कभी इस संबंध में परमेश्वर ने उस पर अपने विचार प्रकट किये। कि जो कुछ ''हमारे बाप-दादों ने-'' किया था, उसको उसने उद्धृत किया। क्योंकि गिरिज्जीम पर्वत पर स्थित मंदिर सदियों से समरुनियों के लिए आराधना का केन्द्र था। परन्तु इस सत्य से इस दावे को तनिक भी बल नहीं मिलता कि आराधना का वास्तविक स्थान यही मंदिर था। यद्यपि वह अपने **पूर्वजों के पदचिन्हों पर चल रही थी** (यदि वह वास्तव में ठीक उसी प्रकार आराधना कर रही थी, जैसे वे करते थे), फिर भी प्रश्न बना रहता है : कि क्या परमेश्वर द्वारा चुना गया स्थान यही है जहाँ पर उसके लोग उससे मिलें और उसकी उपासना करें ? परमेश्वर के वचन के एक ही उच्चारण से कि ''यहोवा इस प्रकार कहता है'' उसके सारे तर्क, उसके सारे वादविवाद और उसकी सारी भावनाएं ढह गयी।

और इसके अतिरिक्त : यह मानते हुए कि जो कुछ भी यरुशलेम के विषय में कहा गया था, उसके प्रति वह स्त्री वास्तव में अन्जान थी, क्या उसकी वह आराधना जो उसने अज्ञानतावश गिरिज्जीम पर्वत पर की, परमेश्वर द्वारा स्वीकार हुई ? निस्सन्देह वहाँ बहुत से ऐसे सामरी थे, जो दृढ़ता के साथ इस बात के कायल थे कि केवल उन्हीं की आराधना ही सच्ची आराधना थी।

परन्तु क्या इसका अर्थ यह हुआ कि इनकी आराधना परमेश्वर के लिए ग्रहणयोग्य ठहरी ? क्या मनुष्य का विवेक परमेश्वर के वचन के स्पष्ट कथन से बढ़कर है ? किसी भी प्रकार से नहीं। अत: प्रभु यीशु ने बलपूर्वक सामरियों के इस दावे को अस्वीकार कर दिया। ''तुम जिसे नहीं जानते, उसका भजन करते हो और हम जिसे जानते हैं उसका भजन करते हैं, क्योंकि उद्धार यहूदियों में से है'' (यूहन्ना 4:22)।

इस वार्तालाप में स्पष्ट रूप से तीन चीजें हमारे सामने लायी गयी हैं :

1. ऐसे मामले जिसमें परमेश्वर ने अपने विचार प्रकट कर दिये हैं तथा जिनमें मनुष्यों के अपने अलग विचार भी हो सकते हैं, उस पर विवाद खड़ा करना खतरनाक और बुरा है।

2. अपने पूर्वजों की विधि अनुसार परमेश्वर की आराधना करना बिल्कुल भी इस बात का आश्वासन नहीं है कि हम सही ढंग से आराधना कर रहे हैं।

3. यदि हम भले विवेक से कुछ करें तो इसमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता कि परमेश्वर उसे स्वीकार करे। परन्तु जब कोई बात उठती है तो उसमें एक मात्र महत्वपूर्ण यही है कि उस विषय में परमेश्वर ने क्या कहा है ? **परमेश्वर के लोगों का एक मात्र कर्त्तव्य यह है कि वे अपने विचारों को परमेश्वर के विचारों के अनुकूल ढालें!** ''और यदि कोई ऐसा पाप करे कि उन कामों में से जिन्हें यहोवा ने मना किया है किसी काम को करे, तो चाहे वह उससे अनजाने में हुआ हो, तो भी वह दोषी ठहरेगा, और उसके अपने अधर्म का भार उठाना पड़ेगा'' (लैव्य. 5:17)। प्रभु ने यरुशलेम के विषय और आगे कुछ नहीं कहा। उसने सत्य को प्रकट किया, परन्तु उसी के बाद उसने एक ऐसी बात प्रकट की जो बिल्कुल नयी थी।

व्यवस्था के अधीन ईश्वरीय सत्ता के आधार पर आराधना का स्थान यरुशलेम था परन्तु परमेश्वर का पुत्र पृथ्वी पर आ चुका था-''परमेश्वर शरीर में प्रकट हुआ'' (1 तीमु. 3:16)। एकलौता पुत्र जो पिता की गोद में है, उसी ने उसे प्रकट किया (यूहन्ना 1:18)। ''और कोई पिता को नहीं जानता, केवल पुत्र और वह जिस पर पुत्र प्रकट करना चाहे'' (मत्ती 11:27)। क्या यह बातें मनुष्य की आराधना के ऊपर प्रभाव के बिना ही है ? परमेश्वर की आराधना जो मनुष्य करता है, उसके ऊपर ये प्रगट की गई बातें क्या प्रभाव-विहीन होनी चाहिएं ? ये प्रगट की गई बातों की कुछ असर, आराधक मनुष्य के ऊपर क्या नहीं होनी चाहिये ? आराधना क्या परमेश्वर के ज्ञान के ऊपर आधारित नहीं है ? क्या आराधना इस बात पर आधारित नहीं कि हम परमेश्वर को जानते हैं अथवा नहीं ?

मसीहियत का सारभूत

यूहन्ना 4:10 में प्रभु यीशु कुछ ही शब्दों में एक नये काल अर्थात् कलीसिया (मण्डली) के काल के सभी लक्षणों (विशेषताओं को) बता देता है। ''यदि तू परमेश्वर के वरदान को जानती

और यह भी जानती कि वह कौन है, जो तुझसे कहता है : मुझे पानी पिला, तो तू उससे मांगती और वह जीवन का जल देता।''

''**परमेश्वर का वरदान!**'' यहाँ पर हम परमेश्वर के पूर्ण प्रकाशन को पाते हैं। व्यवस्था के अनुसार परमेश्वर दाता के रूप में प्रकट नहीं था। वह तो एक ऐसा था जो मांग किया करता था। उसकी मांग थी कि मनुष्य उसकी उपासना करे, और वह अपनी आशीष केवल अपनी आज्ञाओं के प्रति आज्ञाकारिता के आधार पर ही उसे दे। वह तो गहरे अंधकार में रहता था (व्यवस्था. 4:11; 5:22, 23; भजन 18:11,12) अर्थात् उसने अपने आपको प्रकट नहीं किया, परन्तु अपने को छिपाए रखता था। ऐसी बात नहीं कि व्यवस्था गलत थी। वह तो पवित्र, न्यायसंगत और भली थी। परन्तु मनुष्य पापी था और जितना ही अधिक जोर व्यवस्था की उचित मांग पर दिया गया, मनुष्य के पाप उतने ही स्पष्ट दिखाई देने लगे। यदि यह सच होता, जैसा कि कुछ धर्म विज्ञानशास्त्री कहते हैं कि व्यवस्था परमेश्वर का प्रतिरूप है, तब तो मनुष्य किसी आशा के भटका हुआ होता! परन्तु यह सच नहीं कि व्यवस्था, जो कि यद्यपि परमेश्वर की व्यवस्था है, न तो स्वयं यह परमेश्वर है और न ही परमेश्वर का सच्चा प्रतिदान है। यह तो केवल नैतिक मानदण्ड है जो यह दिखलाता है कि परमेश्वर के समक्ष एक पापी मनुष्य क्या है।

परमेश्वर ज्योति और प्रेम है। जब मनुष्य गहरी आवश्यकता में होता है तो परमेश्वर उसे उदारतापूर्वक तथा भरपूरी के साथ देता है। वह जिसने इस धरती पर परमेश्वर को पूर्ण रूप से प्रकट किया, कहता है, ''लेने से देना धन्य है'' (प्रेरितों. 20:35)! जिस बात को परमेश्वर ने अधिक धन्य कहा, क्या वह स्वयं उसमें पीछे रह सकता है ?

व्यवस्था के अन्तर्गत, व्यवस्था न टूटने पर भी परमेश्वर लेने वाला ही ठहराता। परन्तु सुसमाचार में वह सदैव देने वाला ठहराता है-इससे अधिक और क्या हो सकता है कि वह उसको जो अनन्त मृत्यु का हकदार हो, अपनी सर्वोत्तम वस्तु दे दे।

इब्रानियों नामक पत्री में व्यवस्था के अन्तर्गत एक इस्राएली स्थान की तुलना एक मसीही से की गई है। एक इस्राएली के लिए ''महापवित्र स्थान का मार्ग'' अभी ''प्रकट नहीं था'' (इब्रा. 9:8)। जो बलिदान वहाँ चढ़ाये जाते थे वे पापों को कभी भी दूर नहीं कर सकते थे (इब्रा. 9:9; 10:4, 11)। महायाजक अवगुणों के कपड़े से ढका रहता था, अत: उसे भी अपने पापों के लिए बलिदान चढ़ाना पड़ता था (इब्रा. 5:3)।

एक मसीही 'स्थायी रूप से सिद्ध किया गया है'' है (इब्रा. 10:14), और वह एक शुद्ध विवेक रखता है (9:14)। इस प्रकार महापवित्र स्थान में प्रवेश करने का उसे हिसाब होता है, और इसीलिए कि पर्दा फट चुका है, अत: परमेश्वर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त (खुला) है। उसका ''एक ऐसा महायाजक है जो परमेश्वर के घर का अधिकारी है'', और जो युगानुयुग के लिए सिद्ध किया गया है (इब्रा. 10:19-22; 7:28) कैसा बड़ा दानी है परमेश्वर!

परन्तु यह केवल परमेश्वर के पुत्र की महिमा तथा उसके अपमान के द्वारा ही सम्भव था, जिसने कि इस संसार में आकर विरोधी पापियों के लिए सब कुछ धीरज से सह लिया। वह सामरी स्त्री उसे नहीं जानती थी। अधिक से अधिक उसने उसे एक यहूदी मित्र के रूप में ही देखा। परन्तु निश्चय ही, उसने कभी यह नहीं सोचा था कि वह स्वयं स्वर्ग एवं पृथ्वी का परमेश्वर यहोवा तथा परमेश्वर की गोद का एकलौता पुत्र है। यदि उसने तनिक भी यह जान लिया होता तो वह उससे मांगती और उसने उसे जीवन का जल दिया होता। यूहन्ना 7:39 के अनुसार जीवन का जल पवित्र आत्मा का प्रतीक है, जो कि विश्वासी के अन्दर पाया जाता है।

इस प्रकार हमारे पास प्रत्येक वस्तु के स्रोत के रूप में परमेश्वर का अनुग्रह, पुत्र की महिमा तथा पृथ्वी पर के दीन लोगों के साथ रहने वाली उसकी सहभागिता है।

और अन्त में हमारे पास पुत्र है जो अपनी महिमा में प्यासी आत्माओं के लिए जीवन का जल-पवित्र आत्मा देता है। ये सब चीजें मिल कर मसीही आराधना के लिए एक आवश्यक बुनियाद बनती है।

पिता अपने लिए आराधक ढूँढता है

''पिता का भजन आत्मा और सच्चाई से करेंगे!'' यह बात उस स्त्री को बिल्कुल नयी जान पड़ी होगी। इस्राएल तो परमेश्वर का पुत्र, वरन उसका ज्येष्ठ पुत्र था (निर्ग 4:22), अर्थात् परमेश्वर यहोवा के पुत्र (व्यवस्था 14:1)। यहोवा इस्राएल के लिए पिता था, और एफ्राइम उसका जेठा था (यिर्म 31:9)। परन्तु उन्होंने कभी भी परमेश्वर की आराधना पिता के रूप में नहीं की थी, क्योंकि कोई ''पिता को नहीं जानता, केवल पुत्र और वह जिस पर उसे प्रकट करना चाहे'' (मत्ती 11:27)। अब जो मसीही आराधना का एक आवश्यक तत्त्व है, वह है परमेश्वर के लोगों के संग मिल कर परमेश्वर को पिता के रूप में जानना, जो स्वयं भी उसको उसी रूप में जानते हैं। परन्तु यह प्रकाश एक व्यक्तिगत मामला है-''वह जिस पर प्रभु अपनी इच्छा प्रकट करना चाहे।''

अत: जिस किसी के पास यह जानकारी है, वह पुत्र की ओर से है। एकलौता पुत्र जो पिता की गोद में है, उसी ने पिता को हम पर प्रकट किया है। और अपना कार्य पूरा कर लेने के बाद वह अपने लोगों को पिता के साथ अपनी निज सहभागिता में ले आया। ''मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता, और अपने परमेश्वर और तुम्हारे परमेश्वर के पास ऊपर जाता हूँ'' (यूहन्ना 20:17)! यहाँ तक कि नये विश्वासियों का भी भाग यही है। प्रेरित उनको जो मसीह में शिशु हैं लिखता है : ''हे लड़कों (बालकों) मैंने तुम्हें इसलिए लिखा है कि तुम पिता को जान गए हो'' (1 यूहन्ना 2:13)। यूहन्ना 17:23 से इसकी तुलना कीजिए।

पिता अपने लिए आराधक ढूँढता है। कैसा बड़ा अनुग्रह! इस्राएल में प्रत्येक व्यक्ति को वर्ष में तीन बार आराधना करने यरुशलेम जाना पड़ता था (व्यवस्था. 16:16)। आने वाले सहस्राब्दि (मिलीनियम) में पृथ्वी के समस्त परिवारों को आराधना के लिए यरुशलेम, वर्ष में एक बार जाना होगा। वे जो इसे नहीं करेंगे दण्डित होंगे (जकार्यह 14:16-19)। किन्तु पिता अपने लिए सच्चे आराधक ढूंढता है। **सच्चे आराधक वे हैं जिनके लिए आराधना एक बह्य रूप न होकर हृदय की वस्तु बन जाती है।** पिता का सच्चे आराधकों का ढूँढना हमारे लिए क्या अर्थ रखता है ?

आत्मा और सच्चाई में आराधना करना

''परन्तु वह समय आता है, वरन अब भी है जिसमें सच्चे भक्त पिता का भजन आत्मा और सच्चाई से करेंगे, क्योंकि पिता अपने लिए ऐसे ही भजन करने वालों को ढूँढता है। परमेश्वर आत्मा है, और अवश्य है कि उसके भजन करने वाले आत्मा और सच्चाई से भजन करें'' (यूहन्ना 4:23, 24)। यहाँ हम मसीही आराधना का स्वरूप पाते हैं। **यह कोई मात्र औपचारिक एवं पार्थिव आराधना-सेवा नहीं है।** यह पूर्णरूप से परमेश्वर की एकरूपता में है, और इस प्रकार पूर्व धारणा यही है कि परमेश्वर ने अपने आपको पूर्णरूप से प्रकट किया है।

कोई भी अविश्वासी इस प्रकार से परमेश्वर की आराधना नहीं कर सकता क्योंकि हमने केवल नये जन्म के द्वारा ही उस नये जीवन को पाया है जिसे पवित्रशास्त्र 'आत्मा' कहता है। ''क्योंकि जो शरीर से जन्मा है, वह शरीर है, और जो आत्मा से जन्मा है, वह आत्मा है'' (यूहन्ना 3:6 रोमि. 8:16)। यह परमेश्वर के अनुरूप नये मनुष्यत्व के अनुसार एक आत्मिक आराधना है।

परन्तु विश्वासी लोग भी शारीरिक हो सकते हैं। पौलुस प्रेरित कुरिन्थियों के लोगों को आत्मिक नहीं कह सका, क्योंकि वे शारीरिक थे (1 कुरिं. 3:1)। वे ''शरीर में'' नहीं थे। ऐसा तो वे अपने मन-परिवर्तन के पूर्व थे। परन्तु यद्यपि वे नया जन्म पाये हुए लोग थे और उन्होंने नया जीवन अर्थात् ''आत्मा'' पाया था, फिर भी वे अपने व्यवहार तथा विचार में वही करते थे, जैसा कि आदिम (स्वाभाविक-पुराना) मनुष्य करता है।

इस्राएल की आराधना सांसारिक एवम् स्वाभाविक थी। यह एक निश्चित भौगोलिक स्थान पर एक भव्य मंदिर में हुआ करती थी और उसमें छोटी-से-छोटी चीज का लेखा-जोखा हुआ करता था। मनुष्य कीमती एवं सुन्दर कपड़े पहने हुए, सुरीले संगीत के साथ आता, और संसार की सर्वोच्च तथा सर्वोत्तम वस्तु चढ़ाने के लिए लाया करता था। इसमें आत्मिकता की कुछ भी बात नहीं थी। वहाँ कोई भी आवश्यक कर्त्तव्य या बंधन सुद्धां नहीं था कि एक याजक को, एक गवैये को या भेंट चढ़ाने वाले एक व्यक्ति को नया जन्म पाना था। और यह स्वयं परमेश्वर द्वारा

प्रतिपादित संविधान था, क्योंकि यह सांसारिक मनुष्य की ओर से एक ऐसे परमेश्वर को अर्पित की जाने वाली प्रार्थना थी जिसने अभी तक अपने आपको मनुष्य पर प्रकट नहीं किया था, बल्कि अपने को गहन अंधकार में छिपाए हुए था।

बहरहाल, क्रूस पर परमेश्वर ने आदिम मनुष्य का अन्त कर डाला। हम जिन्होंने नया जन्म पाया और प्रभु यीशु पर विश्वास किया है, हम मसीह के साथ मर गए हैं (रोमि. 6-8)। हमें अपने उस नये जीवन के अनुसार चाल चलना है जो पवित्र आत्मा ने हमारे भीतर उत्पन्न किया है। इसको चलाने वाली ईश्वरीय सामर्थ्य, परमेश्वर की आत्मा है जो हमारे भीतर वास करता है।

इसलिए हमारी आराधना आत्मिक होनी चाहिए। यह वह नैतिक आवश्यकता है जिससे किसी भी प्रकार की छूट नहीं है। यूहन्ना 4:14 में प्रभु यीशु के शब्द बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं कि संपूर्ण सच्ची मसीही आराधना की सामर्थ्य पवित्र आत्मा है।

उपरोक्त बात की सामंजस्यता में देखा जाए तो आराधना के लिए एक भी रीति-विधि हमें नहीं दी गयी है। और यह सर्वाधिक ध्यान देने योग्य बात है, क्योंकि इस्राएल के साथ हर छोटी से छोटी बात का नियम था। हम, यहाँ तक कि उन शब्दों को भी नहीं जानते जिनके द्वारा प्रभु ने प्रभु-भोज के संस्थापन के समय धन्यवाद किया। यहाँ तक कि हम किसी प्रकार का कोई वर्णन नहीं पाते। जहाँ कि एक ही प्रेरित ने रोटी तोड़ी हो। हमें एक भी गीत नहीं मालूम जो प्रेरितों के समय मण्डली में गाये गये। मसीही भजनों के साथ हमारे पास कोई पुस्तक नहीं है। **क्योंकि हमें परमेश्वर के आत्मा के द्वारा आराधना करनी है** (फिलि. 3:3)। यदि हम वापस 'पुराने नियम' के स्वरूप को देखें और उनसे मसीही आराधना का मिलान करें तो हम मसीहीयत के लाक्षणिक गुण-जैसे परमेश्वर के आत्मा के द्वारा आराधना करना, को खो देंगे।

किन्तु आराधना न केवल ''आत्मा'' में होनी चाहिए बल्कि ''सच्चाई'' के साथ भी होनी चाहिए। ''सत्य क्या है'', पिलातुस ने पूछा। उसको नहीं मालूम था कि काँटों का मुकुट पहने खड़ा व्यक्ति ही सत्य है। **सत्य वह है जो कि परमेश्वर ने अपने विषय में प्रकट किया है, और यह पुत्र है जिसने परमेश्वर को प्रकट किया है।**

कुछ अर्थो में इस्राएल ने भी सच्चाई से आराधना की थी, क्योंकि उनकी आराधना उसी प्रकार की थी जो उस समय यहोवा परमेश्वर के द्वारा प्रकट की गई थी। परन्तु अब परमेश्वर ने पूर्ण रूप से अपने को प्रकट कर दिया है, क्योंकि ''लहू और मांस'' प्रकट परमेश्वर पृथ्वी पर रहा। उसके असीमित अनुग्रह के कारण हम उसको समझ सकते हैं। ''हम जान गए हैं कि परमेश्वर का पुत्र आ गया है, और उसने हमें समझ दी है कि उस सच्चे को पहचानें'' (1 यूहन्ना 5:20)।

निश्चय ही सत्य की पहचान में कुछ वृद्धि हुई है। परमेश्वर का आत्मा हमारी अगुवाई करता है कि सत्य तक हमारी पहुँच हो सके। परन्तु इसके द्वारा विश्वासियों में जो अन्तर पाया जाता है वह नये विश्वासियों तथा सांसारिक मनुष्यों की तुलना में नगण्य है। ऐसा मनुष्य जिसका नया जन्म नहीं हुआ है, वह पूर्णरूप से परमेश्वर को जानने में अक्षम-अशक्त है। वह परमेश्वर को जानने में उतना ही अयोग्य है जितना कि एक गाय विज्ञान अथवा दर्शनशास्त्र को समझने में। परन्तु नये जन्म के द्वारा हमें एक जीवन मिला है जो कि आत्मा है, और उसके द्वारा हम इस स्थिति में हैं कि परमेश्वर को समझ सकते हैं। यह "ईश्वरीय स्वभाव" है (2 पत. 1:4)। इस नये जीवन में पवित्र आत्मा जो कि हमारे भीतर वास करता है कार्यशील रहता है, और वही वह ईश्वरीय सामर्थ्य है जो कि इस नये जीवन को स्वयं परमेश्वर के संबंध में ले आता है (यूहन्ना 4:14)। मसीह में जो बच्चे हैं उनसे कहा गया है "और तुम्हारा जो इस पवित्र से अभिषेक हुआ है, और तुम सब कुछ जानते हो। मैंने तुम्हें इसलिए नहीं लिखा कि तुम सत्य को नहीं जानते, पर इसलिए कि तुम उसे जानते हो" (1 यूहन्ना 2:20, 21)।

अत: इस प्रकार हम परमेश्वर अपने पिता तक अपनी पहुँच करते हैं। पवित्र आत्मा के सामर्थ्य के द्वारा जो हमारे नये जीवन को परमेश्वर के सम्पर्क में ले आता है, हम उसे देखते हैं और उसमें आनन्द मानते हैं। क्या हम परमेश्वर को उसके वास्तविक रूप में देख लेने के पश्चात् भी उसके प्रति प्रशंसा से नहीं भर जाते, और उसके सम्मुख उसे प्रकट करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते ? परमेश्वर का हर बच्चा जो अपनी पायी गयी आशिषों के सामने सिर्फ चुपचाप खड़ा नहीं रहता परन्तु स्वयं इसके देने वाले की ओर ताकता रहता, वह अपने अनुभव से जान सकता है कि यह असंभव है। पिता की महिमा इतनी बड़ी है कि उसको देखकर उसे आत्मसात करने के लिए हमारे हृदय बहुत छोटे पड़ जाते हैं कि उसकी उस भव्य महिमा को शब्दों में प्रकट करने के लिए हमारी स्थिति कितनी कमजोर है! परन्तु हम "आत्मा में" आराधना करते हैं, और इस प्रकार हमारे ये शब्द हमारी आराधना नहीं, पर वे आत्मिक अनुभूतियाँ जो हमारे हृदय से उठती हैं।

पर प्रश्न अभी भी रह जाता है :

हमें आराधना कहाँ करनी चाहिए ?

निर्विवाद रूप से प्रत्येक विश्वासी को व्यक्तिगत रूप से आराधना करनी चाहिए। बिना धन्यवाद और स्तुति की भेंट अर्पित किये, हम किस प्रकार से प्रभु यीशु के कार्यों और पिता के प्रेम और अनुग्रह पर दृष्टि कर सकते हैं ? परन्तु परमेश्वर की समस्त सन्तान के साथ ये सब चीजें एक सी पाई जाती हैं। तो क्या ये सब चीजें मिलकर हमें सामूहिक आराधना की ओर अग्रसर नहीं करती ?

इसके अतिरिक्त प्रभु यीशु की मृत्यु का प्रचार करने तथा उसके हाथों से तोड़ी गई रोटी तथा उण्डेला गया दाखरस ग्रहण करने के अलावा और अधिक अच्छी आराधना करने हम कहाँ जा सकते हैं ? तब हम उसके किये गये कार्य और उसके प्रेम की सिद्धता को देखते हैं। उस वध किये गये मेम्ने का दृष्य हमें स्वर्ग में उसका गीत गाने और उसकी आराधना के लिए अग्रसर करेगा (प्रकाशित. 5)। और उसी प्रकार से हम पृथ्वी पर भी हैं।

हाँ, हम एक साथ मिलकर उसकी मृत्यु का प्रचार करते हैं। प्रभु भोज की विधि में भाग लेना स्वयं अपने आप में कोई आराधना नहीं है। परन्तु वे जो आत्मिक लोग हैं प्रभु भोज के समय धन्यवाद और उपासना करते हैं। अन्यथा यह नहीं हो सकता। और इस प्रकार प्रभु भोज का सम्पन्न कराया जाना एक आराधना सभा बन जाती है।

इस कारण क्या एक अकेला व्यक्ति परमेश्वर के योग्य आराधना कर सकता है ? अपने पतन के पूर्व आदम भी परमेश्वर को उसकी भलाई के लिए धन्यवाद देता था। परन्तु अब तो परमेश्वर पूर्ण रूप से प्रभु यीशु में होकर प्रकट हो गया है। यदि एक अकेले व्यक्ति के द्वारा लाई गई आराधना इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाए कि इसका अर्थ यह लगाया जाने लगे कि अमुक व्यक्ति ने तो एक आत्मिक स्तर को प्राप्त कर लिया है, तो यह स्तर उसको भी क्रियात्मक रूप से उसी स्तर पर ला खड़ा करता है जिस पर वह-परमेश्वर का पुत्र है, जिसकी कि वह आराधना करता है!!!

1 कुरिन्थियों 14 में हम आराधना को मण्डली (कलीसिया) से संबंद्ध पाते हैं। वहाँ हम सीखते हैं कि किन सिद्धान्तों के आधार पर और किन लोगों के द्वारा आराधना परमेश्वर के पास लायी जा रही है। यह परमेश्वर की इच्छा के संबंध में पाये जाने वाले हमारे ज्ञान में एक महत्त्वपूर्ण बढ़ोतरी है। हम पाते हैं कि गीत गाना, धन्यवाद लेना तथा स्तुति करना, आरंभ से ही मण्डली में आराधना के भाग रहे हैं और हम देखते हैं कि इनका सम्बन्ध किसी अकेले व्यक्ति विशेष से न रह कर मण्डली में परमेश्वर की क्रिया प्रणाली से रहा है। कृप्या पद 12-17 देखें। प्रभु आगे को यह चाहता है कि उसके लोग बुद्धिमानी के साथ आराधना करें।

वे सब लोग मिल कर इस बात के लिए सचेत रहते हैं कि उनके मध्य केवल प्रभु को ही सब चीजों का अधिकार है। केवल वही निश्चित कर सकता है कि किसे वह उपयोग करना चाहता है। प्रभु इस अधिकार का उपयोग पवित्र आत्मा के द्वारा करता है जो कि मण्डली में निवास करता है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि आराधना में एक मनुष्य या दस या बीस भाग लेंगे, बल्कि यह है कि क्या जिसको पवित्र आत्मा चाहता है उसका उपयोग करने में वह स्वतंत्र है, बिना यह ध्यान दिये कि वह एक, पांच, दस अथवा और भी अधिक लोगों का उपयोग कर सकता है और करेगा।

क्या आप इस आराधना को अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानते हैं ? यह एक दिमागी प्रश्न नहीं है। परन्तु जैसा कि हम पाते हैं कि यह ऐसे हृदयों का प्रत्युत्तर है जिनके हृदय अपने पिता में लीन हैं। जिसने अपने एकलौते पुत्र को उनके लिए क्रूस पर दे दिया, तथा ऐसे हृदयों का प्रत्युत्तर है जिनके हृदय परमेश्वर के पुत्र और अपने मुक्तिदाता से जुड़े हुए हैं जिसने उनके लिए अपने आपको दे दिया।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,

आपका,

–एच.एल.एच.

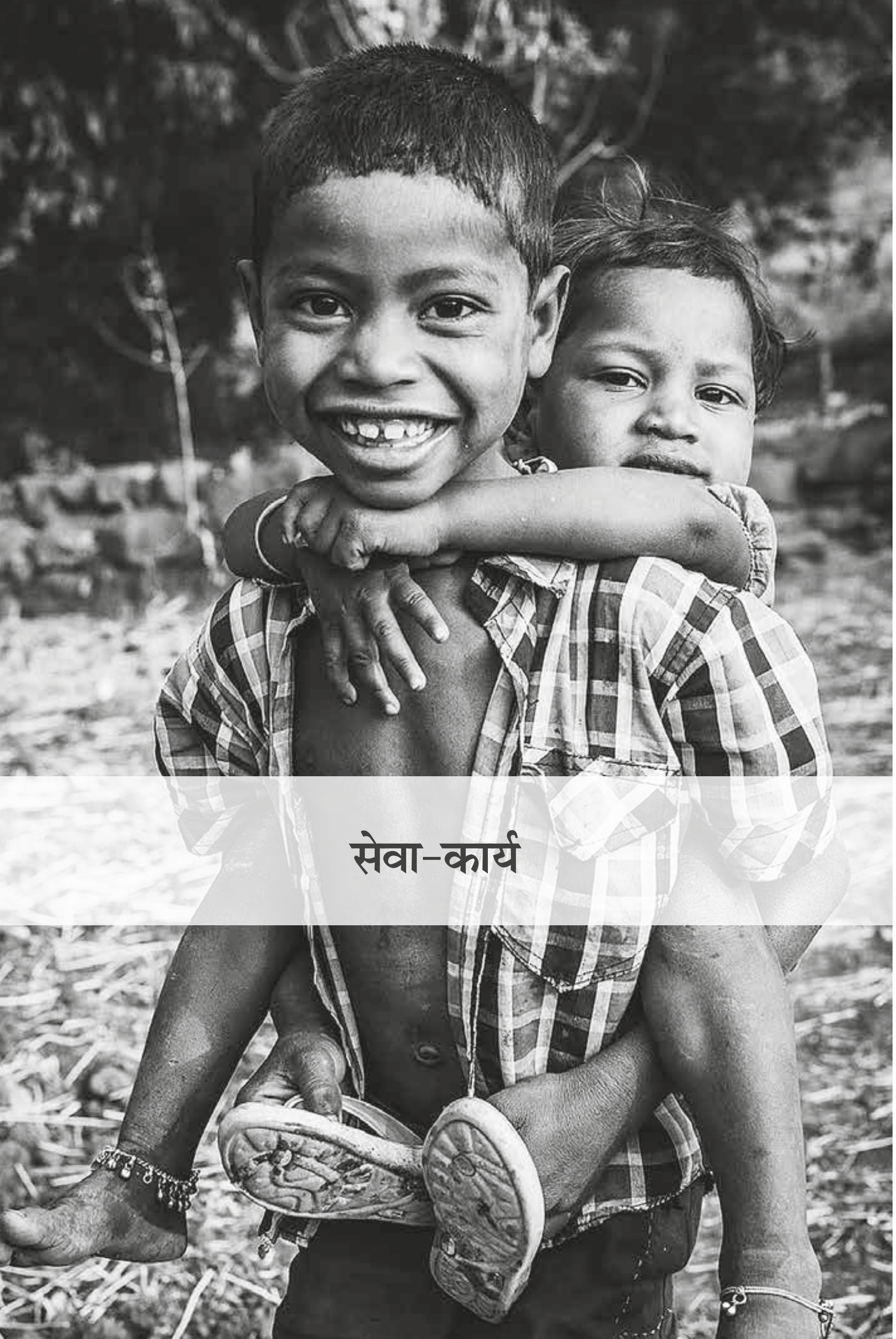

18 सेवा-कार्य

प्रिय मित्रो,

एक मसीही का जीवन बड़ा ही संतुलित होता है-जितना उसके पास आना चाहिए, उतना ही उसमें से निकलना भी चाहिए। यह एक ऐसे कुंड के समान है जिसमें एक ओर से पानी भीतर आने का रास्ता होता है और दूसरी ओर से उतना ही पानी निकालने का रास्ता होता है। ऐसा मसीही जो केवल लेने वाला होता है और कभी देता नहीं, वह डूबकर अव्यवहारिक रहस्यवादी हो जाता है और वह जो देने में व्यस्त रहता है, और लेने के लिए उसके पास समय नहीं, वह आत्मिक दिवालियेपन को पहुँच जाएगा।

जैसा कि मैं पहले भी अपने पिछले पत्र में कह चुका हूँ, प्रत्येक सेवा प्रभु यीशु के चरणों के निकट बैठकर उसकी सुनने और उसके संग सहभागिता करने के द्वारा ही आरंभ होनी चाहिए। हम इसे मरियम की भक्ति के संदर्भ में देख चुके हैं। ठीक समय पर उसने प्रभु यीशु के पैरों के ऊपर वह कीमती इत्र उण्डेल दिया, क्यों ? क्योंकि वह कितनी ही बार प्रभु के चरणों के पास बैठ चुकी थी, और उसके द्वारा उसने उसके व्यक्तित्व और विचारों को समझ लिया था। और मार्था के संबंध में भी हम यही देखते हैं कि सर्वप्रथम अपने दु:ख में उसे पाने के बाद उसने प्रभु यीशु की सेवा की।

इन दो उदाहरणों में हम मसीही सेवा के दो पहलुओं को देखते हैं। मरियम में हम उस पहलू को देखते हैं जो हमें प्रभु अर्थात् परमेश्वर की ओर ले जाता है, तथा मार्था में जो पहलू देखते हैं-वह है लोगों की सेवा करना। अत: 1 पतरस 2:5 में हम पढ़ते हैं कि हम ''याजकों का पवित्र समाज बनकर ऐसे आत्मिक बलिदान चढ़ाएं जो यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर को ग्रहण हो'', और उसी के बाद पद 9 में पढ़ते हैं कि हम ''राजपदधारी याजक'' हैं कि ''जिसने हमें अंधकार में से अपनी अद्‌भुत ज्योति में बुलाया है, उसके गुण प्रकट करें।'' हम अपने आपको सेवा के इस दूसरे पहलू में संबद्ध करना चाहते हैं। प्रथम पहलू को हम पहले ही, प्रभु भोज और आराधना विषय पर बोलते हुए ले चुके हैं।

पवित्रशास्त्र का यह एक मूलभूत सिद्धांत है कि इस सेवा के लिए हमें प्रभु की ओर से आज्ञा मिलनी चाहिए और हमें उसी के प्रति उत्तरदायी होकर उसका निर्वाह करना चाहिए। यह उसके लिए जो इस पर विचार करता है, पूर्णतया स्पष्ट है। तब जो वचन की सेवा करता है, वह

मनुष्य को परमेश्वर का सन्देश देता है। तब फिर इससे भिन्न क्योंकर हो सकता है कि परमेश्वर स्वयं ऐसे लोगों को बुलाए और उनको वह सब वरदान दे जिनकी उनको आवश्यकता है ? अब इफिसियों 4:7-12 तथा भजन 68:19 के साथ हम पाते हैं कि जी उठे प्रभु ने इन वरदानों को पाकर स्वयं भी अपने लोगों को दिया। शास्त्र के अन्य दूसरे सभी स्थल जो इस विषय को लेते हैं, इसको स्थापित करते हैं।

वह उन्हीं को चुनता है जिन्हें स्वयं चाहता है

''फिर वह पहाड़ पर चढ़ गया, और जिन्हें वह चाहता था उन्हें अपने पास बुलाया, और वे उसके पास चले गए। तब उसने बारह पुरुषों को नियुक्त किया कि वे उसके साथ-साथ रहें, और वह उन्हें भेजे कि प्रचार करें...'' (मरकुस 3:13, 14)।

इस हिस्से में जो विषय है, वह है बारह शिष्यों का बुलाया जाना। जो आदेश उन्होंने पाये, उसकी तुलना उन आदेशों से नहीं की जा सकती जोकि आज प्रभु अपने सेवकों को दे रहा है। मत्ती 10 अध्याय के अनुसार उनको केवल यहुदियों में प्रचार करना था। जब प्रभु इस्राएल के द्वारा त्याग दिया गया और जब उसने क्रूस पर छुटकारे के कार्य को पूरा कर लिया, तब जाकर कहीं उसने मरकुस 16:15 में एक नयी आज्ञा दी कि वे समस्त संसार में जाकर सुसमाचार का प्रचार करें। परन्तु इन दोनों ही मामलों में उनको बुलाए जाने का सिद्धान्त एक ही हैं।

प्रथम सिद्धान्त वह है जिसका वर्णन मैंने ऊपर पहले ही किया है। प्रभु अपने मजदूरों को अपनी स्वतन्त्र इच्छा से बुलाता है। उसने यिर्मयाह से कहा : ''गर्भ में रचने से पहिले ही मैंने तुझ पर चित्त लगाया, और उत्पन्न होने से पहिले ही मैंने तुझे अभिषेक किया, मैंने तुझे जातियों का भविष्यवक्ता ठहराया'' (यिर्म. 1:5)। काफी कुछ ऐसा ही यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के लिए भी लूका 1:13-15 में कहा गया था। और पौलुस स्वयं के विषय में लिखता है : ''परन्तु परमेश्वर की, जिसने मेरी माता के गर्भ ही से मुझे ठहराया और अपने अनुग्रह से बुला लिया, जब इच्छा हुई कि मुझमें अपने पुत्र को प्रकट करे कि मैं अन्य जातियों में उसका समुसमाचार सुनाऊँ...'' (गल 1:15, 16)।

प्रभु के मजदूरों के चुनाव में न तो किसी मनुष्य, न तो प्रभु के किसी सेवक और यहाँ तक कि न ही मण्डली (कलीसिया) से कोई मतलब है। प्रभु ने विशेष रूप से यह अधिकार अपने ही पास सुरक्षित रखा है। जैसा कि हम यिर्मयाह और गलातियों से उद्धृत स्थलों को देखते हैं, इस बुलाहट की तैयारी पहले ही, या तो जन्म अथवा जन्म से पूर्व आरम्भ हो जाती है, और तब तक जारी रहती है जब तक कि मन-परिवर्तन के पश्चात् प्रभु उसे चुन कर बुला लेता है।

उसके साथ रहना

किन्तु प्रभु किस लिए बुलाता है ? क्या प्रभु किसी को उसके हृदय-परिवर्तन के तुरन्त पश्चात् बुलाता है कि वह व्यक्ति कोई बड़ा कार्य करे ? वह तो शिष्यों को बुलाता है ''कि वे उसके साथ रहें!! प्रभु की वास्तविक सेवा के लिए एक आवश्यक शर्त है, उसके साथ रहना तथा इस जरीये परमेश्वर द्वारा सिखाया जाना। मरकुस 3:13 तथा मरकुस 6:7 के मध्य एक लम्बा अन्तराल था जबकि प्रभु ने शिष्यों को बाहर भेजा। और जब वे अपने विशेष आदेश का पालन कर चुके, तब प्रभु ने पुन: उनको अपने साथ अकेले रहने के लिए बुला लिया। कोई भी सेवा तब तक आशीषमय नहीं हो सकती जब तक कि सेवक प्रभु की उपस्थिति से निकलकर बाहर न जाए, और सेवा पूरी हो जाने पर पुन: वापस न चला आए। क्या हम प्रेरितों की भाँति करते हैं ? ''प्रेरितों ने प्रभु के पास इकट्ठे होकर जो कुछ उन्होंने किया और सिखाया था, सब उसको बता दिया'' (मरकुस 6:30)। उनके लिए यह कैसा धन्य और कैसा शिक्षाप्रद समय रहा होगा, जबकि प्रभु ने उनको अलग कर दिया ताकि वह उनसे एकान्त में ''उन समस्त बातों के विषय में बातें करे, अर्थात् जो उन्होंने किया था, और जो उन्होंने सिखाया था।'' यदि हम भी इतना ही करें, तो क्या हमारी सेवा कहीं अधिक धन्य न होगी ?

हम कभी भी प्रभु के साथ देह में नहीं रह सकते जैसा कि कभी उसके शिष्य रहा करते थे, किन्तु हम आत्मिक रूप से उसके साथ रह सकते हैं। यूहन्ना 14:21 कहता है : ''जिसके पास मेरी आज्ञा है, और वह उन्हें मानता है, उससे मेरा पिता प्रेम रखेगा, और मैं उससे प्रेम रखूँगा और अपने आप को उस पर प्रकट करूँगा।'' और तत्पश्चात् पद 23 में : ''यदि कोई मुझसे प्रेम रखे, तो वह मेरे वचन को मानेगा, और मेरा पिता उससे प्रेम रखेगा, और हम उसके पास आएंगे और उसके साथ वास करेंगे।''

प्रभु के प्रति हमारा प्रेम उसकी आज्ञाओं का पालन करने से प्रकट होता है। 1 यूहन्ना 5:3 भी देखें। किसी-किसी के लिए तो कितना विरोधाभास लगता है जबकि वह कहता है कि वह प्रभु से प्रेम करता है; परन्तु उसी के साथ, तुरंत वह ऐसे कार्य करता है जो प्रभु की आज्ञाओं के विरोध में हैं।

किन्तु पद 23 इसके भी आगे चला जाता है। यदि कोई सचमुच प्रभु यीशु से प्रेम करता है तो वह केवल प्रभु की उन आज्ञाओं के पालन से सन्तुष्ट नहीं होगा जो प्रभु बल देकर उसे करने की आज्ञा देता है! तब तो प्रभु की छोटी सी इच्छा पूर्ति के लिए उत्पन्न इच्छा ही पर्याप्त होगी! प्रेम यही चाहता है कि प्रभु को भली-भाँति प्रसन्न रखे। उसके लिए 'नया नियम' में बहुत सारी

विशेष आज्ञाएं तो नहीं हैं। परन्तु प्रभु अपने विचारों को अपने वचन में इस आशा से प्रकट करता है कि वह उसके अपने हेतु इतना पर्याप्त हो कि वे उसके अनुसार चल भी सकें। और जहाँ ऐसा होगा, वहाँ पिता और पुत्र उस व्यक्ति के मध्य वास करेंगे। इसी प्रकार आज भी हम उसके संग पाए जा सकते हैं। और जो सेवा वह हमसे चाहता है कि हम करें, उसके लिए वास्तव में योग्य बनाये जाने के लिए यह अति-आवश्यक है।

उसके द्वारा भेजा जाना

मरकुस 6:7 में शिष्यों को प्रभु बाहर भेजता है। उसने उनको शिक्षा दी थी, अत: वे पूर्णत: उस सेवा के योग्य थे जिसके लिए उसने उन्हें सौंपा था। मनुष्यों के विचार से ऐसा नहीं था। उनकी दृष्टि में वे ''अनपढ़ और साधारण मनुष्य थे'' (प्रेरितों. 4:13)। ऐसा वे मानवीय योग्यता के आधार पर थे। उन्होंने उस दिन के धर्मविज्ञान के ज्ञान संबंधी (थियोलॉजिकल) अध्ययन भी पूरे नहीं किये थे। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं था कि भिन्न-भिन्न गुरु बाइबल का क्या-क्या अर्थ निकालते हैं। प्रभु ने सीधे उनको उनके साधारण पेशों से बुला लिया था। किन्तु वे उनके संग-संग बने रहे। यहाँ तक कि इसे उनके शत्रुओं ने भी देखा (प्रेरि. 4:13)। यही कारण है कि प्रभु उनका सबसे महत्त्वपूर्ण सेवा में उपयोग कर सका। पतरस के प्रचार से एक ही दिन तीन हजार लोगों ने मन फिराया। उनकी शिक्षा तथा उनकी सहभागिता उस नये कार्य की आधारशिला थी, जिसे उस दिन परमेश्वर ने आरम्भ किया, अर्थात् जीवित परमेश्वर की मण्डली (प्रेरित. 2:42)।

ऐसा नहीं था कि इस दिन से पहले शिष्यों ने कुछ किया ही न हो। वे तो पहले ही दिन से प्रभु के साथ हो लिये थे जिसके पास कुछ तो उनके लिए था ही। परन्तु वह ऐसा कार्य था जिसको हम सहायता करना जैसा सरल कार्य कह सकते हैं। सुसमाचार के कारण वे उसके संग उन सभी उपद्रवों तथा शत्रुता में उसके साथ रहते थे (मरकुस 3)। जब कभी प्रभु ने झील के पार जाना चाहा, उन्होंने पतवार गही-नाव खेयी-(मरकुस 4:35-41), इत्यादि।

हमारा मन-परिवर्तन हो चुकने के उपरान्त पहले ही दिन से-यदि हम प्रभु के साथ हैं-प्रभु हमें उपयोग करना चाहता है। यदि हम प्रभु के लिए कुछ करना चाहते हैं, तो कुछ न कुछ हमेशा करने को रहता ही है। हम पर्चे (ट्रैक्टस) वितरित कर सकते हैं। हम लोगों को सुसमाचार-प्रचार की सभाओं एवं बाइबल अध्ययन सभाओं में आमंत्रित कर सकते हैं। हम उन सभाओं की तैयारियों में सहायता कर सकते हैं, इत्यादि। यदि हम कार्य करना चाहते हैं, और हम उसकी सेवा के लिए तत्पर पाये जाते हैं, तो प्रभु कुछ न कुछ करने के लिए कार्य हमेशा ही देगा। इसका तात्पर्य यह हुआ कि चाहे जो कुछ वह हमें करने के लिए आज्ञा दे, हमें तैयार

रहना चाहिए। हमें यह आशा कभी भी नहीं करनी चाहिए कि प्रभु हमारी सेवा का आरम्भ, हमें कोई बड़ी सेवा सौंप कर करेगा।

मत्ती 25 में प्रभु अपने प्रत्येक दास को ''उसकी विशिष्ट योग्यतानुसार'' कुछ (तोड़े) देता है। और यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि सेवक, जिनको पाँच अथवा दो तोड़े (सिक्के) सौंपे गये थे, वे नहीं-बल्कि वह जिसको एक तोड़ा सौंपा गया था, और उसने उससे कुछ भी नहीं किया, प्रभु की दृष्टि में ''दुष्ट और आलसी दास'' ठहरा। और इसलिए कि उस सेवक ने अपने उस एक तोड़े का सदुपयोग नहीं किया अत: वह उससे लेकर, उसको दे दिया गया जिसने अपने सौंपे गए तोड़े के साथ अत्यधिक परिश्रम किया था। इस प्रकार इस व्यक्ति को और भी दिया गया। प्रभु द्वारा दी गयी छोटी से छोटी जिम्मेदारी में यदि हम उद्यमी हैं, तो शीघ्र ही वह हमको बड़ा कार्य सौंप सकता है-कम से कम तब जबकि हम इस छोटे कार्य को पूर्ण आज्ञाकारिता तथा परमेश्वर पर निर्भरता के साथ पूर्ण कर सकें।

कुछ वर्ष पहले की बात है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के एक पहाड़ी क्षेत्र में एक छोटी लड़की रहती थी जो तीन महीने से अधिक स्कूली शिक्षा नहीं पा सकी थी। उसका वेतन चार डॉलर था, जिसमें से वह एक डॉलर आराधना सभा में दे देती थी, एक मिशनरी-कार्य के लिए तथा शेष दो डॉलर अपने निर्धन पिता को दे देती थी जिसके पालन पोषण के लिए एक बड़ा परिवार था। वह अपने पास-पड़ोस के सभी लोगों से बढ़कर देती थी। संध्या के समय और कभी-कभी देर रात तक वह दूसरे अन्य कार्य करती थी जिससे प्राप्त धन से वह अपने लिए कपड़े बनाती थी। प्रभु का एक बड़ा सेवक उस स्थान पर आया। इसलिए कि वहाँ पर ठहरने के लिए सुविधा सीमित थी, उसने अपना वह कमरा भी उस प्रभु के सेवक के लिए छोड़ दिया। उस लड़की की बाइबल मेज पर पड़ी थी, और उसके लगभग प्रत्येक पन्ने पर उसने संकेत चिन्ह लिखे देखे। किन्तु जिस चीज से वह सर्वाधिक प्रभावित हुआ, वह मरकुस 16:15 के पास लिखा हुआ एक नोट था-''तुम सारे जगत में जाकर सारी सृष्टि के लोगों को सुसमाचार प्रचार करो।'' उसी के बगल में उसने बड़े-बड़े और साफ शब्दों में लिख रखा था, ''ओह, काश कि मैं वह भी कर सकती!''

दूसरे ही दिन उसने उससे इस विषय में बातें की, जिस पर वह इतना जोर-जोर से रोने लगी कि उस, सेवक को उससे और कुछ भी सुनने को नहीं मिला। बाद में उसने उसकी कहानी सुनी। जब वह चौदह वर्ष की लड़की थी तभी उसने प्रभु को पा लिया था। एक दिन जब वह अपने घर आई, उसे एक अखबार मिला जिस पर यह शीर्षक छपा था-''सुसमाचार के लिए चीन की पुकार।'' यह अखबार वहाँ कहाँ से आया, कोई नहीं जानता था। उसी क्षण से उसका

मन चीन के प्रति उठने वाले विचारों से भर गया। दिन प्रतिदिन, दस वर्षों तक वह प्रभु से मांगती रही कि वह उसे चीन भेज दे। किन्तु कुछ ही दिन पूर्व वह इस निष्कर्ष पर आ पहुँची थी कि ऐसा विचार करके उसने बड़ी भारी भूल की है, क्योंकि प्रभु का मतलब यह कभी नहीं था कि वह चीन में मिशनरी बनकर जाए, बल्कि शायद यह कि वह रसोईघर की मिशनरी बने। उसी समय से अब वह प्रार्थना करने लगी थी–''प्रभु, तू मुझे इच्छा दे कि मैं तेरे लिए रसोईघर की मिशनरी बन सकूँ।'' और प्रभु ने उसकी प्रार्थना सुन ली।

दस वर्षों से वह एक बड़ी चीज की इच्छा कर रही थी, यद्यपि उसने छोटी चीजों को त्याग नहीं दिया था – उसकी आर्थिक दशा निरन्तर रूप से इस बात की साक्षी थी। परन्तु अब वह उन्हीं छोटे कार्यों को करने के लिए राजी हो गयी थी – कि प्रभु के लिए एक साक्षी बनकर उस छोटे से रसोईघर के दायरे में रसोइये के रूप में चमके। और तब प्रभु ने उसका चीन में एक बड़े ही आशीषमय कार्य में उपयोग किया! इसके द्वारा प्रभु का वह दास कायल हो गया कि प्रभु ने उसको उस गाँव में इसीलिए भेजा था कि वह उस लड़की की सहायता कर सके। और अंत में वह चीन गया। ''जो थोड़े से थोड़े में सच्चा है, वह बहुत में भी सच्चा है।'' (लूका 16:10)

प्रभु पर निर्भर होना

हमने देख लिया कि प्रभु के सेवक उसकी इच्छानुसार और उसी के द्वारा चुने जाते हैं, और बाहर भी केवल उसी के द्वारा भेजे जाते हैं। किन्तु इतना ही सब कुछ नहीं! यह भी आवश्यक है कि यह सेवा प्रभु पर निर्भर रहकर की जाए। ''और सेवा भी कई प्रकार की है, परन्तु प्रभु एक ही है'' (1. कुरिं. 12:5)। मत्ती 25 के दासों को चाहिए था कि वे अपने स्वामी को लेखा देते। मरकुस 6:30 में शिष्यों ने आकर ''उसको सब कुछ सुनाया, कि क्या कुछ उन्होंने किया और क्या क्या सिखाया।'' देखें 1 कुरिन्थियों 3:10–4:5 भी।

इस जिम्मेवारी को नापने के योग्य होने के लिए हमें पवित्र आत्मा दिया गया है। वह हर चीज में हमारा पथ-प्रदर्शन करना चाहता है जिससे कि हम कभी भी अपनी इच्छा के चलाए न चलने पाएं (गल. 5:17)। ''सेवा कार्य'' में ऐसी बात अवश्य आती है। ''–हम ही हैं जो परमेश्वर के आत्मा की अगुवाई से उपासना (सेवा) करते हैं'', (फिलि. 3:3; और भी देखें प्रेरितों 16:6–10)। ''परन्तु ये सब प्रभावशाली कार्य वही एक आत्मा करवाता है, और जिसे जो चाहता है वह बाँट देता है'' (1 कुरिं. 12:11)। इस प्रकार हम अपनी सेवा में पवित्र आत्मा के द्वारा संचालित किये जाते हैं। परन्तु हम अपनी सेवा को प्रभु पर आधारित होकर तथा उसके प्रति उत्तरदायी होकर करते हैं।

इस सेवा का एक अभूतपूर्व महत्त्व है। सर्वप्रथम, यह हमें एक बड़ा हियाव प्रदान करता है। यदि कोई विश्वासी अपने ही को देखता रहे तो उसे कभी भी कोई कार्य करने का साहस नहीं हो सकता। उसको अपने भीतर इतनी अधिक कमियाँ और कमजोरियाँ दिखाई देती हैं कि उसे कभी भी भरोसा नहीं हो पाता कि वह कुछ कर सकता है। जबकि, यहाँ तक कि, वह भली-भांति यह जानता है कि परमेश्वर की तरफ से उसे एक वरदान मिला है और वह प्रभु की ओर से बुलाया गया है, तो भी वह अपने ही विषय में चिंतित रहता है। वह किसी के लिए आशीष का कारण नहीं है। कभी भी किसी व्यक्ति ने पापी मनुष्य के द्वारा मन नहीं फिराया, और न ही किसी विश्वासी ने कभी मनुष्य के शब्दों में आशीष दी। क्योंकि कोई कैसे यह जान सकता है कि जिस व्यक्ति से – अथवा जिस व्यक्ति के सामने – वह बोल रहा है वह आवश्यकता में है ?

परन्तु जब हम पवित्र आत्मा के द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं, तब उसका परिणाम सदा ही आशीषमय होता है। वह (पवित्र आत्मा) जानता है कि उस समय की क्या आवश्यकताएं हैं, और वे कैसे पूरी होंगी। और उनको जिन्हें वह उपयोग करता है, आत्मिक बातें प्रदान करता है जिनसे कि वह लोगों को आत्मिक बातें बता सके (1 कुरिं. 2:13)।

इसी के साथ-साथ यह एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी भी है। पवित्र आत्मा की अगुवाई पर हमें बड़े ही सावधानीपूर्वक ध्यान देना चाहिए जिससे कि वह जिसे भी चाहे उपयोग कर सके। क्योंकि वह केवल एक ही है जिसे पूर्ण स्वतन्त्रता है कि चाहे वह व्यक्तिगत आराधना अथवा कलीसियाई आराधना में अगुवाई कर सके। जब हम यह सोचने लग जाते हैं कि हमें यह तय करने का पूर्ण अधिकार है कि मण्डली की सभा का संचालन कौन करेगा, तो ऐसा विचार पूर्णरूप से पवित्रशास्त्र के विरोध में है; बल्कि यदि देखा जाए तो वास्तव में यह पवित्र आत्मा को तुच्छ जानने के समान है। और तब इसका अर्थ यह हुआ कि यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम सब आराधना-सभा में तैयार पाए जाएं कि जहाँ भी आत्मा चाहे हमें इस्तेमाल करे।

यह स्पष्ट है कि उन सभाओं में जिनमें कोई सार्वजनिक रूप से बोलता है, तो पवित्र आत्मा अधिकांशत: उन वरदानों का उपयोग करेगा जिनको स्वयं प्रभु ने इसी उपयोग के लिए दिया है। परन्तु उसको यह भी अधिकार है कि वह बड़े वरदान के रहते हुए, किसी छोटे वरदान का उपयोग कर ले। और जहाँ तक कि प्रार्थना और धन्यवाद का प्रश्न है, अथवा गीत गाने की बात है–इन चीजों में वरदान का प्रश्न ही नहीं। जो लोग यदा-कदा प्रार्थना के वरदान के विषय में बोलते हैं, तो वह शरीर का प्रकटीकरण है। क्योंकि प्रार्थना और स्तुति की भेंट के लिए तो

पवित्र आत्मा उस प्रत्येक को उपयोग में ला सकता है जिसकी आत्मिक दशा उपयोग में आने के योग्य हो।

हम सबों के लिए कैसी बड़ी जिम्मेवारी है कि चाहे जवान हो या बूढ़ा हो, सबको तैयार रहना चाहिए कि पवित्र आत्मा हमें उपयोग में ला सके और हम इस योग्य पाए जाएं कि जब भी वह चाहे, हमें उपयोग कर सके।

हार्दिक शुभकनाओं के साथ,
प्रभु की सेवा में आपका भाई,
–एच.एल.एच.

पृथ्वी पर हमारा स्थान

19 पृथ्वी पर हमारा स्थान

मेरे प्रिय,

मैंने अपने पिछले पत्र में आपको यह दिखाने का प्रयास किया था कि एक विश्वासी की हैसियत से परमेश्वर के समक्ष हमारा क्या स्थान है। और जब मेरी इच्छा यह है कि मैं आपका ध्यान इस ओर ले जाऊँ कि इस पृथ्वी पर हमारा क्या स्थान है; और जैसा कि मेरा विश्वास है, हम देखेंगे कि इसका संबंध भी मसीह से है। निस्सन्देह जिस प्रकार से हम मसीह के साथ परमेश्वर के समक्ष एक होकर खड़े हैं, उसी प्रकार से हम संसार के समक्ष भी मसीह के साथ एक होते हैं। दूसरे शब्दों में इस पृथ्वी पर भी हमने उसी प्रकार से उसका स्थान ग्रहण कर लिया है, जिस प्रकार से हम उसमें होकर परमेश्वर के समक्ष एक है; और मैं सोचता हूँ कि यह हम सबों के लिए अत्यन्त लाभप्रद होगा कि हम इस सत्य को लगातार अपनी आत्मा के समक्ष रखें। परन्तु पृथ्वी पर के हमारे स्थान के दो पक्ष हैं, और दोनों ही को समझना बहुत आवश्यक है। प्रथम पक्ष का संबंध इस संसार से है, तथा द्वितीय पक्ष का संबंध उस ''छावनी'', अर्थात् संगठित रूप से नामधारी विश्वास प्रकट करने वाली मसीहियत से है, जिसने इस संबंध के अंतर्गत, परमेश्वर की एक विश्वास प्रकट करने वाली साक्षी के रूप में यहूदीवाद का स्थान ले लिया है (देखें रोमि. 11, तथा मत्ती 13 से उसकी तुलना करें)।

संसार से हमारा संबंध

यहूदियों से बातचीत करते हुए प्रभु यीशु ने कहा, ''तुम नीचे के हो, मैं ऊपर का हूँ; तुम संसार के हो, मैं संसार का नहीं'' (यूहन्ना 8:23)। बाद में अपने आपको पिता के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए उसने कहा, ''जैसे मैं संसार का नहीं, वैसे ही ये भी संसार के नहीं'' (यूहन्ना 17:16); और आप पाएंगे कि पद 14 से 19 वाले भाग में वह मुख्य रूप से अपने शिष्यों को इस संसार में अपना निज स्थान प्रदान करता है, जिस प्रकार कि इससे पहले परिच्छेद (पद 6 से 13 तक) में वह उनको अपने पिता के समक्ष अपना स्थान प्रदान करता है। और इस संसार में उनका वही स्थान है जो मसीह का था, और इसे देखा जा सकता है, जैसे प्रभु इस संसार का नहीं था, वैसे ही वे भी इस संसार के नहीं-क्योंकि नया जन्म पाने के बाद अब वे इस संसार के नहीं रहे। अत: वह बार-बार उनको चेतावनी देता है कि उनको घृणा और सताव का सामना वैसा ही करना पड़ेगा, जैसा कि स्वयं उसके ऊपर आ पड़ी थी। अत: एक उदाहरण के रूप में

उद्धृत करने के लिए वह कहता है, ''यदि संसार तुमसे बैर रखता है तो तुम जानते हो कि उसने तुमसे पहले मुझसे भी बैर रखा। यदि तुम संसार के होते तो संसार अपनों से प्रीति रखता, परन्तु इस कारण कि तुम संसार के नहीं वरन मैंने तुम्हें संसार में से चुन लिया है, इसलिए संसार तुमसे बैर रखता है। जो बात मैंने तुमसे कही थी, कि दास अपने स्वामी से बड़ा नहीं होता, उसको याद रखो : यदि उन्होंने मुझे सताया, तो तुम्हें भी सताएंगे; यदि उन्होंने मेरी बात मानी, तो तुम्हारी भी मानेंगे'' (यूहन्ना 15:18-20)। यूहन्ना प्रेरित भी विश्वासियों तथा संसार के बीच इसी प्रकार का विरोधाभास प्रकट करते हैं, जब वह कहता है, ''हम जानते हैं कि हम परमेश्वर से है, और सारा संसार उस दुष्ट के वश में पड़ा है'' (1 यूहन्ना 5:19)। परन्तु जो कुछ इस पवित्रशास्त्र में प्रकट हो रहा है, अभी इससे भी अधिक और कुछ शेष है। परमेश्वर की दृष्टि में हर एक विश्वासी मसीह के साथ मरकर जी उठा समझा जाता है (रोमि. 6, कुलु. 3:1-3)। जिस प्रकार से परमेश्वर की दृष्टि में सम्पूर्ण इस्राएल लाल सागर में से होकर मिस्र से निकाल लाया गया, उसी प्रकार से एक विश्वासी भी मसीह के मृत्यु एवं पुनरुत्थान में से होकर इस संसार से बाहर निकाला गया है। अत: अब वह इस संसार का न रहा, यद्यपि वह जगत में भेजा जाता है कि वह मसीह के लिए वहाँ रहे (यूहन्ना 17:18)। इसलिए पौलुस, जबकि वह संसार में मसीह की सक्रिय सेवा में था, यह कह सका, ''पर ऐसा न हो कि मैं और किसी बात का घमण्ड करूं, केवल हमारे प्रभु यीशु समीह के क्रूस का जिसके द्वारा संसार मेरी दृष्टि में, और मैं संसार की दृष्टि में क्रूस पर चढ़ाया गया हूँ'' (गल. 6:14)। मसीह के क्रूस के द्वारा उसने देख लिया कि जगत का न्याय हो चुका है (यूहन्ना 12:31) और क्रूस को अपने ऊपर लागू करने के द्वारा उसने अपने आप को मरा हुआ समझा - संसार के लिए मरा हुआ - जिससे कि उनके मध्य उतना ही बड़ा अलगाव था जितना कि मृत्यु के द्वारा संभव था।

यदि इन शिक्षाओं को संक्षेप में दोहरा लें, तो पाएंगे कि एक मसीही जब तक इस संसार में रहता है, वह संसार का नहीं - उसी अर्थ में यह इस संसार का नहीं, जैसे कि मसीह इस संसार का नहीं था, वह तो दूसरे लोक से संबंधित था - क्योंकि यदि कोई मसीह में है तो वह एक नई सृष्टि है।

जैसा कि हमने पहले ही देख लिया है, कि वह मसीह की मृत्यु और उसके पुनरुत्थान के द्वारा पूर्णरूप से उसमें से निकाला जा चुका है। अत: अब उसे अपने को इस संसार से बिल्कुल अलग करना है; उसको अपने आत्मा, स्वभाव, आचरण और चाल-चलन में इस संसार के सदृश नहीं बनना है (रोमि. 12:2), **बल्कि प्रत्येक बात में उसको यह दिखलाना है कि वह इस संसार का नहीं है।** इसके अतिरिक्त अपने ऊपर क्रूस को लागू करके वह अपने को क्रूसित

रख सकता है, और इन दो निर्णित चीजों के मध्य किसी प्रकार का आकर्षण अथवा समीकरण नहीं हो सकता। परन्तु पुन: वह इस संसार में मसीह के स्थान पर है, अर्थात् यह कि वह इसमें मसीह के लिए तथा मसीह के साथ एक होकर है। फलस्वरूप उसको मसीह की साक्षी देनी है, मसीह की सी चाल चलनी है (फिलि. 2:15; 1 यूहन्ना 2:6 इत्यादि), और उसको उसी प्रकार के व्यवहार की अपेक्षा करनी चाहिए जैसा कि मसीह के साथ किया गया। यह नहीं कि हम भी उसी प्रकार क्रूस पर चढ़ने के आकांक्षी हैं, जैसा कि मसीह ने किया। परन्तु यदि हम विश्वासयोग्य हैं तो भी इस संसार में लोगों का सामना करना पड़ेगा जैसा कि प्रभु को करना पड़ा : वास्तव में यह कि हम मसीह की समानता में किस अनुपात में है, वह हमारे ऊपर आये सताव की यात्रा है, यदि यह है कि आज संसार विश्वासियों से कम घृणा करता है, तो उसका एकमात्र कारण यही हो सकता है कि उनका इस संसार से बहुत कम अलगाव है।

इससे पहले कि मैं इस विषय के दूसरे पक्ष पर आ जाऊँ, मैं आपके समक्ष उन **सभी संबंधों को तोड़ने के महत्त्व पर बल दूँगा जो नैतिक रूप से आपको इस संसार से जोड़ते हैं।** इसमें जरा घुसकर देखने की आवश्यकता है कि संसार तथा सांसारिकता की आत्मा बड़ी तेजी से परमेश्वर की मण्डलियों की तरफ दौड़ रही है, यहाँ तक कि प्रभु की मेज के पास भी अपनी शेखी बघार रही है-अपनी शेखी फैला रही है-अपनी बड़ाई दिखा रही है। यह उसका कितना बड़ा अपमान है। बल्कि उसके लिए यह कितने बड़े दु:ख की बात है, जिसकी मृत्यु का प्रचार करने के लिए हम इकट्ठे हैं। और उसके सभी सन्तों के लिए यह कैसी बड़ी चेतावनी है कि वे अपने आपको परमेश्वर के सामने दीन करे, और उससे नया अनुग्रह मांगे की और अधिक समर्पण तथा अलगाव के साथ रह सकें, जिससे कि स्वयं संसार देखे कि हम उसके हैं जिसको इसने त्याग दिया, निकाल दिया और क्रूस पर चढ़ा दिया! हममें से कितनों के पास पौलुस जैसी आत्मा है, जिसकी लालसा थी कि ''वह मसीह के दु:ख में सहभागी हो और उसकी मृत्यु की समानता में बदल जाए'', अर्थात् महिमान्वित मसीह के लिए, जो कि उसके हृदय का उद्देश्य तथा उसकी सारी आशाओं का लक्ष्य है ? काश! प्रभु हमें, अपने तथा समस्त प्रिय सन्तों को अनुग्रह दे कि वे संसार से पूर्णतया अलग होकर पुन: उसकी भक्ति में लग जाएं।

छावनी से हमारा संबंध

इब्रानियों की पत्री में हम पढ़ते हैं, ''कि पशुओं का लहू महायाजक पापबलि के लिए पवित्र स्थान में ले जाता है, उनकी देह छावनी के बाहर जलाई जाती है। इसी कारण यीशु ने भी लोगों को अपने ही लोहू के द्वारा पवित्र करने के लिए फाटक के बाहर दु:ख उठाया। सो, आओ, उसकी निन्दा अपने ऊपर लिये हुए छावनी के बाहर उसके पास निकल चलें'' (इब्रा.

13:11-13)। इस स्थल में दो चीजें बिल्कुल स्पष्ट हैं – पाप-बलि का लहू तो पवित्र स्थान में ले जाया जाना था, तथा पशु की देह जो बलि की जाती थी वह छावनी के बाहर ले जाकर जलायी जाती थी। और प्रेरित यहाँ यह बतलाता है कि इन दो चीजों की मसीह की मृत्यु में अनुरूपता है, अर्थात् इन सब बलिदानों का प्रतिरूप है। अत: हम यहाँ पाते हैं कि एक विश्वासी का दोहरा स्थान होता है-परमेश्वर के सामने पवित्र स्थान में जहाँ लहू ले जाया जाता था, तथा उसका संसार में स्थान, अर्थात् छावनी के बाहर जहाँ मसीह ने दु:ख उठाया। दूसरे शब्दों में, जैसा कि पहले व्याख्या की जा चुकी है, यदि हम परमेश्वर के समक्ष प्रभु में उसके साथ उसकी ग्रहणयोग्य सुखदायक सुगंध में एक पाये जाते हैं, तो हम पृथ्वी पर उसके साथ उसके अपमान, निन्दा और तिरस्कार में भी उसके साथ एक पाये जाते हैं। इसलिए एक विश्वासी का पृथ्वी पर का स्थान छावनी के बाहर का स्थान है; जैसा कि पत्री का लेखक कहता है, ''सो आओ, उसकी निन्दा अपने ऊपर लिये हुए छावनी के बाहर उसके पास निकल चलें।''

आप संभवत: मुझ से पूछे कि, ''छावनी क्या है ?'' इस परिच्छेद में जिसको कि मैंने अभी-अभी उद्धृत किया, सम्पूर्ण विवरण से यही जान पड़ता है कि यह यहूदीवाद है। तब फिर अब इसका क्या उत्तर है ? यहूदीवाद परमेश्वर की ओर से था, जिसके अन्तर्गत उसे पृथ्वी पर परमेश्वर की साक्षी बनकर रहना था। यहूदीवाद असफल हुआ और वह पेंतिकुस्त के दिन के पश्चात् जब से यहूदियों ने **प्रेरितों के प्रचार के समय** मसीह को अंतिम रूप से त्याग दिया, एक किनारे लगा दिया गया। और जैसा कि रोमियों 11 में बतलाया गया है, कि वह स्थान मसीहियत ने ले लिया। अत: छावनी अब वर्तमान संगठित मसीहियत-कहलाने वाला नामधारी समग्र ख्रिस्तीय समाज, अर्थात् बाहरी कलीसिया है अर्थात् इसमें सभी प्रकार की मंडलियाँ आती हैं, जिसमें कि भ्रष्ट रोमन कैथोलिक वाद से लेकर प्रोटेस्टैन्टवाद के छोटे से छोटा संप्रदाय आता है। आप आगे पूछ सकते हैं कि किस आधार पर हमें इस छावनी के बाहर जाने को कहा गया है ? **इसके परमेश्वर की साक्षी होने में पूर्णतयाा असफल होने के आधार पर।** ''जिसके कान हों वह सुन ले कि आत्मा कलीसियाओं से क्या कहता है'' (प्रकाशित 2:11, इत्यादि)। प्रत्येक उस दावे को नापने का कि वह परमेश्वर की ओर से है अथवा नहीं, परमेश्वर का लिखित वचन हमारी कसौटी है। और वास्तव में हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम ऐसा करें। इस प्रकार इन सभी सम्प्रदायों का परीक्षण करने पर हम पाते हैं कि वे सब के सब अनाज्ञाकारिता एवं असफल होने के दोषी है। एक विश्वासी के लिए जो परमेश्वर के मन के अनुसार चलता है, – बावजूद आजकल के बुरे दिनों की गड़बड़ियों एवं त्रुटियों के – उसको इन सब चीजों से अपने आपको अलग रखने तथा उन लोगों के साथ एक होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता,

जो उसके वचन के प्रति आज्ञाकारी होकर मात्र प्रभु यीशु के नाम पर इकट्ठे होते हैं। इस सम्बन्ध में निर्गमन 33 अध्याय बड़ा ही शिक्षाप्रद है। जब मूसा पहाड़ पर से नीचे उतरा (अध्याय 32), तो उसने देखा की पूरी छावनी के लोग मूर्तिपूजा में लग गये थे। और जब परमेश्वर से इस्राएल के लिए विनती करके वह लौटा तो लोगों के लिए एक ''बुरा समाचार'' लाया और मूसा ने ''तम्बू को छावनी से बाहर वरन दूर खड़ा कराया और उसे मिलाप वाला तम्बू कहा। और जो कोई यहोवा को ढूँढता, वह उस मिलाप वाले तम्बू के पास जो छावनी के बाहर था निकल जाता था'' (निर्ग. 33:7)। **मूसा ने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि लोगों की असफलताओं के होते हुए भी उसके पास परमेश्वर का मन था; और यहाँ इस दृश्य में हम अपने समय का नैतिक चित्रण देखने को पाते हैं।** यहाँ पर मैं आपके ध्यानपूर्ण विचार हेतु इसे आपके सुपुर्द करना चाहता हूँ।

एक विश्वासी का इस पृथ्वी पर क्या स्थान है, इस विषय में समझने के लिए आप से बहुत कुछ कहा जा चुका है। एक तरफ तो हमें अपने को संसार से अलग रखना है, तथा दूसरी तरफ छावनी के बाहर। ऐसा करने पर हमें संसार से घृणा तथा छावनी से निन्दा मिलेगी। परन्तु यदि ऐसा होता है तो हम उतना ही अधिक अपने धन्य प्रभु के साथ एक होंगे। इस प्रकार इसे इब्रानियों में ''उसकी निन्दा'' कहा गया है। काश! न तो हम पहले को टालने वाले बनें, और न ही दूसरे से लज्जित होने वाले। नहीं, बल्कि हम उसके नाम के लिए दु:ख उठाने के योग्य ठहरें तो उसमें भी आनन्दित हो सकें (प्रेरितों 5:41)।

मेरा विश्वास करते हुए, प्रियो,
स्नेह के साथ मसीह में आपका,
–एडवर्ड डेनेट

''जिसके कान हों वह सुन ले कि आत्मा कलीसियाओं से क्या कहता है''।

(प्रकाशितवाक्य 3:6)

''और यदि कोई पाप करे और उन कामों में से जिन्हें यहोवा ने मना किया है, किसी काम को करे, तो चाहे उसने अनजाने में किया हो, फिर भी वह दोषी ठहरेगा, और उसका अधर्म उसी के सिर पर पड़ेगा।'' (लैव्यव्यवस्था 5:17)

''मूसा तो तम्बू को चावनी से बाहर, वरन् छावनी से दूर खड़ा करवाता था, और उसे मिलाप वाला तम्बू कहता था। और जो कोई यहोवा से भेंट करना चाहता था वह छावनी से बाहर उस मिलाप वाले तम्बू के पास चला जाता था।''

(निर्गमन 33:7)

''इसलिए आओ, उसकी निन्दा अपने ऊपर लिए हुए छावनी के बाहर उसके पास निकल चलें।'' (इब्रानियों 13:13)

''अतः यदि कोई अपने को इन बातों से शुद्ध रखे तो वह आदर के योग्य, पवित्र, स्वामी के लिए उपयोगी और हर भले काम के लिए तैयार किया हुआ पात्र होगा।''(2 तिमुथियुस 2:21)

''स्वर्ग से एक और शब्द को यह कहते सुना : हे मेरे लोगों, उसमें से निकल आओ, जिससे कि तुम उसके पापों के सहभागी न बनो और तुम पर उसकी विपत्तियां न आ पड़ें।'' (प्रकाशितवाक्य 18:4)

मसीह के साथ आरम्भ

इसलिए जैसे तुमने मसीह यीशु को प्रभु मान कर ग्रहण कर लिया है, वैसे ही उसमें चलते रहो।

कुलस्सियों 2:6

बहुत सारे प्रश्न पैदा होते हैं जब आप मसीह के साथ चलना आरम्भ करते हैं। यह पुस्तक विश्वासियों के उन बुनियादी प्रश्नों का उत्तर देती है। उत्तर सरल हैं और उन विश्वासियों के समझने के लिये भी बढ़िया हैं जो अभी बाइबिल के बहुत आदी नहीं हैं। साथ लिखे विषयों को समझाया गया है:

- मन परिवर्तन
- परमेश्वर के साथ मेल
- पाप से छुटकारा
- चुनाव
- नया जन्म
- संगति
- पवित्रीकरण
- बाइबिल पढ़ने का महत्व
- प्रार्थना
- बपतिस्मा
- प्रभु भोज
- प्रभु की मेज
- आराधना
- सेवा

ISBN 978-3-96162-688-5

GBV 127 6010 Beginning with Christ Hindi